करती है, उस जगन्माता महालक्ष्मीकी जय हो ! जिस शक्तिके सहारे उसीके आदेशके अनुसार परमेष्ठी ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, भगवान् अच्युत जगत्का पालन करते हैं तथा भगवान् रुद्र अखिल विश्वका संहार करते हैं, उस सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिसे सम्पन्न भगवती पराशक्तिका मैं भजन करता हूँ।

कमले ! योगीजन तुम्हारे चरण-कमलोंका चिन्तन करते हैं। कमलालये ! तुम अपनी स्वाभाविक सत्तासे ही हमारे समस्त इन्द्रियगोचर विषयोंको जानती हो। तुम्हीं कल्पनाओंके समूहको तथा उसका सङ्कल्प करनेवाले मनको उत्पन्न करती हो। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति—ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। तुम परासंवित् (परम ज्ञान)-रूपिणी हो। तुम्हारा स्वरूप निष्कल, निर्मल, नित्य, निराकार, निरञ्जन, अन्तररहित आतङ्कशून्य, आलम्बहीन तथा निरामय है। देवि ! तुम्हारी महिमाका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है। जो षट्चक्रोंका भेदन करके अन्तःकरणके बारह स्थानोंमें विहार करती है, अनाहत ध्वनि, विन्दु, नाद और कला—ये जिसके स्वरूप हैं, उस माता महालक्ष्मीको मैं प्रणाम करता हूँ। माता ! तुम अपने-[मुखरूपी] पूर्ण चन्द्रमासे प्रकट होनेवाली अमृत-राशिको बहाया करती हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। देवि ! तुम जगत्की रक्षाके लिये अनेक रूप धारण किया करती हो। अम्बिके ! तुम्हीं ब्राह्मी, वैष्णवी तथा माहेश्वरी शक्ति हो। वाराही, महालक्ष्मी, नारसिंही, ऐन्द्री, कौमारी, चण्डिका, जगत्को पवित्र करनेवाली लक्ष्मी, जगन्माता सावित्री, चन्द्रकला तथा रोहिणी भी तुम्हीं हो। परमेश्वरि ! तुम भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कल्पलताके समान हो। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।

उसके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती महालक्ष्मी अपना साक्षात् स्वरूप धारण करके बोलीं—'राजकुमार ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम कोई उत्तम वर माँगो।'

राजपुत्र बोला—माँ ! मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। वे

दैवयोगसे रोगग्रस्त होकर स्वर्गगामी हो गये। इसी बीचमें यूपमें बँधे हुए मेरे यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको, जो समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करके लौटा था, किसीने रात्रिमें बन्धन काटकर कहीं अन्यत्र पहुँचा दिया। उसकी खोजमें मैंने कुछ लोगोंको भेजा था; किन्तु वे कहीं भी उसका पता न पाकर जब खाली हाथ लौट आये हैं, तब मैं सब ऋत्विजोंसे आज्ञा लेकर तुम्हारी शरणमें आया हूँ। देवि ! यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे यज्ञका घोड़ा मुझे मिल जाय, जिससे यज्ञ पूर्ण हो सके। तभी मैं अपने पिता महाराजका ऋण उतार सकूँगा। शरणागतोंपर दया करनेवाली जगज्जननी लक्ष्मी ! जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो, वह उपाय करो।

भगवती लक्ष्मीने कहा—राजकुमार ! मेरे मन्दिरके दरवाजेपर एक ब्राह्मण रहते हैं, जो लोगोंमें सिद्धसमाधिके नामसे विख्यात हैं। वे मेरी आज्ञासे तुम्हारा सब काम पूरा कर देंगे।

महालक्ष्मीके इस प्रकार कहनेपर राजकुमार उस स्थानपर आये, जहाँ सिद्धसमाधि रहते थे। उनके

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

चरणोंमें प्रणाम करके राजकुमार चुपचाप हाथ जोड़ खड़े हो गये। तब ब्राह्मणने कहा—'तुम्हें माताजीने यहाँ भेजा है। अच्छा, देखो; अब मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट कार्य सिद्ध करता हूँ।' यों कहकर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणने सब देवताओंको वहीं खींचा। राजकुमारने देखा, उस समय सब देवता हाथ जोड़े थरथर काँपते हुए वहाँ उपस्थित हो गये। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने समस्त देवताओंसे कहा—'देवगण! इस राजकुमारका अश्व, जो यज्ञके लिये निश्चित हो चुका था, रातमें देवराज इन्द्रने चुराकर अन्यत्र पहुँचा दिया है; उसे शीघ्र ले आओ।'

तब देवताओंने मुनिके कहनेसे यज्ञका घोड़ा लाकर दे दिया। इसके बाद उन्होंने उन्हें जानेकी आज्ञा दी। देवताओंका आकर्षण देखकर तथा खोये हुए अश्वको पाकर राजकुमारने मुनिके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'महर्षे! आपका यह सामर्थ्य आश्चर्यजनक है। आप ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। ब्रह्मन्! मेरी प्रार्थना सुनिये, मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ करके दैवयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अभीतक उनका शरीर तपाये हुए तेलमें सुखाकर मैंने रख छोड़ा है। साधुश्रेष्ठ! आप उन्हें पुनः जीवित कर दीजिये।'

यह सुनकर महामुनि ब्राह्मणने किञ्चित् मुसकराकर कहा—'चलो, जहाँ यज्ञमण्डपमें तुम्हारे पिता मौजूद हैं, चलें।' तब सिद्धसमाधिने राजकुमारके साथ वहाँ जाकर जल अभिमन्त्रित किया और उसे उस शवके मस्तकपर रखा। उसके रखते ही राजा सचेत होकर उठ बैठे। फिर उन्होंने ब्राह्मणको देखकर पूछा—'धर्मस्वरूप! आप कौन हैं?' तब राजकुमारने महाराजसे पहलेका सारा हाल कह सुनाया। राजाने अपनेको पुनः जीवन-दान देनेवाले ब्राह्मणको नमस्कार करके पूछा—'ब्रह्मन्! किस पुण्यसे आपको यह अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई है?' उनके यों कहनेपर ब्राह्मणने मधुर वाणीमें कहा—'राजन्! मैं प्रतिदिन आलस्यरहित होकर गीताके बारहवें अध्यायका जप करता हूँ; उसीसे मुझे यह शक्ति मिली है, जिससे तुम्हें जीवन प्राप्त हुआ है।' यह सुनकर ब्राह्मणोंसहित राजाने उन ब्रह्मर्षिसे गीताके बारहवें अध्यायका अध्ययन किया। उसके माहात्म्यसे उन सबकी सद्गति हो गयी। दूसरे-दूसरे जीव भी उसके पाठसे परम मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।

श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें और चौदहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब तेरहवें अध्यायकी अगाध महिमाका वर्णन सुनो। उसको सुननेसे तुम बहुत प्रसन्न होओगी। दक्षिण दिशामें तुङ्गभद्रा नामकी एक बहुत बड़ी नदी है। उसके किनारे हरिहरपुर नामक रमणीय नगर बसा हुआ है। वहाँ साक्षात् भगवान् हरिहर विराजमान हैं, जिनके दर्शनमात्रसे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है। हरिहरपुरमें हरिदीक्षित नामक एक श्रोत्रिय ब्राह्मण रहते थे, जो तपस्या और स्वाध्यायमें संलग्न तथा वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। उनके एक स्त्री थी, जिसे लोग दुराचारा कहकर पुकारते थे। इस नामके अनुसार ही उसके कर्म भी थे। वह सदा पतिको कुवाच्य कहती थी। उसने कभी भी उनके साथ शयन नहीं किया। पतिसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने लोग घरपर आते, उन सबको डाँट बताती और स्वयं कामोन्मत्त होकर निरन्तर व्यभिचारियोंके साथ रमण किया करती थी। एक दिन नगरको इधर-उधर आते-जाते हुए पुरवासियोंसे भरा देख उसने निर्जन एवं दुर्गम वनमें अपने लिये सङ्केतस्थान बना लिया। एक समय रातमें किसी कामीको न पाकर वह घरके किवाड़ खोल नगरसे बाहर सङ्केतस्थानपर चली गयी। उस समय उसका चित्त कामसे मोहित हो रहा था। वह एक-एक कुंजमें तथा प्रत्येक वृक्षके नीचे जा-जाकर किसी प्रियतमकी खोज करने लगी; किन्तु उन सभी स्थानोंपर उसका परिश्रम व्यर्थ गया। उसे प्रियतमका दर्शन नहीं हुआ। तब वह उस वनमें नाना प्रकारकी बातें

कहकर विलाप करने लगी। चारों दिशाओंमें घूम-घूमकर वियोगजनित विलाप करती हुई उस स्त्रीकी आवाज सुनकर कोई सोया हुआ व्याघ्र जाग उठा और उछलकर उस स्थानपर पहुँचा, जहाँ वह रो रही थी। उधर वह भी उसे आते देख किसी प्रेमीकी आशङ्कासे उसके सामने खड़ी होनेके लिये ओटसे बाहर निकल आयी। उस समय व्याघ्रने आकर उसे नखरूपी बाणोंके प्रहारसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इस अवस्थामें भी वह कठोर वाणीमें चिल्लाती हुई पूछ बैठी—'अरे बाघ ! तू किसलिये मुझे मारनेको यहाँ आया है ? पहले इन सारी बातोंको बता दे, फिर मुझे मारना।'

उसकी यह बात सुनकर प्रचण्ड पराक्रमी व्याघ्र क्षणभरके लिये उसे अपना ग्रास बनानेसे रुक गया और हँसता हुआ-सा बोला—'दक्षिण देशमें मलापहा नामक एक नदी है। उसके तटपर मुनिपर्णा नगरी बसी हुई है। वहाँ पञ्चलिङ्ग नामसे प्रसिद्ध साक्षात् भगवान् शङ्कर निवास करते हैं। उसी नगरीमें मैं ब्राह्मणकुमार होकर रहता था। नदीके किनारे अकेला बैठा रहता और जो यज्ञके अधिकारी नहीं हैं, उन लोगोंसे भी यज्ञ कराकर उनका अन्न खाया करता था। इतना ही नहीं, धनके लोभसे मैं सदा अपने वेदपाठके फलको भी बेचा करता था। मेरा लोभ यहाँतक बढ़ गया था कि अन्य भिक्षुओंको गालियाँ देकर हटा देता और स्वयं दूसरोंका नहीं देने योग्य धन भी बिना दिये ही हमेशा ले लिया करता था। ऋण लेनेके बहाने मैं सब लोगोंको छला करता था। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होनेपर मैं बूढ़ा हुआ। मेरे बाल सफेद हो गये। आँखोंसे सूझता न था और मुँहके सारे दाँत गिर गये। इतनेपर भी मेरी दान लेनेकी आदत नहीं छूटी। पर्व आनेपर प्रतिग्रहके लोभसे मैं हाथमें कुश लिये तीर्थके समीप चला जाया करता था। तत्पश्चात् जब मेरे सारे अङ्ग शिथिल हो गये, तब एक बार मैं कुछ धूर्त ब्राह्मणोंके घरपर माँगने-खानेके लिये गया। उसी समय मेरे पैरमें कुत्तेने काट लिया। तब मैं मूर्च्छित होकर क्षणभरमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। मेरे प्राण निकल गये। उसके बाद मैं इसी व्याघ्रयोनिमें उत्पन्न हुआ। तबसे इस दुर्गम वनमें रहता हूँ तथा अपने पूर्व पापोंको याद करके कभी धर्मिष्ठ महात्मा, यति, साधु पुरुष तथा सती स्त्रियोंको मैं नहीं खाता। पापी, दुराचारी तथा कुलटा स्त्रियोंको ही मैं अपना भक्ष्य बनाता हूँ; अतः कुलटा होनेके कारण तू अवश्य ही मेरा ग्रास बनेगी।'

यों कहकर वह अपने कठोर नखोंसे उसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े करके खा गया। इसके बाद यमराजके दूत उस पापिनीको संयमनीपुरीमें ले गये। वहाँ यमराजकी आज्ञासे उन्होंने अनेकों बार उसे विष्ठा, मूत्र और रक्तसे भरे हुए भयानक कुण्डोंमें गिराया। करोड़ों कल्पोंतक उसमें रखनेके बाद उसे वहाँसे ले आकर सौ मन्वन्तरों-तक रौरव नरकमें रखा। फिर चारों ओर मुँह करके दीनभावसे रोती हुई उस पापिनीको वहाँसे खींचकर दहनानन नामक नरकमें गिराया। उस समय उसके केश खुले हुए थे और शरीर भयानक दिखायी देता था। इस प्रकार घोर नरक-यातना भोग चुकनेपर वह महापापिनी इस लोकमें आकर चाण्डाल योनिमें उत्पन्न हुई। चाण्डालके घरमें भी प्रतिदिन बढ़ती हुई वह पूर्वजन्मके अभ्याससे पूर्ववत् पापोंमें प्रवृत्त रही। फिर उसे कोढ़ और राजयक्ष्माका रोग हो गया। नेत्रोंमें पीड़ा होने लगी। फिर कुछ कालके पश्चात् वह पुनः अपने निवासस्थानको गयी, जहाँ भगवान् शिवके अन्तःपुरकी स्वामिनी जम्भकादेवी विराजमान हैं। वहाँ उसने वासुदेव नामक एक पवित्र ब्राह्मणका दर्शन किया, जो निरन्तर गीताके तेरहवें अध्यायका पाठ करता रहता था। उसके मुखसे गीताका पाठ सुनते ही वह चाण्डाल-शरीरसे मुक्त हो गयी और दिव्य देह धारण करके स्वर्गलोकमें चली गयी।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! अब मैं भव-बन्धनसे छुटकारा पानेके साधनभूत चौदहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाता हूँ, तुम ध्यान देकर सुनो। सिंहल द्वीपमें विक्रम बेताल नामक एक राजा थे, जो सिंहके समान पराक्रमी और कलाओंके भंडार थे। एक दिन वे शिकार खेलनेके लिये उत्सुक होकर राजकुमारों-सहित दो कुतियोंको साथ लिये वनमें गये। वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने तीव्र गतिसे भागते हुए खरगोशके पीछे

अपनी कुतिया छोड़ दी। उस समय सब प्राणियोंके

देखते-देखते खरगोश इस प्रकार भागने लगा मानो कहीं उड़ गया हो। दौड़ते-दौड़ते बहुत थक जानेके कारण वह एक बड़ी खंदकमें गिर पड़ा। गिरनेपर भी वह कुतियाके हाथ नहीं आया और उस स्थानपर जा पहुँचा, जहाँका वातावरण बहुत ही शान्त था। वहाँ हरिन निर्भय होकर सब ओर वृक्षोंकी छायामें बैठे रहते थे। बंदर भी अपने-आप टूटकर गिरे हुए नारियलके फलों और पके हुए आमोंसे पूर्ण तृप्त रहते थे। वहाँ सिंह हाथीके बच्चोंके साथ खेलते और साँप निडर होकर मोरकी पाँखोंमें घुस जाते थे। उस स्थानपर एक आश्रमके भीतर वत्स नामक मुनि रहते थे, जो जितेन्द्रिय एवं शान्तभावसे निरन्तर गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ किया करते थे। आश्रमके पास ही वत्स मुनिके किसी शिष्यने अपना पैर धोया था। उसके जलसे वहाँकी मिट्टी गीली हो गयी थी। खरगोशका जीवन कुछ शेष था। वह हाँफता हुआ आकर उसी कीचड़में गिर पड़ा। उसके स्पर्शमात्रसे ही खरगोश संसार-सागरके पार हो गया और दिव्य विमानपर बैठकर स्वर्गलोकको चला गया। फिर कुतिया भी उसका पीछा करती हुई आयी। वहाँ उसके शरीरमें भी कुछ कीचड़के छींटे लग गये। फिर भूख-प्यासकी पीड़ासे रहित हो कुतियाका रूप त्यागकर उसने दिव्याङ्गनाका रमणीय रूप धारण कर लिया तथा गन्धर्वोंसे सुशोभित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो वह भी स्वर्गलोकको चली गयी। यह देख मुनिके मेधावी शिष्य

स्वकन्धर हँसने लगे। उन दोनोंके पूर्वजन्मके वैरका कारण सोचकर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ था। उस समय राजाके नेत्र भी आश्चर्यसे चकित हो उठे। उन्होंने बड़ी भक्तिके साथ प्रणाम करके पूछा—'विप्रवर! ये नीच योनिमें पड़े हुए दोनों प्राणी—कुतिया और खरगोश ज्ञानहीन होते हुए भी जो स्वर्गमें चले गये—इसका क्या कारण है? इसकी कथा सुनाइये।'

शिष्यने कहा—भूपाल! इस वनमें वत्स नामक ब्राह्मण रहते हैं, वे बड़े जितेन्द्रिय महात्मा हैं; गीताके चौदहवें अध्यायका सदा जप किया करते हैं। मैं उन्हींका शिष्य हूँ, मैंने भी ब्रह्मविद्यामें विशेषज्ञता प्राप्त की है। गुरुजीकी ही भाँति मैं भी चौदहवें अध्यायका प्रतिदिन जप करता हूँ। मेरे पैर धोनेके जलमें लोटनेके कारण यह खरगोश कुतियाके साथ ही स्वर्गलोकको प्राप्त हुआ है।

अब मैं अपने हँसनेका कारण बताता हूँ। महाराष्ट्रमें प्रत्युदक नामक महान् नगर है; वहाँ केशव नामका एक ब्राह्मण रहता था, जो कपटी मनुष्योंमें अग्रगण्य था। उसकी स्त्रीका नाम विलोभना था। वह स्वच्छन्द विहार करनेवाली थी। इससे क्रोधमें आकर जन्मभरके वैरको याद करके ब्राह्मणने अपनी स्त्रीका वध कर डाला और उसी पापसे उसको खरगोशकी योनिमें जन्म मिला। ब्राह्मणी भी अपने पापके कारण कुतिया हुई।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—यह सारी कथा सुनकर श्रद्धालु राजाने गीताके चौदहवें अध्यायका पाठ आरम्भ कर दिया। इससे उन्हें परमगतिकी प्राप्ति हुई।

श्रीमद्भगवद्गीताके पंद्रहवें तथा सोलहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! अब गीताके पंद्रहवें अध्यायका माहात्म्य सुनो। गौडदेशमें कृपाण-नरसिंह नामक एक राजा थे, जिनकी तलवारकी धारसे युद्धमें देवता भी परास्त हो जाते थे। उनका बुद्धिमान् सेनापति शस्त्र और शास्त्रकी कलाओंका भण्डार था। उसका नाम था सरभ-मेरुण्ड। उसकी भुजाओंमें प्रचण्ड बल था। एक समय उस पापीने राजकुमारोंसहित महाराजका वध करके स्वयं ही राज्य करनेका विचार किया। इस निश्चयके कुछ ही दिनों बाद वह हैजेका शिकार होकर मर गया। थोड़े समयमें वह पापात्मा अपने पूर्वकर्मके कारण सिन्धुदेशमें एक तेजस्वी घोड़ा हुआ। उसका पेट सटा हुआ था। घोड़ेके लक्षणोंका ठीक-ठीक ज्ञान रखनेवाले किसी वैश्यके पुत्रने बहुत-सा मूल्य देकर उस अश्वको खरीद लिया और बड़े यत्नके साथ उसे राजधानीतक वह ले आया। वैश्य-कुमार वह अश्व राजाको देनेके लिये लाया था। यद्यपि राजा उससे परिचित थे, तथापि द्वारपालने जाकर उसके आगमनकी सूचना की। राजाने पूछा—'किसलिये आये हो ?' तब उसने स्पष्ट शब्दोंमें उत्तर दिया—'देव ! सिन्धुदेशमें एक उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न अश्व था, जिसे तीनों लोकोंका एक रत्न समझकर मैंने बहुत-सा मूल्य देकर खरीद लिया है।' राजाने आज्ञा दी—'उस अश्वको यहाँ ले आओ।'

वास्तवमें वह घोड़ा गुणोंमें उच्चैःश्रवाके समान था। सुन्दर रूपका तो मानो घर ही था। शुभ लक्षणोंका समुद्र जान पड़ता था। वैश्य घोड़ा ले आया और राजाने उसे देखा। अश्वका लक्षण जाननेवाले अमात्योंने उसकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर राजा अपार आनन्दमें निमग्न हो गये और उन्होंने वैश्यको मुँहमाँगा सुवर्ण देकर तुरंत ही उस अश्वको खरीद लिया। कुछ दिनोंके बाद एक समय राजा शिकार खेलनेके लिये उत्सुक हो उसी घोड़ेपर चढ़कर वनमें गये। वहाँ मृगोंके पीछे इन्होंने अपना घोड़ा बढ़ाया। पीछे-पीछे सब ओरसे दौड़कर आते हुए समस्त सैनिकोंका साथ छूट गया। वे हिरनोंद्वारा आकृष्ट होकर बहुत दूर निकल गये। प्यासने उन्हें व्याकुल कर दिया। तब वे घोड़ेसे उतरकर जलकी खोज करने लगे। घोड़ेको तो उन्होंने वृक्षकी डालीमें बाँध दिया और स्वयं एक चट्टानपर चढ़ने लगे। कुछ दूर जानेपर इन्होंने देखा कि एक पत्तेका टुकड़ा हवासे उड़कर शिलाखण्डपर गिरा है। उसमें गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा हुआ था। राजा उसे बाँचने लगे। उनके मुखसे गीताके अक्षर सुनकर घोड़ा तुरंत गिर पड़ा और अश्वयोनिसे उसकी मुक्ति हो गयी तथा तुरंत ही दिव्य विमानपर बैठकर वह स्वर्गलोकको चला गया। तत्पश्चात् राजाने पहाड़पर चढ़कर एक उत्तम आश्रम देखा, जहाँ नागकेसर, केले, आम और नारियलके वृक्ष लहरा रहे थे। आश्रमके भीतर एक ब्राह्मण बैठे हुए थे, जो संसारकी वासनाओंसे मुक्त थे। राजाने उन्हें प्रणाम करके बड़ी भक्तिके साथ पूछा— 'ब्रह्मन् ! मेरा अश्व जो अभी-अभी स्वर्गको चला गया है, उसमें क्या कारण है ?'

राजाकी बात सुनकर त्रिकालदर्शी, मन्त्रवेत्ता एवं महापुरुषोंमें श्रेष्ठ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मणने कहा—

'राजन्! पूर्वकालमें तुम्हारे यहाँ जो 'सरभ मेरुण्ड' नामक सेनापति था, वह तुम्हें पुत्रोंसहित मारकर स्वयं

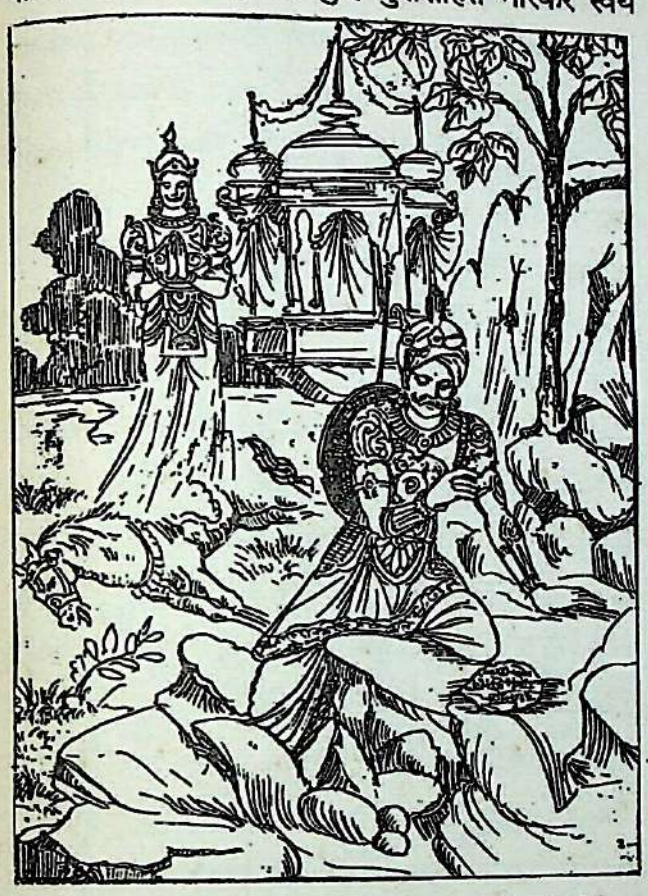

राज्य हड़प लेनेको तैयार था। इसी बीचमें हैजेका शिकार होकर वह मृत्युको प्राप्त हो गया। उसके बाद वह उसी पापसे घोड़ा हुआ था। यहाँ कहीं गीताके पंद्रहवें अध्यायका आधा श्लोक लिखा मिल गया था, उसे ही तुम बाँचने लगे। उसीको तुम्हारे मुखसे सुनकर वह अश्व स्वर्गको प्राप्त हुआ है।'

तदनन्तर राजाके पार्श्ववर्ती सैनिक उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके साथ ब्राह्मणको प्रणाम करके राजा प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे चले और गीताके पंद्रहवें अध्यायके श्लोकाक्षरोंसे अङ्कित उसी पत्रको बाँच-बाँचकर प्रसन्न होने लगे। उनके नेत्र हर्षसे खिल उठे थे। घर आकर उन्होंने मन्त्रवेत्ता मन्त्रियोंके साथ अपने पुत्र सिंहबलको राज्यसिंहासनपर अभिषिक्त किया और स्वयं पंद्रहवें अध्यायके जपसे विशुद्धचित्त होकर मोक्ष प्राप्त कर लिया।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! अब मैं गीताके सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बताऊँगा, सुनो। गुजरातमें सौराष्ट्र नामक एक नगर है। वहाँ खड्गबाहु नामके राजा राज्य करते थे, जो दूसरे इन्द्रके समान प्रतापी थे। उनके एक हाथी था, जो मद बहाया करता और सदा मदसे उन्मत्त रहता था। उस हाथीका नाम अरिमर्दन था। एक दिन रातमें वह हठात् साँकलों और लोहेके खम्भोंको तोड़-फोड़कर बाहर निकला। हाथीवान उसके दोनों ओर अङ्कुश लेकर डरा रहे थे, किन्तु क्रोधवश उन सबकी अवहेलना करके उसने अपने रहनेके स्थान—हथिसारको ढहा दिया। उसपर चारों ओरसे भालोंकी मार पड़ रही थी। फिर भी हाथीवान ही डरे हुए थे, हाथीको तनिक भी भय नहीं होता था। इस कौतूहलपूर्ण घटनाको सुनकर राजा स्वयं हाथीको मनानेकी कलामें निपुण राजकुमारोंके साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने उस बलवान् दँतैले हाथीको देखा। नगरके निवासी अन्य काम-धंधोंकी चिन्ता छोड़ अपने बालकोंको भयसे बचाते हुए बहुत दूर खड़े होकर उस महाभयङ्कर गजराजको देखते रहे। इसी समय कोई ब्राह्मण तालाबसे नहाकर उसी मार्गसे लौटे। वे गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका जप कर रहे थे। पुरवासियों और पीलवानोंने उन्हें बहुत मना किया; किन्तु उन्होंने किसीकी न मानी। उन्हें हाथीसे भय नहीं था; इसीलिये वे विचलित नहीं हुए। उधर हाथी अपने फूत्कारसे चारों दिशाओंको व्याप्त करता हुआ लोगोंको कुचल रहा था। वे ब्राह्मण उसके बहते हुए मदको हाथसे छूकर कुशलपूर्वक निकल गये। इससे वहाँ राजा तथा देखनेवाले पुरवासियोंके मनमें इतना विस्मय हुआ कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजाके कमलनेत्र चकित हो उठे थे। उन्होंने ब्राह्मणको बुला सवारीसे उतरकर उन्हें प्रणाम किया और पूछा—'ब्रह्मन्! आज आपने यह महान् अलौकिक कार्य किया है, क्योंकि इस कालके समान भयंकर गजराजके सामनेसे आप सकुशल लौट आये हैं। प्रभो! आप किस देवताका पूजन तथा किस मन्त्रका जप करते हैं? बताइये, आपने कौन-सी सिद्धि प्राप्त की है?'

ब्राह्मणने कहा—राजन्! मैं प्रतिदिन गीताके

सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका जप किया करता हूँ, उसीसे ये सारी सिद्धियाँ प्राप्त हुई हैं।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—तब हाथीका कौतूहल देखनेकी इच्छा छोड़कर राजा ब्राह्मणदेवताको साथ ले अपने महलमें आये। वहाँ शुभ मुहूर्त देखकर एक लाख स्वर्ण-मुद्राओंकी दक्षिणा दे उन्होंने ब्राह्मणको संतुष्ट किया और उनसे गीता-मन्त्रकी दीक्षा ली। गीताके सोलहवें अध्यायके कुछ श्लोकोंका अभ्यास कर लेनेके बाद उनके मनमें हाथीको छोड़कर उसके कौतुक देखनेकी इच्छा जाग्रत् हुई। फिर तो एक दिन सैनिकोंके साथ बाहर निकलकर राजाने हाथीवानोंसे उसी मत्त गजराजका बन्धन खुलवाया। उन्हें भयकी बात भूल गयी। राज्यके सुख-विलासके प्रति आदरका भाव नहीं रहा। वे अपना जीवन तृणवत् समझकर हाथीके सामने चले गये। साहसी मनुष्योंमें अग्रगण्य राजा खड्गबाहु मन्त्रपर विश्वास करके हाथीके समीप गये और मदकी अनवरत धारा बहाते हुए उसके गण्डस्थलको हाथसे छूकर सकुशल लौट आये। कालके मुखसे धार्मिक और खलके मुखसे साधु पुरुषकी भाँति राजा उस गजराजके मुखसे बचकर निकल आये। नगरमें आनेपर उन्होंने अपने राजकुमारको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया तथा स्वयं गीताके सोलहवें अध्यायका जप करके परमगति प्राप्त की।

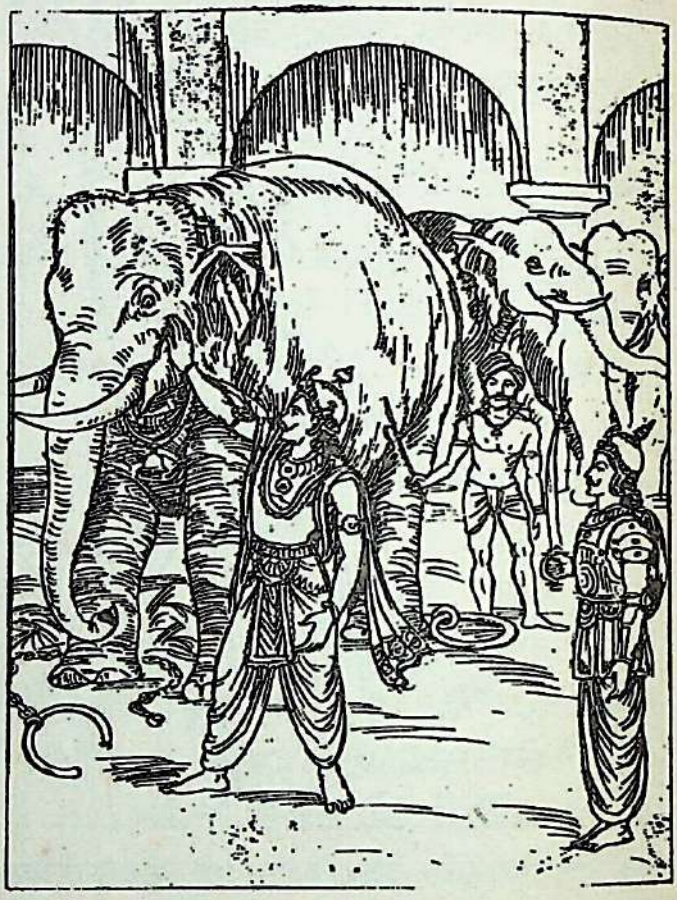

श्रीमद्भगवद्गीताके सत्रहवें और अठारहवें अध्यायोंका माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! सोलहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया गया। अब सत्रहवें अध्यायकी अनन्त महिमा श्रवण करो। राजा खड्गबाहुके पुत्रका दुःशासन नामक एक नौकर था। वह बड़ी खोटी बुद्धिका मनुष्य था। एक बार वह माण्डलिक राजकुमारोंके साथ बहुत धनकी बाजी लगाकर हाथीपर चढ़ा और कुछ ही कदम आगे जानेपर लोगोंके मना करनेपर भी वह मूढ़ हाथीके प्रति जोर-जोरसे कठोर शब्द करने लगा। उसकी आवाज सुनकर हाथी क्रोधसे अंधा हो गया और दुःशासन पैर फिसल जानेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा। दुःशासनको गिरकर कुछ-कुछ उच्छ्वास लेते देख कालके समान निरङ्कुश हाथीने क्रोधमें भरकर उसे ऊपर फेंक दिया। ऊपरसे गिरते ही उसके प्राण निकल गये। इस प्रकार कालवश मृत्युको प्राप्त होनेके बाद उसे हाथीकी ही योनि मिली और सिंहलद्वीपके महाराजके यहाँ उसने अपना बहुत समय व्यतीत किया।

सिंहलद्वीपके राजाकी महाराज खड्गबाहुसे बड़ी मैत्री थी, अतः उन्होंने जलके मार्गसे उस हाथीको मित्रकी प्रसन्नताके लिये भेज दिया। एक दिन राजाने श्लोककी समस्या-पूर्तिसे सन्तुष्ट होकर किसी कविको पुरस्काररूपमें वह हाथी दे दिया और उन्होंने सौ स्वर्ण-मुद्राएँ लेकर उसे मालव-नरेशके हाथ बेच दिया। कुछ काल व्यतीत होनेपर वह हाथी यत्नपूर्वक पालित होनेपर भी असाध्य ज्वरसे ग्रस्त होकर मरणासन्न हो गया। हाथीवानोंने जब उसे ऐसी शोचनीय अवस्थामें

देखा तो राजाके पास जाकर हाथीके हितके लिये शीघ्र ही सारा हाल कह सुनाया—'महाराज ! आपका हाथी अस्वस्थ जान पड़ता है। उसका खाना, पीना और सोना सब छूट गया है। हमारी समझमें नहीं आता इसका क्या कारण है।'

हाथीवानोंका बताया हुआ समाचार सुनकर राजाने हाथीके रोगको पहचाननेवाले चिकित्साकुशल मन्त्रियोंके साथ उस स्थानपर पदार्पण किया जहाँ हाथी ज्वरग्रस्त होकर पड़ा था। राजाको देखते ही उसने ज्वरजनित वेदनाको भूलकर संसारको आश्चर्यमें डालनेवाली वाणीमें कहा—'सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता, राजनीतिके समुद्र, शत्रु-समुदायको परास्त करनेवाले तथा भगवान् विष्णुके चरणोंमें अनुराग रखनेवाले महाराज ! इन औषधोंसे क्या लेना है ? वैद्योंसे भी कुछ लाभ होनेवाला नहीं है। दान और जपसे भी क्या सिद्ध होगा ? आप कृपा करके गीताके सत्रहवें अध्यायका पाठ करनेवाले किसी ब्राह्मणको बुलवाइये।'

हाथीके कथनानुसार राजाने सब कुछ वैसा ही किया। तदनन्तर गीता-पाठ करनेवाले ब्राह्मणने जब

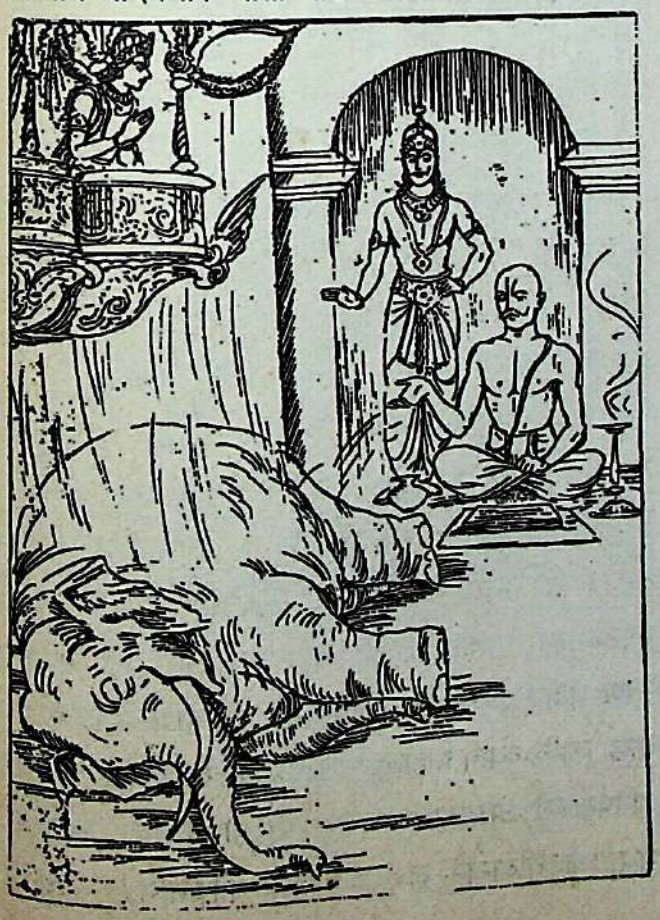

उत्तम जलको अभिमन्त्रित करके उसके ऊपर डाला, तो दुःशासन गजयोनिका परित्याग करके मुक्त हो गया। राजाने दुःशासनको दिव्य विमानपर आरूढ़ एवं इन्द्रके समान तेजस्वी देखकर पूछा—'तुम्हारी पूर्व-जन्ममें क्या जाति थी ? क्या स्वरूप था ? कैसे आचरण थे ? और किस कर्मसे तुम यहाँ हाथी होकर आये थे ? ये सारी बातें मुझे बताओ।' राजाके इस प्रकार पूछनेपर सङ्कटसे छूटे हुए दुःशासनने विमानपर बैठे-ही-बैठे स्थिरताके साथ अपना यथावत् समाचार कह सुनाया। तत्पश्चात् नरश्रेष्ठ मालवनरेश भी गीताके सत्रहवें अध्यायका जप करने लगे। इससे थोड़े ही समयमें उनकी मुक्ति हो गयी।

श्रीपार्वतीजीने कहा—भगवन् ! आपने सत्रहवें अध्यायका माहात्म्य बतलाया। अब अठारहवें अध्यायके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—गिरिनन्दिनि ! चिन्मय आनन्दकी धारा बहानेवाले अठारहवें अध्यायके पावन माहात्म्यको, जो वेदसे भी उत्तम है, श्रवण करो। यह सम्पूर्ण शास्त्रोंका सर्वस्व, कानोंमें पड़ा हुआ रसायनके समान तथा संसारके यातना-जालको छिन्न-भिन्न करनेवाला है। सिद्ध पुरुषोंके लिये यह परम रहस्यकी वस्तु है। इसमें अविद्याका नाश करनेकी पूर्ण क्षमता है। यह भगवान् विष्णुकी चेतना तथा सर्वश्रेष्ठ परमपद है। इतना ही नहीं, यह विवेकमयी लताका मूल, काम, क्रोध और मदको नष्ट करनेवाला, इन्द्र आदि देवताओंके चित्तका विश्राम-मन्दिर तथा सनक-सनन्दन आदि महायोगियोंका मनोरञ्जन करनेवाला है। इसके पाठमात्रसे यमदूतोंकी गर्जना बंद हो जाती है। पार्वती ! इससे बढ़कर कोई ऐसा रहस्यमय उपदेश नहीं है, जो सन्तप्त मानवोंके त्रिविध तापको हरनेवाला और बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला हो। अठारहवें अध्यायका लोकोत्तर माहात्म्य है। इसके सम्बन्धमें जो पवित्र उपाख्यान है, उसे भक्तिपूर्वक सुनो। उसके श्रवणमात्रसे जीव समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

मेरुगिरिके शिखरपर अमरावती नामवाली एक

रमणीय पुरी है। उसे पूर्वकालमें विश्वकर्माने बनाया था। उस पुरीमें देवताओंद्वारा सेवित इन्द्र शचीके साथ निवास करते थे। एक दिन वे सुखपूर्वक बैठे हुए थे, इतनेहीमें उन्होंने देखा कि भगवान् विष्णुके दूतोंसे सेवित एक अन्य पुरुष वहाँ आ रहा है। इन्द्र उस नवागत पुरुषके तेजसे तिरस्कृत होकर तुरंत ही अपने मणिमय सिंहासनसे मण्डपमें गिर पड़े। तब इन्द्रके सेवकोंने देवलोकके साम्राज्यका मुकुट इस नूतन इन्द्रके मस्तकपर रख दिया। फिर तो दिव्य गीत गाती हुई देवाङ्गनाओंके साथ सब देवता उनकी आरती उतारने लगे। ऋषियोंने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके उन्हें अनेक आशीर्वाद दिये। रम्भा आदि अप्सराएँ उनके आगे नृत्य करने लगीं। गन्धर्वोंका ललित स्वरमें मङ्गलमय गान होने लगा।

इस प्रकार इस नवीन इन्द्रको सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किये बिना ही नाना प्रकारके उत्सवोंसे सेवित देखकर पुराने इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे सोचने लगे—'इसने तो मार्गमें न कभी पौंसले बनवाये हैं, न पोखरे खुदवाये हैं और न पथिकोंको विश्राम देनेवाले बड़े-बड़े वृक्ष ही लगवाये हैं। अकाल पड़नेपर अन्नदानके द्वारा इसने प्राणियोंका सत्कार भी नहीं किया है। इसके द्वारा तीर्थोंमें सत्र और गाँवोंमें यज्ञका अनुष्ठान भी नहीं हुआ है। फिर इसने यहाँ भाग्यकी दी हुई ये सारी वस्तुएँ कैसे प्राप्त की हैं?' इस चिन्तासे व्याकुल होकर इन्द्र भगवान् विष्णुसे पूछनेके लिये वेगपूर्वक क्षीरसागरके तटपर गये और वहाँ अकस्मात् अपने साम्राज्यसे भ्रष्ट होनेका दुःख निवेदन करते हुए बोले—'लक्ष्मीकान्त! मैंने पूर्वकालमें आपकी प्रसन्नताके लिये सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उसीके पुण्यसे मुझे इन्द्रपदकी प्राप्ति हुई थी; किन्तु इस समय स्वर्गमें कोई दूसरा ही इन्द्र अधिकार जमाये बैठा है। उसने तो न कभी धर्मका अनुष्ठान किया है और न यज्ञोंका। फिर उसने मेरे दिव्य सिंहासनपर कैसे अधिकार जमाया है?'

श्रीभगवान् बोले—इन्द्र! वह गीताके अठारहवें अध्यायमेंसे पाँच श्लोकोंका प्रतिदिन जप करता है। उसीके पुण्यसे उसने तुम्हारे उत्तम साम्राज्यको प्राप्त कर लिया है। गीताके अठारहवें अध्यायका पाठ सब पुण्योंका शिरोमणि है। उसीका आश्रय लेकर तुम भी अपने पदपर स्थिर हो सकते हो।

भगवान् विष्णुके ये वचन सुनकर और उस उत्तम उपायको जानकर इन्द्र ब्राह्मणका वेष बनाये गोदावरीके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कालिकाग्राम नामक उत्तम और पवित्र नगर देखा, जहाँ कालका भी मर्दन करनेवाले भगवान् कालेश्वर विराजमान हैं। वहीं गोदावरी-तटपर एक परम धर्मात्मा ब्राह्मण बैठे थे, जो बड़े ही दयालु और वेदोंके पारङ्गत विद्वान् थे। वे अपने मनको वशमें करके प्रतिदिन गीताके अठारहवें अध्यायका जप किया करते थे। उन्हें देखकर इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन्हींसे अठारहवें अध्यायको पढ़ा। फिर उसीके पुण्यसे उन्होंने

श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लिया। इन्द्र आदि देवताओंका पद बहुत ही छोटा है, यह जानकर वे परम हर्षके साथ उत्तम वैकुण्ठधामको गये। अतः यह अध्याय मुनियोंके लिये श्रेष्ठ परमतत्त्व है। पार्वती! अठारहवें अध्यायके इस दिव्य माहात्म्यका वर्णन

समाप्त हुआ। इसके श्रवणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण गीताका पापनाशक माहात्म्य बतलाया गया। महाभागे! जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर इसका श्रवण करता है, वह समस्त यज्ञोंका फल पाकर अन्तमें श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है।

देवर्षि नारदकी सनकादिसे भेंट तथा नारदजीके द्वारा भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके वृत्तान्तका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन्! समस्त पुराणोंमें श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके प्रत्येक पदमें महर्षिद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका नाना प्रकारसे गान किया गया है; अतः इस समय उसीके माहात्म्यका इतिहाससहित वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजीने कहा—जिनका अभी यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था तथा जो समस्त लौकिक-वैदिक कृत्योंका परित्याग करके घरसे निकले जा रहे थे, ऐसे शुकदेवजीको बाल्यावस्थामें ही संन्यासी होते देख उनके पिता श्रीकृष्णद्वैपायन विरहसे कातर हो उठे और 'बेटा! बेटा!! तुम कहाँ चले जा रहे हो?' इस प्रकार पुकारने लगे। उस समय शुकदेवजीके साथ एकाकार होनेके कारण वृक्षोंने ही उनकी ओरसे उत्तर दिया था। ऐसे सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें आत्मारूपसे विराजमान परम ज्ञानी श्रीशुकदेव मुनिको मैं प्रणाम करता हूँ।

एक समय भगवत्कथाका रसास्वादन करनेमें कुशल परम बुद्धिमान् शौनकजीने नैमिषारण्यमें विराजमान सूतजीको नमस्कार करके पूछा।

शौनकजी बोले—सूतजी! आप इस समय कोई ऐसी सारगर्भित कथा कहिये, जो हमारे कानोंको अमृतके समान मधुर जान पड़े तथा जो अज्ञानान्धकारका विध्वंस और कोटि-कोटि जन्मोंके पापोंका नाश करनेवाली हो। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यसे प्राप्त होनेवाला विज्ञान कैसे बढ़ता है तथा वैष्णवलोग किस प्रकार माया-मोहका निवारण करते हैं। इस घोर कलिकालमें प्रायः जीव असुर-स्वभावके हो गये हैं, इसीलिये वे नाना प्रकारके क्लेशोंसे घिरे रहते हैं; अतः उनकी शुद्धिका सर्वश्रेष्ठ उपाय क्या है? इस समय हमें ऐसा कोई साधन बताइये, जो सबसे अधिक कल्याणकारी, पवित्रको भी पवित्र करनेवाला तथा सदाके लिये भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति करा देनेवाला हो। चिन्तामणि केवल लौकिक सुख देती है, कल्पवृक्ष स्वर्गतककी सम्पत्ति दे सकता है; किन्तु यदि गुरुदेव प्रसन्न हो जायँ तो वे योगियोंको भी कठिनतासे मिलनेवाला नित्य वैकुण्ठधामतक दे सकते हैं।

सूतजीने कहा—शौनकजी! आपके हृदयमें भगवत्कथाके प्रति प्रेम है; अतः मैं भलीभाँति विचार करके सम्पूर्ण सिद्धान्तोंद्वारा अनुमोदित और संसार-जनित भयका नाश करनेवाले सारभूत साधनका वर्णन करता हूँ। वह भक्तिको बढ़ानेवाला तथा भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताका प्रधान हेतु है। आप उसे सावधान होकर सुनें। कलियुगमें कालरूपी सर्पसे डँसे जानेके भयको दूर करनेके लिये ही श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत-शास्त्रका उपदेश किया है। मनकी शुद्धिके लिये इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। जब जन्म-जन्मान्तरोंका पुण्य उदय होता है तब कहीं श्रीमद्भागवत-शास्त्रकी प्राप्ति होती है। जिस समय श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित्‌को कथा सुनानेके लिये सभामें विराजमान हुए, उस समय देवतालोग अमृतका कलश लेकर उनके पास आये। देवता अपना कार्य-साधन करनेमें बड़े चतुर होते हैं। वे सब-के-सब श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करके कहने लगे—'मुने! आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये। इस प्रकार परिवर्तन करके राजा परीक्षित् अमृतका पान करें [और अमर हो जायँ] तथा हम सब लोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करेंगे। तब श्रीशुकदेवजीने सोचा—'इस लोकमें कहाँ अमृत और

कहाँ भागवतकथा, कहाँ काँच और कहाँ बहुमूल्य मणि !' यह विचारकर वे देवताओंकी बातपर हँसने लगे, तथा उन्हें अनधिकारी जानकर कथामृतका दान नहीं किया। अतः श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। केवल श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्‌का मोक्ष हुआ देख पूर्वकालमें ब्रह्माजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला। उस समय अन्य सभी साधन हलके पड़ गये, अपने गौरवके कारण श्रीमद्भागवतका ही पलड़ा सबसे भारी रहा। यह देखकर समस्त ऋषियोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने इस पृथ्वीपर भगवत्स्वरूप भागवत-शास्त्रको ही पढ़ने-सुननेसे तत्काल भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला निश्चय किया। यदि एक वर्षमें श्रीमद्भागवतको सुनकर पूरा किया जाय, तो वह श्रवण महान् सौख्य प्रदान करनेवाला होता है। जिसके हृदयमें भगवद्भक्तिकी कामना हो, उसके लिये एक मासमें पूरे श्रीमद्भागवतका श्रवण उत्तम माना गया है। यदि सप्ताहपारायणकी विधिसे इसका श्रवण किया जाय तो यह सर्वथा मोक्ष देनेवाला होता है। पूर्वकालमें सनकादि महर्षियोंने कृपा करके इसे देवर्षि नारदको सुनाया था। यद्यपि देवर्षि नारद श्रीमद्भागवतको पहले ही ब्रह्माजीके मुखसे सुन चुके थे तथापि इसके सप्ताहश्रवणकी विधि तो उन्हें सनकादिने ही बतायी थी।

शौनकजी ! अब मैं आपको वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना प्रिय शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था। एक समयकी बात है, सनक-सनन्दन आदि चारों निर्मल अन्तःकरणवाले महर्षि सत्सङ्गके लिये विशालापुरी (बदरिकाश्रम) में आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा।

सनकादि कुमारोंने पूछा—ब्रह्मन् ! आपके मुखपर दीनता क्यों छा रही है। आप चिन्तासे आतुर कैसे हो रहे हैं। इतनी उतावलीके साथ आप जाते कहाँ हैं और आये कहाँसे हैं ? इस समय तो आप जिसका सारा धन लुट गया हो, उस पुरुषके समान सुध-बुध खोये हुए हैं। आप-जैसे आसक्तिशून्य विरक्त पुरुषकी ऐसी अवस्था होनी तो उचित नहीं है। बताइये, इसका क्या कारण है ?

नारदजीने कहा—महात्माओ ! मैं पृथ्वीको [नाना तीर्थोंके कारण] सबसे उत्तम जानकर यहाँकी यात्रा करनेके लिये आया था। आनेपर पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी, हरिक्षेत्र, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग और सेतुबन्ध आदि तीर्थोंमें इधर-उधर विचरता रहा। किन्तु कहीं भी मुझे मनको सन्तोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सखा कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रखा है। अब यहाँ सत्य, तपस्या, शौच, दया और दान आदि कुछ भी नहीं हैं। बेचारे जीव पेट पालनेमें लगे हैं। वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हो गये हैं। उन्हें तरह-तरहके उपद्रव घेरे रहते हैं। साधु-संत कहलानेवाले लोग पाखण्डमें फँस गये हैं। ऊपरसे विरक्त जान पड़ते हैं, किन्तु वास्तवमें पूरे संग्रही हैं। घर-घरमें स्त्रियोंका राज्य है। साले ही सलाहकार बने हुए हैं। पैसोंके लोभसे कन्याएँ-तक बेची जाती हैं। पति-पत्नीमें सदा ही कलह मचा रहता है। आश्रमों, तीर्थों और नदियोंपर म्लेच्छोंने अधिकार जमा रखा है। उन दुष्टोंने बहुत-से देवमन्दिर भी नष्ट कर दिये हैं। अब यहाँ न कोई योगी है न सिद्ध, न कोई ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही। इस समय सब साधन कलिरूपी दावानलसे भस्म हो गया है। पृथ्वीपर चारों ओर सभी

देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचते हैं। ब्राह्मणलोग पैसे लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्यावृत्तिसे जीवन-निर्वाह करती देखी जाती हैं।

इस प्रकार कलियुगके दोष देखता और पृथ्वीपर विचरता हुआ मैं यमुनाजीके तटपर आ पहुँचा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी लीला हुई थी। मुनीश्वरो! वहाँ आनेपर मैंने जो आश्चर्यकी बात देखी है, उसे आपलोग सुनें—'वहाँ एक तरुणी स्त्री बैठी थी; जिसका चित्त बहुत ही खिन्न था। उसके पास ही दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा-शुश्रूषा करती, उन्हें जगानेकी चेष्टा करती और अपने प्रयत्नमें असफल होकर रोने लगती थी। बीच-बीचमें दसों दिशाओंकी ओर दृष्टि डालकर वह अपने लिये कोई रक्षक भी ढूँढ़ रही थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ पंखा झलती हुई उसे बार-बार सान्त्वना दे रही थीं। दूरसे ही यह सब देखकर मैं कौतूहलवश उसके पास चला गया। मुझे देखते ही वह युवती स्त्री उठकर खड़ी हो गयी और व्याकुल होकर बोली—'महात्माजी!

क्षणभरके लिये ठहर जाइये और मेरी चिन्ताको भी नष्ट कीजिये। आपका दर्शन संसारके समस्त पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है। आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। जब बहुत बड़ा भाग्य होता है, तभी आप-जैसे महात्माका दर्शन होता है।'

नारदजी कहते हैं—युवतीकी ऐसी बात सुनकर मेरा हृदय करुणासे भर आया और मैंने उत्कण्ठित होकर उस सुन्दरीसे पूछा—देवि! तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष कौन हैं? तथा तुम्हारे पास ये कमलके समान नेत्रोंवाली देवियाँ कौन हैं? तुम विस्तारके साथ अपने दुःखका कारण बताओ।

युवती बोली—मेरा नाम भक्ति है, ये दोनों पुरुष मेरे पुत्र हैं; इनका नाम ज्ञान और वैराग्य है। समयके फेरसे आज इनका शरीर जराजीर्ण हो गया है। इन देवियोंके रूपमें गङ्गा आदि नदियाँ हैं, जो मेरी सेवाके लिये आयी हैं। इस प्रकार साक्षात् देवियोंके द्वारा सेवित होनेपर भी मुझे सुख नहीं मिलता। तपोधन! अब तनिक सावधान होकर मेरी बात सुनिये। मेरी कथा कुछ विस्तृत है। उसे सुनकर मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न होकर कर्णाटकमें बड़ी हुई। महाराष्ट्रमें भी कहीं-कहीं मेरा आदर हुआ। गुजरातमें आनेपर तो मुझे बुढ़ापेने घेर लिया। वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अङ्ग-भङ्ग कर डाला। तबसे बहुत दिनोंतक मैं दुर्बल-ही-दुर्बल रही। वृन्दावन मुझे बहुत प्रिय है, इसलिये अपने दोनों पुत्रोंके साथ यहाँ चली आयी। इस स्थानपर आते ही मैं परम सुन्दरी नवयुवती हो गयी। इस समय मेरा रूप अत्यन्त मनोरम हो गया है, परन्तु मेरे ये दोनों पुत्र थके-माँदे होनेके कारण यहीं सोकर कष्ट भोग रहे हैं। मैं यह स्थान छोड़कर विदेश जाना चाहती थी; परन्तु ये दोनों बूढ़े हो गये हैं, इसी दुःखसे मैं दुःखित हो रही हूँ। पता नहीं मैं यहाँ युवती कैसे हो गयी और मेरे ये दोनों पुत्र बूढ़े क्यों हो गये। हम तीनों साथ-ही-साथ यात्रा करते थे, फिर हममें यह विपरीत अवस्था कैसे आ गयी। उचित तो यह है कि माता बूढ़ी हो और बेटे जवान; परन्तु यहाँ उलटी बात हो गयी। इसीलिये मैं चकितचित्त होकर अपने लिये शोक करती हूँ। महात्मन्! आप परम बुद्धिमान् और योगनिधि हैं। बताइये, इसमें क्या कारण हो सकता है?

नारदजी कहते हैं—उसके इस प्रकार पूछनेपर

मैंने कहा—साध्वी ! मैं अभी ज्ञानदृष्टिसे अपने हृदयके भीतर तुम्हारे दुःखका सारा कारण देखता हूँ। तुम खेद न करो। भगवान् तुम्हें शान्ति देंगे।

तब मुनीश्वर नारदजीने ध्यान लगाया और एक ही क्षणमें उसका कारण जानकर कहा—'बाले ! तुम ध्यान देकर सुनो। यह कलिकाल बड़ा भयङ्कर युग है। इसीने सदाचारका लोप कर दिया। योगमार्ग और तप आदि भी लुप्त हो गये हैं। इस समय मनुष्य शठता और दुष्कर्ममें प्रवृत्त होकर असुर-स्वभावके हो गये हैं। आज जगत्में सज्जन पुरुष दुःखी हैं और दुष्टलोग मौज करते हैं। ऐसे समयमें जो धैर्य धारण किये रहे, वही बुद्धिमान्, धीर अथवा पण्डित है। अब यह पृथ्वी न तो स्पर्श करने-योग्य रह गयी है और न देखने योग्य। यह क्रमशः प्रतिवर्ष शेषनागके लिये भारभूत होती जा रही है। इसमें कहीं भी मङ्गल नहीं दिखायी देता। तुम्हें और तुम्हारे पुत्रोंको तो अब कोई देखता भी नहीं है। इस प्रकार विषयान्ध मनुष्योंके उपेक्षा करनेसे ही तुम जर्जर हो गयी थी, किन्तु वृन्दावनका संयोग पाकर पुनः नवीन तरुणी-सी हो गयी हो; अतः यह वृन्दावन धन्य है, जहाँ सब ओर भक्ति नृत्य कर रही है ! परन्तु इन ज्ञान और वैराग्यका यहाँ भी कोई ग्राहक नहीं है; इसलिये अभीतक इनका बुढ़ापा दूर नहीं हुआ। इन्हें अपने भीतर कुछ सुख-सा प्रतीत हो रहा है, इससे इनकी गाढ़ सुषुप्तावस्थाका अनुमान होता है।

भक्तिने कहा—महर्षे ! महाराज परीक्षित्ने इस अपवित्र कलियुगको पृथ्वीपर रहने ही क्यों दिया ? तथा कलियुगके आते ही सब वस्तुओंका सार कहाँ चला गया ? भगवान् तो बड़े दयालु हैं, उनसे भी यह अधर्म कैसे देखा जाता है ? मुने ! मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। आपकी बातोंसे मुझे बड़ा सुख मिला है।

नारदजी बोले—बाले ! यदि तुमने पूछा है तो प्रेमपूर्वक सुनो। कल्याणी ! मैं तुम्हें सब बातें बताऊँगा और इससे तुम्हारा सब शोक दूर हो जायगा। जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहाँ कलियुगका आगमन हुआ है, जो समस्त साधनोंमें बाधा उपस्थित करनेवाला है। दिग्विजयके समय जब राजा परीक्षित्की दृष्टि इस कलियुगके ऊपर पड़ी तो यह दीनभावसे उनकी शरणमें गया। राजा भौंरेके समान सारग्राही थे, इसलिये उन्होंने सोचा कि मुझे इसका वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस कलियुगमें एक बड़ा अद्भुत गुण है। अन्य युगोंमें तपस्या, योग और समाधिसे भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वही फल कलियुगमें भगवान् केशवके कीर्तनमात्रसे और अच्छे रूपमें उपलब्ध होता है।* असार होनेपर भी इस एक ही रूपमें यह सारभूत फल प्रदान करनेवाला है, यही देखकर राजा परीक्षित्ने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये इसे रहने दिया।

इस समय लोगोंकी खोटे कर्मोंमें प्रवृत्ति होनेसे सभी वस्तुओंका सार निकल गया है तथा इस पृथ्वीपर जितने भी पदार्थ हैं, वे बीजहीन भूसीके समान निस्सार हो गये हैं। ब्राह्मणलोग धनके लोभसे घर-घरमें जाकर प्रत्येक मनुष्यको [अधिकारी-अनधिकारीका विचार किये बिना ही] भागवतकी कथा सुनाने लगे हैं, इससे कथाका सार चला गया—लोगोंकी दृष्टिमें उसका कुछ महत्त्व नहीं रह गया है। तीर्थोंमें बड़े भयङ्कर कर्म करनेवाले नास्तिक और दम्भी मनुष्य भी रहने लगे हैं; इसलिये तीर्थोंका भी सार चला गया। जिनका चित्त काम, क्रोध, भारी लोभ और तृष्णासे सदा व्याकुल रहता है, वे भी तपस्वी बनकर बैठते हैं। इसलिये तपस्याका सार भी निकल गया। मनको काबूमें न करने, लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेने तथा शास्त्रका अभ्यास न करनेके कारण ध्यानयोगका फल भी चला गया। औरोंकी तो बात ही क्या, पण्डितलोग भी अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं। वे सन्तान

* यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना। तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात्॥ (१८९।७५)

पैदा करनेमें ही दक्ष हैं। मुक्तिके साधनमें वे नितान्त असमर्थ पाये जाते हैं। परम्परासे प्राप्त हुआ वैष्णव-धर्म कहीं भी नहीं रह गया है। इस प्रकार जगह-जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है। यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें दोष किसीका नहीं है; यही कारण है कि कमलनयन भगवान् विष्णु निकट रहकर भी यह सब कुछ सहन करते हैं।

शौनकजी! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर उसने जो कुछ कहा, उसे आप सुनिये।

भक्ति बोली—देवर्षे! आप धन्य हैं। मेरे सौभाग्यसे ही आपका यहाँ शुभागमन हुआ है। संसारमें साधु-महात्माओंका दर्शन सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध करनेवाला और सर्वश्रेष्ठ साधन है। अब जिस प्रकार मुझे सुख मिले—मेरा दुःख दूर हो जाय, वह उपाय बताइये। ब्रह्मन्! आप समस्त योगोंके स्वामी हैं, आपके लिये इस समय कुछ भी असाध्य नहीं है। एकमात्र आपके ही सुन्दर उपदेशको सुनकर कयाधू-नन्दन प्रह्लादने संसारकी मायाका त्याग किया था तथा राजकुमार ध्रुव भी आपकी ही कृपासे ध्रुवपदको प्राप्त हुए थे। आप सब प्रकारसे मङ्गलभाजन एवं श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं; मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

★

भक्तिका कष्ट दूर करनेके लिये नारदजीका उद्योग और सनकादिके द्वारा उन्हें साधनकी प्राप्ति

नारदजीने कहा—बाले! तुम व्यर्थ ही अपनेको खेदमें डालती हो। अहो! इतनी चिन्तातुर क्यों हो रही हो? भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करो। इससे तुम्हारा सारा दुःख दूर हो जायगा। जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की तथा गोपसुन्दरियोंका मनोरथ पूर्ण किया, वे श्रीकृष्ण कहीं चले नहीं गये हैं। तुम तो साक्षात् भक्ति हो, जो उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। तुम्हारे बुलानेपर तो भगवान् नीच पुरुषोंके घरोंमें भी चले जाते हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—इन तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किन्तु कलियुगमें तो केवल भक्ति ही ब्रह्म-सायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाली है। ऐसा सोचकर ही ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने तुम्हें प्रकट किया है। तुम भगवत्स्वरूपा, परमानन्दचिन्मूर्ति, परम सुन्दरी तथा साक्षात् श्रीकृष्णकी प्रियतमा हो। एक बार जब तुमने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ?' उस समय भगवान् श्रीकृष्णने तुम्हें यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण करो।' तुमने भगवान्की यह आज्ञा स्वीकार कर ली। इससे प्रसन्न होकर श्रीहरिने तुम्हें मुक्तिको दासीरूपमें दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्ररूपमें। तुम अपने साक्षात् स्वरूपसे तो वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती हो। भूलोकमें उनका पोषण करनेके लिये तुमने केवल छायारूप धारण कर रखा है।

मुक्ति अपने साथ ज्ञान और वैराग्यको लेकर तुम्हारी सेवाके लिये इस पृथ्वीपर आयी तथा सत्ययुगके आरम्भसे द्वापरके अन्ततक यहाँ बड़े आनन्दसे रही; परन्तु कलियुग आनेपर वह पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी। तब तुम्हारी आज्ञासे वह तुरंत ही फिर वैकुण्ठलोकको चली गयी। अब भी वह तुम्हारे स्मरण करनेपर इस लोकमें आती है और फिर चली जाती है। इन ज्ञान और वैराग्यको तुमने पुत्र मानकर अपने ही पास रख छोड़ा था। कलियुगमें मनुष्योंद्वारा इनकी उपेक्षा होनेके कारण ये तुम्हारे पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं; फिर भी तुम चिन्ता न करो। मैं इनके उद्धारका उपाय सोचता हूँ। सुमुखि! कलियुगके समान कोई युग नहीं है। इस युगमें मैं तुम्हें घर-घरमें और मनुष्य-मनुष्यके भीतर स्थापित कर दूँगा। अन्य जितने भी धर्म हैं; उन सबको दबाकर और बड़े-बड़े उत्सव रचाकर यदि संसारमें मैं तुम्हारा प्रचार न कर दूँ तो मैं श्रीहरिका दास ही नहीं। इस कलियुगमें जो जीव तुमसे सम्बन्ध रखेंगे, वे पापी होनेपर भी निर्भयतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके नित्य धामको चले जायँगे। जिनके

हृदयमें सदा प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती है, वे पवित्रमूर्ति पुरुष स्वप्नमें भी यमराजको नहीं देखते। जिनके हृदयमें भक्तिभाव भरा हुआ है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस अथवा असुर भी नहीं छू सकते। भगवान् तपस्या, वेदाध्ययन, ज्ञान तथा कर्म आदि किसी भी साधनसे वशमें नहीं किये जा सकते। वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं। इस विषयमें गोपियाँ ही प्रमाण हैं। सहस्रों जन्मोंका पुण्य उदय होनेपर मनुष्योंका भक्तिमें अनुराग होता है। कलियुगमें भक्ति ही सार है। भक्तिसे ही भगवान् श्रीकृष्ण सामने प्रकट होते—प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं, वे तीनों लोकोंमें दुःख उठाते हैं। पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको कितना क्लेश भोगना पड़ा था। व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञान-चर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी क्या आवश्यकता है? एकमात्र भक्ति ही मोक्ष प्रदान करनेवाली है।

इस प्रकार नारदजीद्वारा निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अङ्ग पुष्ट हो गये। उसने नारदजीसे कहा—'नारदजी! आप धन्य हैं। मुझमें आपकी निश्चल प्रीति है। मैं सदा आपके हृदयमें निवास करूँगी। कभी उसे छोड़कर नहीं जाऊँगी। साधो! आप बड़े कृपालु हैं। आपने एक क्षणमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया, किन्तु अभीतक मेरे पुत्रोंको चेत नहीं हुआ; अतः इन्हें भी शीघ्र ही सचेत कीजिये।

भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी दया आयी। वे उन्हें हाथकी अङ्गुलियोंसे दबा-दबाकर जगाने लगे; फिर कानके पास मुँह लगाकर जोर-जोरसे बोले—'ओ ज्ञान! जल्दी जागो। वैराग्य! तुम भी शीघ्र ही जाग उठो।' फिर वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बारम्बार गीता-पाठ करके उन्होंने उन दोनोंको जगाया। इससे वे बहुत जोर लगाकर किसी तरह उठ तो गये; किन्तु आँख खोलकर देख न सके। आलस्यके कारण दोनों ही जँभाई लेते रहे। उनके सिरके बाल पककर बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे। सारे अङ्ग रक्त-मांससे हीन होनेके कारण कङ्काल प्रतीत होते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो सूखे काठ हों। भूखसे दुर्बल होनेके कारण वे फिर सो गये। उन्हें इस अवस्थामें देखकर देवर्षि नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे 'अब मुझे क्या करना चाहिये, इनकी यह नींद कैसे जाय, तथा यह सबसे बड़ा बुढ़ापा कैसे दूर हो?' शौनकजी! इस प्रकार चिन्ता करते-करते उन्होंने भगवान् गोविन्दका स्मरण किया। उसी समय आकाशवाणी हुई—'मुने! खेद मत करो। तुम्हारा उद्योग निश्चय ही सफल होगा। देवर्षे! तुम इसके लिये सत्कर्मका अनुष्ठान करो। वह कर्म क्या है, यह तुम्हें साधु-शिरोमणि संतजन बतलायेंगे। उस सत्कर्मके करनेपर इनकी निद्रा और वृद्धावस्था दोनों क्षणभरमें दूर हो जायँगी तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार हो जायगा।'

यह आकाशवाणी वहाँ सबको साफ-साफ सुनायी दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'मैं तो इसका भाव नहीं समझ सका। इस आकाशवाणीने भी गुप्तरूपसे ही बात की है। यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन करनेयोग्य है, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो सके। वे संत न जाने कहाँ होंगे और किस प्रकार उस साधनका उपदेश देंगे। आकाशवाणीने जो कुछ कहा है, उसके अनुसार यहाँ मुझे क्या करना चाहिये?'

तदनन्तर ज्ञान और वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारद मुनि वहाँसे चल दिये और एक-एक तीर्थमें जाकर मार्गमें मिलनेवाले मुनीश्वरोंसे वह साधन पूछने लगे। उनका वृत्तान्त सब लोग सुन लेते; किन्तु कोई भी कुछ निश्चय करके उत्तर नहीं देता था। कुछ लोगोंने तो इस कार्यको असाध्य बता दिया और कोई बोले, 'इसका ठीक-ठीक पता लगना कठिन है।' कुछ लोग सुनकर मौन रह गये और कितने ही मुनि अपनी अवज्ञा होनेके भयसे चुपचाप खिसक गये। तीनों लोकोंमें महान् हाहाकार मचा, जो सबको विस्मयमें डालनेवाला था। लोग आपसमें काना-फूँसी करने लगे—'भाई! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और गीता-पाठ सुनानेपर भी ज्ञान और वैराग्य नहीं जाग सके तो अब दूसरा कोई उपाय

नहीं है। भला, योगी नारदको भी स्वयं जिसका ज्ञान नहीं है, उसे दूसरे संसारी मनुष्य कैसे बता सकते हैं ?' इस प्रकार जिन-जिन मुनियोंसे यह बात पूछी गयी, उन सबने निर्णय करके यही बताया कि यह कार्य दुस्साध्य है।

सूतजी बोले—तब नारदजी चिन्तासे आतुर हो बदरीवनमें आये। उन्होंने मन-ही-मन यह निश्चय किया था कि 'उस साधनकी प्राप्तिके लिये यहीं तपस्या करूँगा।' बदरीवनमें पहुँचते ही उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। तब मुनिश्रेष्ठ नारदजीने उनसे कहा—'महात्माओ ! इस समय बड़े सौभाग्यसे मुझे आपलोगोंका समागम प्राप्त हुआ है। कुमारो ! आप मुझपर कृपा करके अब शीघ्र ही उस साधनको बताइये। आप सब लोग योगी, बुद्धिमान् और बहुज्ञ विद्वान् हैं। देखनेमें पाँच वर्षके बालक-से होनेपर भी आप पूर्वजोंके भी पूर्वज हैं। आपलोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं। निरन्तर हरिनामकीर्तनमें तत्पर रहते हैं। भगवल्लीलामृतका रसास्वादन करके सदा उन्मत्त बने रहते हैं और एकमात्र भगवत्कथा ही आपके जीवनका आधार है। आपके मुखमें सदा **'हरिः शरणम्'** (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह मन्त्र विद्यमान रहता है। इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्था आपको बाधा नहीं पहुँचा सकती। पूर्वकालमें आपके भ्रूभङ्गमात्रसे भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरंत ही पृथ्वीपर गिर पड़े थे और फिर आपहीकी कृपासे वे पुनः वैकुण्ठधाममें पहुँचे। मेरा अहोभाग्य है, जिससे इस समय आपका दर्शन हुआ। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं; अतः मुझपर आपकी कृपा होनी चाहिये। आकाशवाणीने जिस साधनकी ओर संकेत किया है, वह क्या है ? इसे बताइये और किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये, इसका विस्तारसहित वर्णन कीजिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख प्राप्त हो सकता है और किस तरह इनका प्रेमपूर्वक यत्न करके सब वर्णोंमें प्रचार किया जा सकता है ?'

श्रीसनकादि बोले—देवर्षे ! आप चिन्ता न करें। अपने मनमें प्रसन्न हों। उनके उद्धारका एक सुगम उपाय पहलेसे ही मौजूद है। नारदजी ! आप धन्य हैं। विरक्तोंके शिरोमणि हैं। भगवान् श्रीकृष्णके दासोंमें सदा आगे गिनने योग्य हैं तथा योगमार्गको प्रकाशित करनेवाले साक्षात् सूर्य ही हैं। आप जो भक्तिके लिये इतना उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णके भक्तको तो भक्तिकी सदा स्थापना करना उचित ही है। ऋषियोंने इस संसारमें बहुत-से मार्ग प्रकट किये हैं; किन्तु वे सभी परिश्रमसाध्य हैं और उनमेंसे अधिकांश स्वर्गरूप फलकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो अभीतक गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष प्रायः बड़े भाग्यसे मिलता है। आपको आकाशवाणीने पहले जिस कर्तव्यका संकेत किया है, उसे बतलाया जाता है। आप स्थिर एवं प्रसन्नचित्त होकर सुनिये। नारदजी ! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ तथा स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्ममात्रके ही सूचक हैं, सत्कर्मके नहीं। सत्कर्म (मोक्षदायक कर्म) का सूचक तो विद्वानोंने केवल ज्ञानयज्ञको माना है। श्रीमद्भागवतका पारायण ही वह ज्ञानयज्ञ है, जिसका शुक आदि महात्माओंने गान किया है। उसके शब्द सुननेसे भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट दूर हो जायगा और भक्तिको सुख मिलेगा। श्रीमद्भागवतकी ध्वनि होनेपर कलियुगके ये सारे दोष उसी प्रकार दूर हो जायँगे, जैसे सिंहकी गर्जना सुनकर भेड़िये भाग जाते हैं। तब प्रेमरसकी धारा बहानेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यके सहित प्रत्येक घरमें तथा प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी।

नारदजीने कहा—मैंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और गीतापाठ आदिके द्वारा ज्ञान और वैराग्यको बहुत जगाया; किन्तु वे उठ न सके। ऐसी दशामें श्रीमद्भागवतका पाठ सुनानेसे वे कैसे जग सकेंगे; क्योंकि श्रीमद्भागवत-कथाके श्लोक-श्लोकमें और पद-पदमें वेदोंका ही अर्थ भरा हुआ है। आपलोग शरणागत पुरुषोंपर दया

करनेवाले हैं। आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता; इसलिये मेरे सन्देहका निवारण कीजिये। इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।

श्रीसनकादि बोले—नारदजी ! श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे प्रकट हुई है, अतः उनसे पृथक् फलके रूपमें आकर यह उनकी अपेक्षा भी अत्यन्त उत्तम प्रतीत होती है। जैसे आमके वृक्षमें जड़से लेकर शाखातक रस मौजूद रहता है, किन्तु उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; फिर वही एकत्रित होकर जब उससे पृथक् फलके रूपमें प्रकट होता है तो संसारमें सबके मनको प्रिय लगता है। जैसे दूधमें घी रहता है; किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता। फिर वही जब उससे पृथक् हो जाता है तो दिव्य जान पड़ता है और देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है। खाँड ईखके आदि, मध्य और अन्त—प्रत्येक भागमें व्याप्त रहती है; तथापि उससे पृथक् होनेपर ही उसमें अधिक मधुरता आती है। इसी प्रकार यह श्रीमद्भागवतकी कथा भी है। यह श्रीमद्भागवतपुराण वेदोंके समान माना गया है। श्रीवेदव्यासजीने भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापनाके लिये ही इसे प्रकट किया है। पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके निष्णात विद्वान् और गीताकी भी रचना करनेवाले वेदव्यासजी खिन्न होकर अज्ञानके समुद्रमें डूब रहे थे, उस समय आपने ही उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश किया था। उसका श्रवण करते ही व्यासदेवकी सारी चिन्ताएँ तत्काल दूर हो गयी थीं। उसी श्रीमद्भागवतके विषयमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे सन्देह पूछ रहे हैं ? श्रीमद्भागवत-शास्त्र समस्त शोक और दुःखका विनाश करनेवाला है।

नारदजीने कहा—महानुभावो ! आपका दर्शन जीवके समस्त अमङ्गलका तत्काल नाश कर देता है और सांसारिक दुःखरूपी दावानलसे पीड़ित प्राणियोंपर शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्र मुखोंद्वारा वर्णित भगवत्कथामृतका पान करते रहते हैं, मैं प्रेमलक्षणा-भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरणमें आया हूँ। अनेक जन्मोंके सञ्चित सौभाग्यप्रद पुण्यका उदय होनेपर जब कभी मनुष्यको सत्संग प्राप्त होता है, तभी अज्ञानजनित मोहमय महान् अन्धकारका नाश करके विवेकका उदय होता है।

★

सनकादिद्वारा श्रीमद्भागवतकी महिमाका वर्णन तथा कथा-रससे पुष्ट होकर भक्ति, ज्ञान और वैराग्यका प्रकट होना

नारदजी बोले—ज्ञानयोगके विशेषज्ञ महात्माओ ! अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी स्थापना करनेके लिये श्रीशुकदेवजीके कहे हुए श्रीमद्भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा यत्नपूर्वक उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा। यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये ? इसके लिये कोई स्थान बतलाइये। आपलोग वेदोंके पारंगत विद्वान् हैं, इसलिये मुझे शुकशास्त्र (श्रीमद्भागवत) की महिमा भी सुनाइये और यह भी बताइये कि श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनोंमें सुननी चाहिये तथा उसके सुननेके लिये कौन-सी विधि है।

श्रीसनकादिने कहा—नारदजी ! आप विनयी और विवेकी हैं, सुनिये—हम आपकी पूछी हुई सभी बातें बताते हैं। हरद्वारके समीप एक आनन्द नामका घाट है। वहाँ अनेकों ऋषि-महर्षि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन करते हैं। नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे वह स्थान व्याप्त है। वहाँ नूतन एवं कोमल बालू बिछी हुई है। वह घाट बड़ा ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है। सुवर्णमय कमल उसकी शोभा बढ़ाया करते हैं। उसके आस-पास रहनेवाले जीवोंके मनमें वैरका भाव नहीं ठहरने पाता। वहाँ अधिक समारोहके बिना ही आपको ज्ञान-यज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये। उस स्थानपर जो कथा होगी, उसमें बड़ा अपूर्व रस मिलेगा। भक्ति भी निर्बल एवं जरा-जीर्ण शरीरवाले अपने दोनों पुत्रोंको आगे करके वहीं आ जायगी; क्योंकि

जहाँ श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहाँ ये भक्ति आदि स्वतः पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाका शब्द पड़नेसे तीनों ही तरुण हो जायँगे।

ऐसा कहकर देवर्षि नारदजीके साथ सनकादि भी भागवत-कथारूपी अमृतका पान करनेके लिये शीघ्र ही हरद्वारमें गङ्गाजीके तटपर आ गये। जिस समय वे वहाँ तटपर पहुँचे भूलोक, देवलोक तथा ब्रह्मलोकमें—सब जगह इस कथाका शोर हो गया। रसिक भक्त श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये वहाँ सबसे पहले दौड़-दौड़कर आने लगे। भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, श्रीमान् छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान मुनिगण अपने पुत्र, मित्र और स्त्रियोंको साथ लिये बड़े प्रेमसे वहाँ आये। इनके सिवा वेद, वेदान्त, मन्त्र, तन्त्र, सतरह पुराण और छहों शास्त्र भी वहाँ मूर्तिमान् होकर उपस्थित हुए। गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, समस्त क्षेत्र, सम्पूर्ण दिशाएँ, दण्डक आदि वन, नाग आदि गण, देव, गन्धर्व और किन्नर—सभी कथा सुननेके लिये चले आये। जो लोग अपनेको बड़ा माननेके कारण संकोचवश वहाँ नहीं उपस्थित हुए थे, उन्हें महर्षि भृगु समझा-बुझाकर ले आये।

तदनन्तर, कथा सुनानेके लिये दीक्षा ग्रहण कर लेनेपर श्रीकृष्ण-परायण सनकादि नारदजीके दिये हुए उत्तम आसनपर विराजमान हुए। उस समय सभी श्रोताओंने उनको मस्तक झुकाया। श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये सबसे आगे बैठे और उनके भी आगे देवर्षि नारदजी विराजमान हुए। एक ओर ऋषि बैठे थे और दूसरी ओर देवता। वेदों और उपनिषदोंका अलग आसन था। एक ओर तीर्थ विराजमान हुए और दूसरी ओर स्त्रियाँ। उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खोंका शब्द होने लगा। अबीर-गुलाल आदि चूर्ण, खील और फूलोंकी खूब वर्षा हुई। कितने ही देवेश्वर विमानोंपर बैठकर वहाँ उपस्थित हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा करने लगे।

इस प्रकार जब पूजा समाप्त हुई और सब लोग एकाग्रचित्त होकर बैठ गये, तब सनकादि मुनि महात्मा नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके बतलाने लगे।

श्रीसनकादिने कहा—नारदजी! अब हम आपसे इस भागवत-शास्त्रकी महिमाका वर्णन करते हैं। इसके सुननेमात्रसे ही मुक्ति हाथ लग जाती है। श्रीमद्भागवतकी कथाका सदा ही सेवन करना चाहिये, सदा ही सेवन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे मुक्तिरत्नकी प्राप्ति हो जाती है। यह ग्रन्थ अठारह हजार श्लोकोंका है। इसमें बारह स्कन्ध हैं। यह राजा परीक्षित् और श्रीशुकदेव मुनिका संवादरूप है। हम इस श्रीमद्भागवतको सुनाते हैं, आप ध्यान देकर सुनें। जीव तभीतक अज्ञानवश इस संसार-चक्रमें भटकता है, जबतक कि क्षणभरके लिये भी यह श्रीमद्भागवत-कथा उसके कानोंमें नहीं पड़ती। बहुत-से शास्त्रों और पुराणोंके सुननेसे क्या लाभ। इससे तो भ्रम ही बढ़ता है। भागवत-शास्त्र अकेला ही मोक्ष देनेके लिये गरज रहा है। जिस घरमें प्रतिदिन श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है। जो लोग उसमें निवास करते हैं, उनके पापोंका नाश कर देता है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ भी इस श्रीमद्भागवतकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते। तपोधनो! मनुष्य जबतक श्रीमद्भागवतकथाका भलीभाँति श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप ठहर सकते हैं। गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर और प्रयाग—ये श्रीमद्भागवत-कथाके फलकी बराबरी नहीं कर सकते। ॐकार, गायत्रीमन्त्र, पुरुषसूक्त, ऋक्, साम और यजुः—ये तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** यह द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्य, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि, तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें विद्वान् पुरुष वस्तुतः

कोई अन्तर नहीं मानते। जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवत-शास्त्रका अर्थसहित पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंके किये हुए पापका नाश हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो नित्यप्रति श्रीमद्भागवतके आधे या चौथाई श्लोकका भी पाठ करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त होता है। नित्य श्रीमद्भागवतका पाठ करना, श्रीहरिका ध्यान करना, तुलसीके पौधेको सींचना और गौओंकी सेवा करना—ये चारों समान हैं। जो पुरुष अन्तकालमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् गोविन्द उसे अपना वैकुण्ठधामतक दे डालते हैं। जो मानव इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर श्रीविष्णु-भक्तको दान करता है, उसे निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त होता है। जिस दुष्टने अपने जन्मसे लेकर समस्त जीवनमें चित्तको एकाग्र करके कभी श्रीमद्भागवत-कथामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया। वह तो माताको प्रसवकी पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ था। यह कितने खेदकी बात है। जिसने इस शुक-शास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा जीते-जी भी मुर्देके ही समान है। वह इस पृथ्वीका भाररूप है। मनुष्य होकर भी पशुके ही तुल्य है। उसे धिक्कार है—इस प्रकार उसके विषयमें स्वर्गके प्रधान-प्रधान देवता कहा करते हैं। संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथा परम दुर्लभ है। जब करोड़ों जन्मोंके पुण्योंका उदय होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है।

इसलिये योगनिधि बुद्धिमान् नारदजी! श्रीमद्भागवतका यत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये। इसके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है। सदा ही इसका सुनना उत्तम माना गया है। सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए सदा ही इसको सुनना उत्तम है, किन्तु कलियुगमें ऐसा होना बहुत ही कठिन है, इसलिये इसके विषयमें श्रीशुकदेवजीके आदेशके अनुसार यह विशेष विधि जान लेनी चाहिये। मनके असंयम, रोगोंके आक्रमण, मनुष्योंकी आयुके ह्रास और कलियुगके अनेक दोषोंकी सम्भावनाके कारण एक सप्ताहमें ही भागवतके श्रवणका नियम किया गया है। कलियुगमें अधिक दिनोंतक मनकी वृत्तियोंपर काबू रखना, नियमोंका पालन करना और विधिपूर्वक दीक्षा ग्रहण करना बहुत कठिन है; इसलिये इस समय सप्ताह-श्रवणका विधान है। प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतको आदिसे अन्ततक सुननेका जो फल है, वही श्रीशुकदेवजीने सप्ताहश्रवणमें भी बताया है। तपस्या, योग और समाधिसे भी जिस फलकी प्राप्ति असम्भव है, वह सब श्रीमद्भागवतका सप्ताह-श्रवण करनेसे अनायास ही मिल जाता है। सप्ताहश्रवण यज्ञसे भी बढ़कर अपने महत्त्वकी घोषणा करता है, व्रतसे भी अधिक होनेका दावा करता है, तपस्यासे भी श्रेष्ठ होनेकी गर्जना करता है और तीर्थसे तो वह सदा बढ़कर है ही। इतना ही नहीं, सप्ताहश्रवण योगसे भी बढ़कर है, ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़ा-चढ़ा है। कहाँतक उसकी विशेषताका वर्णन करें। अरे! वह तो सबसे बढ़-चढ़कर है।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात बतायी। माना कि यह श्रीमद्भागवत-पुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण भगवान् श्रीपुरुषोत्तमका निरूपण करनेवाला है; परन्तु यह इस युगमें ज्ञान आदि साधनोंका तिरस्कार करके उनसे भी बढ़कर कल्याणका साधक कैसे हो गया?

सूतजीने कहा—शौनकजी! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने परम धामको पधारनेके लिये उद्यत हुए, उस समय उद्धवजीने उनके मुखसे एकादशस्कन्धमें वर्णित ज्ञानका उपदेश सुनकर भी उनसे इस प्रकार कहा।

उद्धवजी बोले—गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य सिद्ध करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किन्तु मेरे मनमें एक बहुत बड़ी चिन्ता है, उसे सुनकर आप मुझे सुखी कीजिये। देखिये, यह भयङ्कर कलिकाल आया ही चाहता है। अब फिर संसारमें दुष्टलोग उत्पन्न होंगे। उनके संसर्गसे साधु पुरुष भी उग्र स्वभाव हो

जायँगे। उस समय उनके भारसे दबी हुई यह गोरूपधारिणी भूमि किसकी शरणमें जायगी। कमल-नयन ! मुझे तो आपके सिवा दूसरा कोई इसका रक्षक नहीं दिखायी देता; इसलिये भक्तवत्सल ! आप साधु पुरुषोंपर दया करके यहाँसे मत जाइये। निराकार एवं चिन्मय होते हुए भी आपने भक्तोंके लिये ही यह सगुण रूप धारण किया है। अब वे ही भक्त आपके वियोगमें इस पृथ्वीपर कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणकी उपासनामें तो बहुत कठिनाई है, अतः वह उनसे हो नहीं सकती; इसलिये मेरे कथनपर कुछ विचार कीजिये।

सूतजी कहते हैं—प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर श्रीहरिने सोचा—'भक्तोंके अवलम्बके लिये इस समय मुझे क्या करना चाहिये ?' इस प्रकार विचार करके भगवान्‌ने अपना सम्पूर्ण तेज श्रीमद्भागवतमें स्थापित कर दिया। वे अन्तर्धान होकर श्रीमद्भागवतरूपी समुद्रमें प्रवेश कर गये; इसलिये यह श्रीमद्भागवत भगवान्‌की साक्षात् वाङ्मयी मूर्ति है। इसके सेवनसे तथा सुनने, पढ़ने और दर्शन करनेसे यह सब पापोंका नाश कर देती है। इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है। कलियुगमें अन्य सब साधनोंको छोड़कर इसीको प्रधान धर्म बताया गया है। दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंको धो डालनेके लिये तथा काम और क्रोधको काबूमें करनेके लिये कलिकालमें यही प्रधान धर्म कहा गया है; अन्यथा भगवान् विष्णुकी मायासे पिण्ड छुड़ाना देवताओंके लिये भी कठिन है, फिर मनुष्य तो उसे छोड़ ही कैसे सकते हैं। अतः इससे छुटकारा पानेके लिये भी सप्ताह-श्रवणका विधान किया गया है।

शौनकजी ! जब सनकादि ऋषि इस प्रकार सप्ताह-श्रवणकी महान् महिमाका वर्णन कर रहे थे, उस समय सभामें एक बड़े आश्चर्यकी बात हुई; उसे मैं बतलाता हूँ, सुनिये। प्रेमरूपा भक्ति तरुण अवस्थाको प्राप्त हुए अपने दोनों पुत्रोंको साथ ले सहसा वहाँ प्रकट हो गयी। उस समय उसके मुखसे *'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !'* आदि भगवन्नामोंका बारम्बार उच्चारण हो रहा था। उस समाजमें बैठे हुए श्रोताओंने जब श्रीमद्भागवतके अर्थभूत, भगवान्‌के गलेकी हार एवं मनोहर वेषवाली भक्ति-देवीको वहाँ उपस्थित देखा तो वे मन-ही-मन तर्क करने लगे—'ये मुनियोंके बीचमें कैसे आ गयीं ? इनका यहाँ किस प्रकार प्रवेश हुआ ?' तब सनकादिने कहा—'इस समय ये भक्तिदेवी यहाँ कथाके अर्थसे ही प्रकट

हुई हैं।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने पुत्रोंसहित अत्यन्त विनीत हो सनत्कुमारजीसे कहा—'महानुभाव ! मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी; किन्तु आपने भागवत-कथारूप अमृतसे सींचकर आज फिर मुझे पुष्ट कर दिया। अब आपलोग बताइये, मैं कहाँ रहूँ ?' तब ब्रह्मकुमार सनकादि ऋषियोंने कहा—'भक्ति भक्तोंके हृदयमें भगवान् गोविन्दके सुन्दर रूपकी स्थापना करनेवाली है। वह अनन्य प्रेम प्रदान करनेवाली तथा संसार-रोगको हर लेनेवाली है। तुम वही भक्ति हो, अतः धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर भक्तोंके हृदय-मन्दिरमें निवास करो। वहाँ ये कलियुगके दोष सारे संसारपर प्रभाव डालनेमें समर्थ होकर भी तुम्हारी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्तिदेवी भगवद्भक्तोंके हृदय-मन्दिरमें विराजमान हो गयीं। शौनकजी ! जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्तिका ही निवास है, वे मनुष्य सारे संसारमें

निर्धन होनेपर भी धन्य हैं; क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर साक्षात् भगवान् भी अपने धामको छोड़कर सर्वथा उनके हृदयमें बस जाते हैं। भूलोकमें यह श्रीमद्भागवत साक्षात् परब्रह्मका स्वरूप है। हम इसकी महिमाका आज तुमसे कहाँतक बखान करें। इसका आश्रय लेकर पाठ करनेपर इसके वक्ता और श्रोता दोनों ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त कर लेते हैं; अतः इसको छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ?

★

कथामें भगवान्‌का प्रादुर्भाव, आत्मदेव ब्राह्मणकी कथा—धुन्धुकारी और गोकर्णकी उत्पत्ति तथा आत्मदेवका वनगमन

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! तदनन्तर अपने भक्तोंके हृदयमें अलौकिक भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे। उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी। श्रीविग्रह नूतन मेघके समान श्यामवर्ण था। उसपर पीताम्बर सुशोभित हो रहा था। भगवान्‌की वह झाँकी चित्तको चुराये लेती थी। उनका कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे अलङ्कृत था। मस्तकपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे थे। बाँकी अदासे खड़े होनेके कारण वे बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। वक्षःस्थलपर सुन्दर कौस्तुभमणि दमक रही थी। सारा श्रीअङ्ग हरिचन्दनसे चर्चित था। करोड़ों कामदेवोंकी रूप-माधुरी उनपर निछावर हो रही थी। इस प्रकार वे परमानन्द-चिन्मूर्ति परम मधुर मुरलीधर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंके निर्मल हृदयमें प्रकट हुए। वैकुण्ठ (गोलोक) में निवास करनेवाले जो उद्धव आदि वैष्णव हैं, वे भी वह कथा सुननेके लिये गुप्तरूपसे वहाँ उपस्थित थे। भगवान्‌के पधारते ही वहाँ चारों ओरसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अलौकिक प्रवाह बह चला। अबीर और गुलालके साथ ही फूलोंकी वर्षा होने लगी। बारम्बार शंखध्वनि होती रहती थी। उस सभामें जितने लोग विराजमान थे, उन्हें अपने देह-गेह और आत्मातककी सुध-बुध भूल गयी थी। उनकी यह तन्मयताकी अवस्था देख देवर्षि नारदजी इस प्रकार कहने लगे—

नारदजी बोले—मुनीश्वरो ! आज मैंने सप्ताह-श्रवणकी यह बड़ी अलौकिक महिमा देखी है। यहाँ जो मूढ़, शठ और पशु-पक्षी आदि हैं, वे भी इसके प्रभावसे पापशून्य प्रतीत होते हैं। अतः इस मर्त्यलोकमें चित्त-शुद्धिके लिये इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। कलिकालमें यह श्रीमद्भागवतकी कथा ही पाप-राशिका विनाश करनेवाली है। इस कथाके समान पृथ्वीपर दूसरा कोई साधन नहीं है। अच्छा, अब मुझे यह बताइये कि इस कथामय सप्ताहयज्ञसे संसारमें कौन-कौन लोग शुद्ध होते हैं। मुनिवर ! आपलोग बड़े दयालु हैं। आप-लोगोंने लोकहितका विचार करके यह बिलकुल निराला मार्ग निकाला है।

सनकादिने कहा—देवर्षे ! जो लोग सदा ही भाँति-भाँतिके पाप करते हैं, दुराचारमें प्रवृत्त रहते हैं और शास्त्र-विरुद्ध मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलनेवाले, कुटिल और कामी हैं, वे सभी कलिकालमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो सत्यसे हीन, पिता-माताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णासे व्याकुल, आश्रम-धर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंसे डाह रखनेवाले और प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो मदिरा-पान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुपत्नी-गमन और विश्वासघात—ये पाँच भयंकर पाप करनेवाले, छल-छद्ममें प्रवृत्त रहनेवाले, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो शठ हठपूर्वक मन, वाणी और शरीरके द्वारा सदा पाप करते रहते हैं, दूसरोंके धनसे पुष्ट होते हैं, मलिन शरीर तथा खोटे हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं।

नारदजी ! इस विषयमें अब हम तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, जिसके श्रवणमात्रसे पापोंका नाश हो जाता है। पूर्वकालकी बात है—तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक उत्तम नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका पालन करते और सत्य एवं सत्कर्ममें लगे रहते थे। उस नगरमें आत्मदेव नामक एक ब्राह्मण रहता था, जो समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निष्णात था। वह ब्राह्मण द्वितीय सूर्यकी भाँति तेजस्वी जान पड़ता था। यद्यपि वह भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करता था, तो भी लोकमें धनवान् समझा जाता था। उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली था। वह सुन्दरी तो थी ही, अच्छे कुलमें भी उत्पन्न हुई थी। फिर भी स्वभावकी बड़ी हठीली थी। सदा अपनी ही टेक रखती थी। हमेशा दूसरे लोगोंकी चर्चा किया करती थी। उसमें क्रूरता भी थी तथा वह प्रायः बहुत बकवाद किया करती थी। परन्तु घरका काम-काज करनेमें बड़ी बहादुर थी। कंजूस भी कम नहीं थी। कलहका तो उसे व्यसन-सा हो गया था। वे दोनों पति-पत्नी बड़े प्रेमसे रहते थे। फिर भी उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। इस कारण धन, भोग-सामग्री तथा घर आदि कोई भी वस्तु उन्हें सुखद नहीं जान पड़ती थी। कुछ कालके पश्चात् उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिये धर्मका अनुष्ठान आरम्भ किया। वे दीनोंको सदा गौ, भूमि, सुवर्ण और वस्त्र आदि दान करने लगे। उन्होंने अपने धनका आधा भाग धर्मके मार्गपर खर्च कर दिया; तो भी उनके न कोई पुत्र हुआ, न पुत्री। इससे ब्राह्मणको बड़ी चिन्ता हुई। वह आकुल हो उठा और एक दिन अत्यन्त दुःखके कारण घर छोड़कर वनमें चला गया। वहाँ दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक पोखरेके किनारे गया और वहाँ जल पीकर बैठ रहा। सन्तानहीनताके दुःखसे उसका सारा शरीर सूख गया था। उसके बैठनेके दो ही घड़ी बाद एक संन्यासी वहाँ आये। उन्होंने भी पोखरेमें जल पीया। ब्राह्मणने देखा, वे जल पी चुके हैं, तो वह उनके पास गया और चरणोंमें मस्तक झुकाकर जोर-जोरसे साँस लेता हुआ सामने खड़ा हो गया।

संन्यासीने पूछा—ब्राह्मण ! तुम रोते कैसे हो ? तुम्हें क्या भारी चिन्ता सता रही है ? तुम शीघ्र ही मुझसे अपने दुःखका कारण बताओ।

ब्राह्मणने कहा—मुने ! मैं अपना दुःख क्या कहूँ, यह सब मेरे पूर्वपापोंका सञ्चित फल है। [मेरे कोई सन्तान नहीं है, इससे मेरे पितर भी दुःखी हैं; वे] मेरे पूर्वज मेरी दी हुई जलाञ्जलिको जब पीने लगते हैं, उस समय वह उनकी चिन्ताजनित साँसोंसे कुछ गर्म हो जाती है। देवता और ब्राह्मण भी मेरी दी हुई वस्तुको प्रसन्नतापूर्वक नहीं लेते। सन्तानके दुःखसे मेरा संसार सूना हो गया है, अतः अब मैं यहाँ प्राण त्यागनेके लिये आया हूँ। सन्तानहीन पुरुषका जीवन धिक्कारके योग्य है। जिस घरमें कोई सन्तान—कोई बाल-बच्चे न हों, वह घर भी धिक्कार देनेयोग्य है। निस्सन्तान पुरुषके धनको भी धिक्कार है ! तथा सन्तानहीन कुल भी धिक्कारके ही योग्य है। [मैं अपने दुर्भाग्यको कहाँतक बताऊँ ?] जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा वन्ध्या हो जाती है। मैं जिसको रोपता हूँ, उस वृक्षमें भी फल नहीं लगते। इतना ही नहीं, मेरे घरमें बाहरसे जो फल आता है, वह भी शीघ्र ही सूख जाता है। जब मैं ऐसा अभागा और सन्तानहीन हूँ, तो इस जीवनको रखनेसे क्या लाभ है।

यों कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्यथित हो उठा और उन संन्यासी बाबाके पास फूट-फूटकर रोने लगा। संन्यासीके हृदयमें बड़ी करुणा भर आयी। वे योगी भी थे, उन्होंने ब्राह्मणके ललाटमें लिखे हुए विधाताके अक्षरोंको पढ़ा और सब कुछ जानकर विस्तारपूर्वक कहना आरम्भ किया।

संन्यासीने कहा—ब्राह्मण ! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखा है। उससे जान पड़ता है कि सात जन्मोंतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती; अतः सन्तानका मोह छोड़ो, क्योंकि यह महान् अज्ञान है। देखो, कर्मकी गति बड़ी प्रबल है; अतः विवेकका आश्रय लेकर संसारकी वासना त्याग दो। अजी ! पूर्वकालमें सन्तानके ही कारण राजा सगर और

अङ्गको दुःख भोगना पड़ा था; इसलिये अब तुम कुटुम्बकी आशा छोड़ दो। त्यागमें ही सब प्रकारका सुख है।

ब्राह्मण बोले—बाबा! विवेकसे क्या होगा? मुझे तो जैसे बने वैसे पुत्र ही दीजिये; नहीं तो मैं शोकसे मूर्च्छित होकर आपके आगे ही प्राण त्याग दूँगा। पुत्र आदिके सुखसे हीन यह संन्यास तो सर्वथा नीरस ही है। संसारमें पुत्र-पौत्रोंसे भरा हुआ गृहस्थाश्रम ही सरस है।

ब्राह्मणका यह आग्रह देख उन तपोधनने कहा—'देखो, विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको कष्ट भोगना पड़ा; अतः दैवने जिसके पुरुषार्थको कुचल दिया हो, ऐसे पुरुषके समान तुम्हें पुत्रसे सुख नहीं मिलेगा; फिर भी तुम हठ करते जा रहे हो। तुम्हें केवल अपना स्वार्थ ही सूझ रहा है; अतः मैं तुमसे क्या कहूँ।'

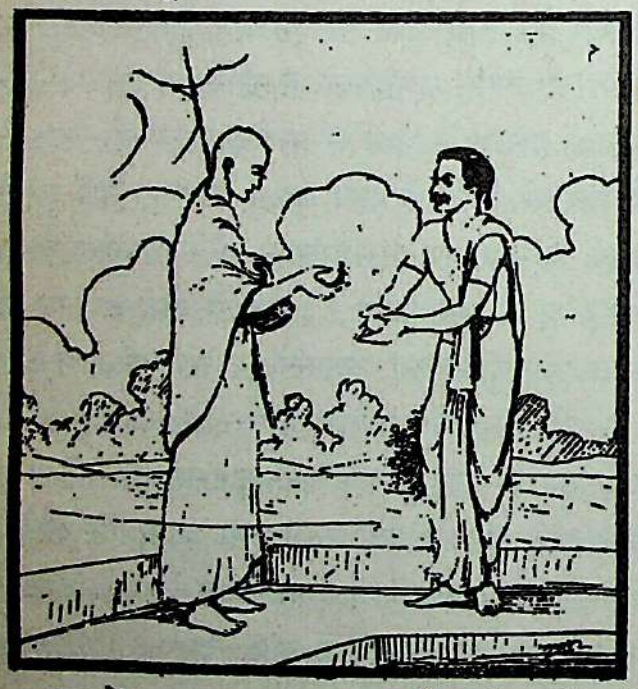

अन्तमें ब्राह्मणका बहुत आग्रह देख संन्यासीने उसे एक फल दिया और कहा—'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना। इससे उसके एक पुत्र होगा। तुम्हारी स्त्रीको चाहिये कि वह एक वर्षतक सत्य, शौच, दया और दानका नियम पालती हुई प्रतिदिन एक समय भोजन करे। इससे उसका बालक अत्यन्त शुद्ध स्वभाववाला होगा।' ऐसा कहकर वे योगी महात्मा चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया। यहाँ उसने अपनी पत्नीके हाथमें वह फल दे दिया और स्वयं कहीं चला गया। उसकी पत्नी तो कुटिल स्वभावकी थी ही। अपनी सखीके आगे रो-रोकर इस प्रकार कहने लगी—'अहो! मुझे तो बड़ी भारी चिन्ता हो गयी। मैं तो इस फलको नहीं खाऊँगी। सखी! इस फलको खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा। फिर तो खाना-पीना कम होगा और इससे मेरी शक्ति घट जायगी। ऐसी दशामें तुम्हीं बताओ, घरका काम-धंधा कैसे होगा? यदि दैववश गाँवमें लूट पड़ जाय तो गर्भिणी स्त्री भाग कैसे सकेगी? यदि कहीं शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी [बारह वर्षोंतक] पेटमें ही रह गया, तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा? यदि कहीं प्रसवकालमें बच्चा टेढ़ा हो गया, तब तो मेरी मौत ही हो जायगी। बच्चा पैदा होते समय बड़ी असह्य पीड़ा होती है। मैं सुकुमारी स्त्री, भला उसे कैसे सह सकूँगी? गर्भवती अवस्थामें जब मेरा शरीर भारी हो जायगा और चलने-फिरनेमें आलस्य लगेगा, उस समय मेरी ननद-रानी आकर घरका सारा माल-मता उड़ा ले जायँगी। और तो और, यह सत्य-शौचादिका नियम पालना तो मेरे लिये बहुत ही कठिन दिखायी देता है। जिस स्त्रीके सन्तान होती है, उसे बच्चोंके लालन-पालनमें भी कष्ट भोगना पड़ता है। मैं तो समझती हूँ, बाँझ अथवा विधवा स्त्रियाँ ही अधिक सुखी होती हैं।'

नारदजी! इस प्रकार कुतर्क करके उस ब्राह्मणीने फल नहीं खाया। जब पतिने पूछा—'तुमने फल खाया?' तो उसने कह दिया—'हाँ, खा लिया।' एक दिन उसकी बहिन अपने-आप ही उसके घर आयी। धुन्धुलीने उसके आगे अपना सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा—'बहिन! मुझे इस बातकी बड़ी चिन्ता है कि सन्तान न होनेपर मैं पतिको क्या उत्तर दूँगी। इस दुःखके कारण मैं दिनोंदिन दुबली हुई जा रही हूँ। बताओ, मैं क्या करूँ? तब उसने कहा— 'दीदी! मेरे पेटमें बच्चा है। प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुमको दे दूँगी। तबतक तुम गर्भवती स्त्रीकी भाँति घरमें छिपकर मौजसे रहो। तुम मेरे पतिको धन दे देना। इससे वे अपना बालक

तुम्हें दे देंगे तथा लोगोंमें इस बातका प्रचार कर देंगे कि मेरा बच्चा छः महीनेका होकर मर गया। मैं प्रतिदिन तुम्हारे घरमें आकर बच्चेका पालन-पोषण करती रहूँगी। तुम इस समय परीक्षा लेनेके लिये यह फल गौको खिला दो।' तब उस ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभावके कारण वह सब कुछ वैसे ही किया। तदनन्तर समय आनेपर उसकी बहिनको बच्चा पैदा हुआ। बच्चेके पिताने बालकको लाकर एकान्तमें धुन्धुलीको दे दिया। उसने अपने स्वामीको सूचना दे दी कि मेरे बच्चा पैदा हो गया और कोई कष्ट नहीं हुआ। आत्मदेवके पुत्र होनेसे लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। ब्राह्मणने बालकका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया। उसके दरवाजेपर गाना, बजाना आदि नाना प्रकारका माङ्गलिक उत्सव होने लगा। धुन्धुलीने स्वामीसे कहा—'मेरे स्तनोंमें दूध नहीं है, फिर गाय-भैंस आदि अन्य जीवोंके दूधसे मैं बालकका पोषण कैसे करूँगी ? मेरी बहिनको भी बच्चा हुआ था, किन्तु वह मर गया है; अतः अब उसीको बुलाकर घरमें रखिये, वही आपके बालकका पालन-पोषण करेगी।' उसके पतिने पुत्रकी जीवन-रक्षाके लिये सब कुछ किया। माताने उसका नाम 'धुन्धुकारी' रखा।

तदनन्तर तीन महीने बीतनेके बाद ब्राह्मणकी गौने भी एक बालकको जन्म दिया, जो सर्वाङ्गसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था। उसे

देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने स्वयं ही बालकके सब संस्कार किये। यह आश्चर्यजनक समाचार सुनकर सब लोग उसे देखनेके लिये आये और आपसमें कहने लगे—'देखो, इस समय आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है। कितने आश्चर्यकी बात है कि गायके पेटसे भी देवताके समान रूपवाला बालक उत्पन्न हुआ।' किन्तु दैवयोगसे किसीको भी इस गुप्त रहस्यका पता न लगा। उस बालकके कान गौके समान थे, यह देखकर आत्मदेवने उसका नाम गोकर्ण रख दिया। कुछ काल व्यतीत होनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये। उनमें गोकर्ण तो पण्डित और ज्ञानी हुआ; किन्तु धुन्धुकारी महादुष्ट निकला। स्नान और शौचाचारका तो उसमें नाम भी नहीं था। वह अभक्ष्य भक्षण करता, क्रोधमें भरा रहता और बुरी-बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। भोजन तो वह सबके हाथका कर लेता था। चोरी करता, सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाता, दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता और खेलानेके बहाने छोटे बच्चोंको पकड़कर कुएँमें डाल देता था। जीवोंकी हिंसा करनेका उसका स्वभाव हो गया था। वह हमेशा हथियार लिये रहता और दीन, दुःखियों तथा अंधोंको कष्ट पहुँचाया करता था। चाण्डालोंके साथ उसने खूब हेल-मेल बढ़ा लिया था। वह प्रतिदिन हाथमें फंदा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता था। उसने वेश्याके कुसङ्गमें पड़कर पिताका सारा धन बरबाद कर दिया। एक दिन तो माता-पिताको खूब पीटकर वह घरके सारे बर्तन-भाँड़े उठा ले गया। इस प्रकार धनहीन हो जानेके कारण बेचारा बाप फूट-फूटकर रोने लगा। वह बोला—'इस प्रकार पुत्रवान् बननेसे तो अपुत्र रहना ही अच्छा है। कुपुत्र बड़ा ही दुःखदायी होता है। अब मैं कहाँ रहूँ ? कहाँ जाऊँ ? कौन मेरा दुःख दूर करेगा ? हाय ! मुझपर बड़ा भारी कष्ट आ पहुँचा। अब तो मैं इस दुःखसे अपना प्राण त्याग दूँगा।'

इसी समय ज्ञानवान् गोकर्णजी वहाँ आये और वैराग्यका महत्त्व दिखलाते हुए अपने पिताको समझाने लगे—'पिताजी ! इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है।

दुःख ही इसका स्वरूप है। यह जीवोंको मोहमें डालनेवाला है। भला, यहाँ कौन किसका पुत्र है और

कौन किसका धन। जो इनमें आसक्त होता है, उसे ही रात-दिन जलना पड़ता है। इन्द्र अथवा चक्रवर्ती राजाओंको भी कोई सुख नहीं है। सुख तो बस, एकान्तवासी वैराग्यवान् मुनिको ही है। सन्तानके प्रति जो आपकी ममता है, यह महान् अज्ञान है; इसे छोड़िये। मोहमें फँसनेसे मनुष्यको नरकमें ही जाना पड़ता है। औरोंकी तो बात ही क्या है, आपका यह प्रिय शरीर भी एक-न-एक दिन नष्ट हो जायगा—आपको छोड़कर चल देगा; इसलिये आप अभीसे सब कुछ छोड़कर वनमें चले जाइये।'

गोकर्णकी बात सुनकर उनके पिता आत्मदेव वनमें जानेके लिये उद्यत होकर बोले—'तात! मुझे वनमें रहकर क्या करना चाहिये? यह विस्तारपूर्वक बताओ! मैं बड़ा शठ हूँ। अबतक कर्मवश स्नेहके बन्धनमें बँधकर मैं अपङ्गकी भाँति इस गृहरूपी अँधेरे कुएँमें ही पड़ा हुआ हूँ। दयानिधे! तुम निश्चय ही मेरा उद्धार करो!'

गोकर्णने कहा—पिताजी! हड्डी, मांस और रक्तके पिण्डरूप इस शरीरमें आप 'मैं' पनका अभिमान छोड़ दीजिये और स्त्री-पुत्र आदिमें भी 'ये मेरे हैं' इस भावको सदाके लिये त्याग दीजिये। इस संसारको निरन्तर क्षणभङ्गुर देखिये और एकमात्र वैराग्य-रसके रसिक होकर भगवान्‌के भजनमें लग जाइये। सदा भगवद्भजनरूप दिव्य धर्मका ही आश्रय लीजिये। सकाम भावसे किये जानेवाले लौकिक धर्मोंको छोड़िये। साधु पुरुषोंकी सेवा कीजिये, भोगोंकी तृष्णाको त्याग दीजिये तथा दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना शीघ्र छोड़कर निरन्तर भगवत्सेवा एवं भगवत्कथाके रसका पान कीजिये।*

इस प्रकार पुत्रके कहनेसे आत्मदेव साठ वर्षकी अवस्था बीत जानेपर घर छोड़कर स्थिरचित्तसे वनको चले गये और वहाँ प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिकी परिचर्या करते हुए नियमपूर्वक दशम स्कन्धका पाठ करनेसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया।

★

---

* देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥
धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान् सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम्।
अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्॥ (१९२। ७८-७९)

गोकर्णजीकी भागवत-कथासे धुन्धुकारीका प्रेतयोनिसे उद्धार तथा समस्त श्रोताओंको परमधामकी प्राप्ति

सूतजी कहते हैं—पिताके विरक्त होकर वनमें चले जानेके बाद एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको खूब पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रखा है ? नहीं तो लातोंसे तेरी खबर लूँगा।' उसकी इस बातसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दुःखी होकर उनकी माँ रातको कुएँमें कूद पड़ी; इससे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार माता-पिताके न रहनेपर गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये चल दिये। वे योगनिष्ठ थे। उनके मनमें इस घटनाके कारण न कोई दुःख था, न कोई सुख; क्योंकि उनका न कोई शत्रु था न मित्र। अब धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा। उनके पालन-पोषणके लिये बहुत सामग्री जुटानेकी चिन्तासे उसकी बुद्धि मोहित हो गयी थी; अतः वह अत्यन्त क्रूरतापूर्ण कर्म करने लगा। एक दिन उन कुलटाओंने उससे गहनोंके लिये इच्छा प्रकट की। धुन्धुकारी तो कामसे अंधा हो रहा था। उसे अपनी मृत्युकी भी याद नहीं रहती थी। वह गहने जुटानेके लिये घरसे निकल पड़ा और जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर पुनः अपने घर लौट आया। वहाँ आकर उसने उन वेश्याओंको बहुत-से सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और कितने ही आभूषण दिये। अधिक धनका संग्रह देखकर रातमें उन स्त्रियोंने विचार किया—'यह प्रतिदिन चोरी करने जाता है, अतः राजा इसे अवश्य पकड़ेंगे; फिर सारा धन छीनकर निश्चय ही इसे प्राणदण्ड भी देंगे। ऐसी दशामें इस धनकी रक्षाके लिये हमींलोग क्यों न इसे गुप्तरूपसे मार डालें। इसे मार, यह सारा धन लेकर हम कहीं और जगह चल दें।'

ऐसा निश्चय करके उन स्त्रियोंने धुन्धुकारीके सो जानेपर उसे रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया और गलेमें फाँसी डालकर उसके प्राण लेनेकी चेष्टा करने लगीं; किन्तु वह तुरंत न मरा। इससे उनको बड़ी चिन्ता हुई। तब उन्होंने जलते हुए अँगारे लाकर उसके मुँहपर डाल दिये। इससे वह आगकी लपटोंसे पीड़ित होकर छटपटाता हुआ मर गया। फिर उन्होंने उसकी लाशको गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया। प्रायः ऐसी स्त्रियाँ बड़ी दुःसाहसवाली होती हैं। इस रहस्यका किसीको भी पता नहीं चला। लोगोंके पूछनेपर उन स्त्रियोंने कह दिया कि हमारे प्रियतम धनके लोभसे कहीं दूर चले गये हैं, इस वर्षके भीतर ही लौट आयेंगे। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह असन्मार्गपर चलनेवाली दुष्टा स्त्रियोंका विश्वास न करे। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे अवश्य ही संकटोंका सामना करना पड़ता है। इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका सञ्चार करती है, किन्तु हृदय छुरेकी धारके समान तीखा होता है; भला, इन स्त्रियोंका कौन प्रिय है ? अनेक पतियोंसे सहवास करनेवाली वे कुलटाएँ धुन्धुकारीका सारा धन लेकर चम्पत हो गयीं और धुन्धुकारी अपने कुकर्मके कारण बहुत बड़ा प्रेत हुआ। वह बवंडरका रूप धारण करके सदा दसों दिशाओंमें दौड़ता फिरता था और शीत-घामका क्लेश सहता तथा भूख-प्याससे पीड़ित होता हुआ 'हा ! दैव' 'हा ! दैव'की बारंबार पुकार लगाता रहता था; किन्तु कहीं भी उसे शरण नहीं मिलती थी। कुछ कालके पश्चात् गोकर्णको भी लोगोंके मुँहसे धुन्धुकारीके मरनेका हाल मालूम हुआ। तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसके लिये गयाजीमें श्राद्ध किया और तबसे जिस तीर्थमें भी वे चले जाते, वहाँ उसका श्राद्ध अवश्य करते थे।

इस प्रकार तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए गोकर्णजी एक दिन अपने गाँवमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर वे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये गये। अपने भाई गोकर्णको वहाँ सोया देख धुन्धुकारीने आधी रातके समय उन्हें अपना महाभयङ्कर रूप दिखाया। वह कभी भेड़ा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता था। अन्तमें पुनः मनुष्यके रूपमें प्रकट हुआ। गोकर्णजी बड़े

धैर्यवान् महात्मा थे। उन्होंने उसकी विपरीत अवस्थाएँ देखकर जान लिया कि यह कोई दुर्गतिमें पड़ा हुआ जीव है। तब उन्होंने पूछा—'अरे भाई ! तू कौन है ? रात्रिके समय अत्यन्त भयानक रूपमें क्यों प्रकट हुआ है ? तेरी ऐसी दशा क्यों हुई है ? हमें बता तो सही, तू प्रेत है या पिशाच है अथवा कोई राक्षस है ?'

उनके ऐसा पूछनेपर वह बारम्बार उच्चस्वरसे रोदन करने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी; इसलिये केवल सङ्केत मात्र किया। तब गोकर्णजीने अञ्जलिमें जल ले उसे अभिमन्त्रित करके धुन्धुकारीके ऊपर छिड़क दिया। उस जलसे सींचनेपर उसका पाप-ताप कुछ कम हुआ। तब वह इस प्रकार कहने लगा—'भैया ! मैं तुम्हारा भाई धुन्धुकारी हूँ। मैंने अपने ही दोषसे अपने ब्राह्मणत्वका नाश किया है। मैं महान् अज्ञानमें चक्कर लगा रहा था; अतः मेरे पापकर्मोंकी कोई गिनती नहीं है। मैंने बहुत लोगोंकी हिंसा की थी। अतः मैं भी स्त्रियोंद्वारा तड़पा-तड़पाकर मारा गया। इसीसे मैं प्रेत-योनिमें पड़कर दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैवाधीन कर्मफलका उदय हुआ है, इसलिये मैं वायु पीकर जीवन धारण करता हूँ। मेरे भाई ! तुम दयाके समुद्र हो। अब किसी प्रकार जल्दी ही मेरा उद्धार करो।'

धुन्धुकारीकी बात सुनकर गोकर्ण बोले— भाई ! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। मैंने तो तुम्हारे लिये गयाजीमें विधिपूर्वक पिण्डदान किया है, फिर तुम्हारी मुक्ति कैसे नहीं हुई ? यदि गया-श्राद्धसे भी मुक्ति न हो, तो यहाँ दूसरा तो कोई उपाय ही नहीं है। प्रेत ! इस समय मुझे क्या करना चाहिये ? यह तुम्हीं विस्तार-पूर्वक बताओ।

प्रेतने कहा—भाई ! सैकड़ों गया-श्राद्ध करनेसे भी मेरी मुक्ति नहीं होगी। इसके लिये अब तुम और ही कोई उपाय सोचो।

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा विस्मय हुआ। वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया-श्राद्धसे तुम्हारी मुक्ति नहीं होगी, तब तो तुम्हें इस प्रेत-योनिसे छुड़ाना असम्भव ही है। अच्छा, इस समय तो तुम अपने स्थानपर ही निर्भय होकर रहो। तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय सोचकर उसीको काममें लाऊँगा।'

गोकर्णजीकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी अपने स्थानपर चला गया। इधर गोकर्णजी रातभर सोचते-विचारते रहे। किन्तु उसके उद्धारका कोई भी उपाय उन्हें नहीं सूझा। सबेरा होनेपर उन्हें आया देख गाँवके लोग बड़े प्रेमके साथ उनसे मिलनेके लिये आये। तब गोकर्णने रातमें जो घटना घटित हुई थी, वह सब उन्हें कह सुनायी। उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और ब्रह्मवादी थे, उन्होंने शास्त्र-ग्रन्थोंको उलट-पलटकर देखा; किन्तु उन्हें धुन्धुकारीके उद्धारका कोई उपाय नहीं दिखायी दिया। तब सब लोगोंने मिलकर यही निश्चय किया कि भगवान् सूर्यनारायण उसकी मुक्तिके लिये जो उपाय बतावें, वही करना चाहिये। यह सुनकर गोकर्णने भगवान् सूर्यकी ओर देखकर कहा—'भगवन् ! आप सारे जगत्के साक्षी हैं। आपको नमस्कार है। आप मुझे धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये।' यह सुनकर सूर्यदेवने दूरसे ही स्पष्ट वाणीमें कहा— 'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है। तुम उसका सप्ताह-पारायण करो।' भगवान् सूर्यका यह ध्वनिरूप वचन वहाँ सब लोगोंने सुना और सबने यही कहा—'यह तो बहुत सरल साधन है। इसको यत्नपूर्वक करना चाहिये।' गोकर्णजी भी ऐसा ही निश्चय करके कथा बाँचनेको तैयार हो गये। उस समय वहाँ कथा सुननेके लिये आस-पासके स्थानों और गाँवोंसे लोग एकत्रित होने लगे। अपङ्ग, अंधे, बूढ़े और मन्दभाग्य पुरुष भी अपने पापोंका नाश करनेके लिये वहाँ आ पहुँचे। इस प्रकार वहाँ बहुत बड़ा समाज जुट गया, जो देवताओंको भी आश्चर्यमें डालनेवाला था। जिस समय गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा बाँचने लगे, उस समय वह प्रेत भी वहाँ आया और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेमें ही उसकी दृष्टि एक सात गाँठवाले ऊँचे बाँसपर पड़ी। उसीके नीचेवाले छेदमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठा। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था। इसलिये बाँसमें ही घुस गया था।

गोकर्णजीने एक वैष्णव ब्राह्मणको प्रधान श्रोता बनाकर पहले स्कन्धसे ही स्पष्ट वाणीमें कथा सुनानी आरम्भ की। सायङ्कालमें जब कथा बंद होने लगी, तब एक विचित्र घटना घटित हुई। सब श्रोताओंके देखते-देखते तड़-तड़ शब्द करती हुई बाँसकी एक गाँठ फट गयी। दूसरे दिन शामको दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन भी उसी समय तीसरी गाँठ फट गयी। इस प्रकार सात दिनोंमें उस बाँसकी सातों गाठोंको फोड़कर धुन्धुकारीने बारहों स्कन्धोंके श्रवणसे निष्पाप हो प्रेत-योनिका त्याग कर दिया और दिव्य रूप धारण करके वह सबके सामने प्रकट हो गया। उसका मेघके समान श्यामवर्ण था। शरीरपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। गलेमें तुलसीकी माला उसकी शोभा बढ़ा रही थी। मस्तकपर मुकुट और कानोंमें दिव्य कुण्डल झलमला रहे थे। उसने तुरंत अपने भाई गोकर्णको प्रणाम किया और कहा—"भाई! तुमने कृपा करके मुझे प्रेत-योनिके क्लेशोंसे मुक्त कर दिया। प्रेत-योनिकी पीड़ा नष्ट करनेवाली यह श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है तथा भगवान् श्रीकृष्णके परमधामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताहपारायण भी धन्य है। सप्ताह-कथा सुननेके लिये बैठ जानेपर सारे पाप काँपने लगते हैं। उन्हें इस बातकी चिन्ता होती है कि अब यह कथा शीघ्र ही हमलोगोंका अन्त कर देगी। जैसे आग गीली-सूखी, छोटी और बड़ी—सभी तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताह-श्रवण मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए, इच्छा या अनिच्छासे होनेवाले छोटे-बड़े सभी तरहके पापोंको भस्म कर देता है। विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि 'इस भारतवर्षमें जो पुरुष श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म व्यर्थ ही है।' यदि भागवत-शास्त्रकी कथा सुननेको न मिली तो मोहपूर्वक पालन करके हृष्ट-पुष्ट और बलवान् बनाये हुए इस अनित्य शरीरसे क्या लाभ हुआ। जिसमें हड्डियाँ ही खम्भे हैं, जो नस-नाड़ीरूप रस्सियोंसे बँधा है, जिसके ऊपर मांस और रक्तका लेप करके उसे चमड़ेसे मढ़ दिया गया है, जिसके भीतरसे दुर्गन्ध आती रहती है, जो मल-मूत्रका पात्र ही है, वृद्धावस्था और शोकके कारण जो परिणाममें दुःखमय जान पड़ता है, जिसमें रोगोंका निवास है, जो सदा किसी कामनासे आतुर रहता है, जिसका पेट कभी नहीं भरता, जिसको सदा धारण किये रहना कठिन है तथा जो अनेक दोषोंसे भरा हुआ और क्षणभङ्गुर है, वही यह शरीर कहलाता है। अन्तमें इसकी तीन ही गतियाँ होती हैं—यदि मृत्युके पश्चात् इसे गाड़ दिया जाय तो इसमें कीड़े पड़ जाते हैं, कोई पशु खा जाय तो यह विष्ठा बन जाता है और यदि अग्निमें जला दिया जाय तो यह राखका ढेर हो जाता है। ऐसी दशामें भी मनुष्य इस अस्थिर शरीरसे स्थायी फल देनेवाला कर्म क्यों नहीं कर लेता? प्रातःकाल जो अन्न पकाया जाता है, वह शाम होनेतक बिगड़ जाता है। फिर उसीके रससे पुष्ट हुए इस शरीरमें नित्यता क्या है?"

"इस लोकमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुननेसे अपने निकट ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है। जहाँ कथा-श्रवण करनेसे जड़ एवं सूखे बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, वहीं यदि हृदयकी गाँठें खुल जायँ तो क्या आश्चर्य है? जो भागवतकी कथा सुननेसे वञ्चित हैं, वे लोग जलमें बुद्बुदों और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये पैदा हुए हैं। सप्ताह श्रवण करनेपर हृदयकी अज्ञानमयी गाँठ खुल जाती है, सारे सन्देह नष्ट हो जाते हैं और बन्धनके हेतुभूत समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं। यह भागवत-कथा एक महान् पुण्यतीर्थ है। यह संसाररूपी कीचड़के लेपको धो डालनेमें अत्यन्त पटु है। विद्वान् पुरुषोंका मत है कि जब यह कथा-तीर्थ चित्तमें स्थिर हो जाय तो मनुष्यकी मुक्ति निश्चत ही है।"

धुन्धुकारी इस प्रकारकी बातें कह ही रहा था कि उसे लेनेके लिये आकाशसे एक विमान उतरा। उससे चारों ओर मण्डलाकार प्रकाश-पुञ्ज फैल रहा था। उसमें भगवान्‌के वैकुण्ठवासी पार्षद विराजमान थे। धुन्धुकारी सब लोगोंके देखते-देखते उस विमानपर जा बैठा। उसमें आये हुए श्रीविष्णु-पार्षदोंको देखकर गोकर्णने

उनसे इस प्रकार पूछा—'भगवान्‌के परिकरो ! यहाँ तो बहुत-से शुद्ध अन्तःकरणवाले मेरी कथाके श्रोता बैठे

हुए हैं। आपलोग एक ही साथ इनके लिये भी विमान क्यों नहीं लाये ? देखनेमें आता है—सबने समानरूपसे यहाँ कथा-श्रवण किया है; फिर फलमें क्यों इस प्रकार भेद हुआ ? यह बतानेकी कृपा कीजिये।'

भगवान्‌के पार्षद बोले—गोकर्णजी ! इनके कथा-श्रवणमें भेद होनेसे ही फलमें भी भेद हुआ है। यद्यपि श्रवण सब लोगोंने ही किया है; किन्तु इसके-जैसा मनन किसीने नहीं किया है, इसीलिये फलमें भेद हुआ है। पुनः कथा-श्रवण करनेपर यह फल-भेद भी दूर हो जायगा। प्रेतने सात रात उपवास करके कथा-श्रवण किया है। अतः उसने स्थिरचित्तसे भलीभाँति मनन आदि किया है। जो ज्ञान दृढ़ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवण, सन्देहसे मन्त्र और चञ्चलचित्त होनेसे जप निष्फल हो जाता है। वैष्णव-पुरुषोंसे रहित देश, कुपात्र ब्राह्मणसे कराया हुआ श्राद्ध, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान और सदाचारहीन कुल भी नष्ट ही समझना चाहिये। गुरुके वचनोंमें विश्वास हो, अपनेमें दीनताकी भावना बनी रहे, मनके दोषोंको काबूमें रखा जाय और कथामें दृढ़ निष्ठा बनी रहे—इन सब बातोंका यदि पालन किया जाय तो अवश्य ही कथा-श्रवणका पूरा-पूरा फल मिलता है। पुनः कथा-श्रवण करनेके पश्चात् इन सब लोगोंका वैकुण्ठमें निवास निश्चित है। गोकर्णजी ! तुम्हें तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही गोलोक प्रदान करेंगे।

ऐसा कहकर वे सब पार्षद भगवान्‌के नामोंका कीर्तन करते हुए वैकुण्ठधाममें चले गये। उसके बाद गोकर्णने पुनः श्रावण मासमें कथा बाँची। उस समय सब लोगोंने सात दिनोंतक उपवास करके कथा-श्रवण किया। नारदजी ! कथाकी समाप्ति होनेपर वहाँ जो कुछ हुआ, उसे सुनिये। उस समय बहुत-से विमानोंको साथ लिये भक्तोंसहित साक्षात् भगवान् उस स्थानपर प्रकट हो गये। चारों ओरसे जय-जयकार और नमस्कारके शब्द बारम्बार सुनायी देने लगे। भगवान्‌ने प्रसन्न होकर वहाँ स्वयं भी अपने पाञ्चजन्य नामक शङ्खको बजाया तथा गोकर्णको छातीसे लगाकर उन्हें अपने समान ही बना लिया। उनके सिवा और भी जितने श्रोता थे, उन सबको श्रीहरिने एक ही क्षणमें अपना सारूप्य दे दिया। वे सभी मेघके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी तथा किरीट और कुण्डलोंसे सुशोभित हो गये। उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डाल आदि जितने भी जीव थे, उन सबको गोकर्णकी दयासे भगवान्‌ने विमानपर बिठा लिया और वैकुण्ठ-धाममें भेज दिया, जहाँ योगी पुरुष जाया करते हैं। तत्पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् गोपाल कथा-श्रवणसे प्रसन्न हो, गोकर्णको साथ ले गोपवल्लभ गोलोक-धामको पधारे। जैसे पूर्वकालमें समस्त अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके साथ साकेतधाममें गये थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने उस गाँवके सब मनुष्योंको योगियोंके लिये भी दुर्लभ गोलोक-धाममें पहुँचा दिया। जहाँ सूर्य, चन्द्रमा और सिद्ध पुरुषोंकी भी कभी पहुँच नहीं होती, उसी लोकमें वहाँके सब प्राणी केवल श्रीमद्भागवतकी कथा सुननेसे चले गये।

नारदजी ! श्रीमद्भागवतकी कथामें सप्ताह-यज्ञसे जिस उज्ज्वल फल-समुदायका सञ्चय होता है, उसका इस समय हम आपसे क्या वर्णन करें। जिन्होंने गोकर्णजीकी कथाका एक अक्षर भी अपने कर्ण-पुटोंके द्वारा पान किया, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये। हवा

पीकर, पत्ते चबाकर और शरीरको सुखाकर दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेसे तथा योगाभ्यास करनेसे भी मनुष्य उस गतिको नहीं प्राप्त होते, जिसे वे सप्ताह-कथाके श्रवणसे पा लेते हैं। मुनीश्वर शाण्डिल्य चित्रकूटमें रहकर ब्रह्मानन्दमें निमग्न हो इस पवित्र इतिहासका सदा पाठ किया करते हैं। यह उपाख्यान परम पवित्र है। एक बार श्रवण करनेपर भी सारी पाप-राशिको भस्म कर देता है। यदि श्राद्धमें इसका पाठ किया जाय तो इससे पितरोंको पूर्ण तृप्ति होती है और प्रतिदिन इसका पाठ करनेसे मनुष्यको मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

═══★═══

श्रीमद्भागवतके सप्ताह-पारायणकी विधि तथा भागवत-माहात्म्यका उपसंहार

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! अब हम सप्ताह-श्रवणकी विधिका वर्णन करते हैं। यह कार्य प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य होनेवाला माना गया है। पहले ज्योतिषीको बुलाकर इसके लिये यत्नपूर्वक मुहूर्त पूछना चाहिये। फिर विवाहके कार्यमें जितने धनकी आवश्यकता होती है, उतने ही धनका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। कथा आरम्भ करनेके लिये भादों, कुआर, कार्तिक,अगहन, आषाढ़ और सावन—ये महीने श्रोताओंके लिये मोक्षप्राप्तिके कारण माने गये हैं। महीनोंमें जो भद्रा, व्यतीपात आदि काल त्यागने-योग्य माने गये हैं, उन सबको सब प्रकारसे त्याग देना ही उचित है। जो लोग उत्साही और उद्योगी हों—ऐसे अन्य व्यक्तियोंको भी सहायक बना लेना चाहिये। फिर प्रयत्नपूर्वक देश-देशान्तरोंमें यह समाचार भेज देना चाहिये कि अमुक स्थानपर श्रीमद्भागवतकी कथा होनेवाली है, अतः सब लोग कुटुम्बसहित यहाँ पधारें। कुछ लोग भगवत्कथा और कीर्तन आदिसे बहुत दूर हैं; इसलिये इस समाचारको इस प्रकार फैलावें, जिससे स्त्रियों और शूद्र आदिको भी इसका पता लग जाय। देश-देशमें जो विरक्त और कथा-कीर्तनके लिये उत्सुक रहनेवाले वैष्णव हों, उनके पास भी पत्र भेजना चाहिये तथा उन पत्रोंमें इस प्रकार लिखना उचित है—'महानुभावो! यहाँ सात राततक सत्पुरुषोंका सुन्दर समागम होगा, जो अन्यत्र बहुत ही दुर्लभ है। इसमें श्रीमद्भागवतकी अपूर्व रसमयी कथा होगी। आपलोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके रसिक हैं, अतः यहाँ प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें। यदि आपको किसी कारणवश विशेष अवकाश न हो, तब भी एक दिनके लिये तो कृपा करनी ही चाहिये; क्योंकि यहाँका एक क्षण भी अत्यन्त दुर्लभ है। इसलिये सब प्रकारसे यहाँ पधारनेके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये।' इस प्रकार बड़ी विनयके साथ उनको आमन्त्रित करे और जो लोग आवें, उन सबके ठहरनेके लिये प्रबन्ध करे। तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी कथा-श्रवण उत्तम माना गया है। जहाँ भी लम्बी-चौड़ी भूमि— मैदान खाली हो, वहीं कथाके लिये स्थान बनाना चाहिये। जमीनको झाड़-बुहारकर, धोकर और लीप-पोतकर शुद्ध करे। फिर उसपर गेरु आदिसे चौक पुरावे। यदि वहाँ कोई घरका सामान पड़ा हो तो उसे उठाकर एक कोनेमें रखवा दे। कथा आरम्भ होनेसे पाँच दिन पहलेसे ही यत्नपूर्वक बहुत-से आसन जुटा लेने चाहिये। तथा एक ऊँचा मण्डप तैयार कराकर उसे केलेके खम्भोंसे सजा देना चाहिये। उसे फल, फूल, पत्तों तथा चँदोवेसे सब ओर अलङ्कृत करे; मण्डपके चारों ओर ध्वजारोपण करे और नाना प्रकारकी शोभामयी सामग्रियोंसे उसे सजावे। उस मण्डपके ऊपरी भागमें विस्तारपूर्वक सात लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बिठावे। पहलेसे ही वहाँ उनके लिये यथोचित आसन तैयार करके रखे। वक्ताके लिये भी सुन्दर व्यासगद्दी बनवानी चाहिये। यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर हो तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठे और यदि वक्ताका मुख पूर्वकी ओर हो तो श्रोताको उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिये। अथवा वक्ता और श्रोताके बीचमें पूर्व दिशा आ जानी चाहिये। देश, काल आदिको जाननेवाले

विद्वानोंने श्रोताओंके लिये ऐसा ही शास्त्रोक्त नियम बतलाया है।

वक्ता ऐसे पुरुषको बनाना चाहिये जो विरक्त, वैष्णव, जातिका ब्राह्मण, वेद-शास्त्रकी विशुद्ध व्याख्या करनेमें समर्थ, भाँति-भाँतिके दृष्टान्त देकर ग्रन्थके भावको हृदयङ्गम करानेमें कुशल, धीर और अत्यन्त निःस्पृह हो। जो अनेक मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़कर भ्रान्त हो रहे हों, स्त्री-लम्पट हों और पाखण्डकी बातें करते हों, ऐसे लोग यदि पण्डित भी हों तो भी उन्हें श्रीमद्भागवतकथाका वक्ता न बनावे। वक्ताके पास उसकी सहायताके लिये उसी योग्यताका एक और विद्वान् रखे; वह भी संशय निवारण करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल होना चाहिये। वक्ताको उचित है कि कथा आरम्भ होनेसे एक दिन पहले क्षौर करा ले, जिससे व्रतका पूर्णतया निर्वाह हो सके तथा श्रोता अरुणोदयकालमें—दिन निकलनेसे दो घड़ी पहले शौच आदिसे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान करे, फिर सन्ध्या आदि नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंका निवारण करनेके लिये श्रीगणेशजीकी पूजा करे। तदनन्तर पितरोंका तर्पण करके पूर्वपापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिकी स्थापना करे। फिर भगवान् श्रीकृष्णके उद्देश्यसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार-विधिसे पूजन करे। पूजा समाप्त होनेपर प्रदक्षिणा तथा नमस्कार करके इस प्रकार स्तुति करे—'करुणानिधे! मैं इस संसार-समुद्रमें डूबा हुआ हूँ। मुझे कर्मरूपी ग्राहने पकड़ रखा है। आप मुझ दीनका इस भवसागरसे उद्धार कीजिये।'* इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे प्रयत्नपूर्वक प्रसन्नताके साथ श्रीमद्भागवतकी भी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। फिर पुस्तकके आगे श्रीफल (नारियल) रखकर नमस्कार करे और प्रसन्न-चित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही यहाँ विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये ही आपकी शरण ली है। मेरे इस मनोरथको किसी विघ्न-बाधाके बिना ही आप सब प्रकारसे सफल करें। केशव! मैं आपका दास हूँ।'

इस प्रकार दीन वचन कहकर वक्ताको वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करके उसकी पूजा करे और पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे— 'शुकदेवस्वरूप महानुभाव! आप समझानेकी कलामें निपुण और समस्त शास्त्रोंके विशेषज्ञ हैं। इस श्रीमद्भागवतकथाको प्रकाशित करके आप मेरे अज्ञानको दूर कीजिये। तदनन्तर वक्ताके आगे अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक नियम ग्रहण करे और यथाशक्ति सात दिनोंतक निश्चय ही उसका पालन करे। कथामें कोई विघ्न न पड़े, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंका वरण करे। उन ब्राह्मणोंको द्वादशाक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। इसके बाद वहाँ उपस्थित हुए ब्राह्मणों, विष्णुभक्तों और कीर्तन करनेवाले लोगोंको नमस्कार करके उनकी पूजा करे और उनसे आज्ञा लेकर स्वयं श्रोताके आसनपर बैठे। जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्र आदिकी चिन्ता छोड़कर शुद्ध बुद्धिसे केवल कथामें ही मन लगाये रहता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है।

बुद्धिमान् वक्ताको उचित है कि वह सूर्योदयसे लेकर साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे, दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रखे। कथा बंद होनेपर वैष्णव पुरुषोंको वहाँ कीर्तन करना चाहिये। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये हलका भोजन करना अच्छा होता है। अतः कथा सुननेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको एक बार हविष्यान्न भोजन करना उचित है। यदि शक्ति हो तो सात रात उपवास करके कथा श्रवण करे अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक कथा सुने। इससे काम न चले

---

* संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे॥
कर्मग्राहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात्। (१९४। २९-३०)

तो फलाहार अथवा एक समय भोजन करके कथा सुने। तात्पर्य यह कि जिसके लिये जो नियम सुगमतापूर्वक निभ सके, वह उसीको कथा सुननेके लिये ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजनको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, यदि वह कथा-श्रवणमें सहायक हो सके। अगर उपवाससे कथामें विघ्न पड़ता हो तो वह अच्छा नहीं माना गया है।

नारदजी ! नियमसे सप्ताह-कथा सुननेवाले पुरुषोंके लिये पालन करनेयोग्य जो नियम हैं, उन्हें बतलाता हूँ; सुनिये। जिन्होंने श्रीविष्णुमन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है अथवा जिनके हृदयमें भगवान्‌की भक्ति नहीं है, उन्हें इस कथाको सुननेका अधिकार नहीं है। कथाका व्रत लेनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यसे रहे, भूमिपर शयन करे और कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करे। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्नको वह सर्वथा त्याग दे। काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह तथा द्वेषको बुरा समझकर पास न आने दे। वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक, स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दा न करे। रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), मलेच्छ, पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणद्रोही तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे वार्तालाप न करे। नियमसे कथाका व्रत लेनेवाले पुरुषको सदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। दरिद्र, क्षयका रोगी, अन्य किसी रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापाचारी, सन्तानहीन तथा मुमुक्षु पुरुष इस कथाको अवश्य सुने। जिस स्त्रीका मासिक धर्म रुक गया हो, जिसके एक ही सन्तान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हों तथा जिसका गर्भ गिर जाता हो, उस स्त्रीको प्रयत्नपूर्वक इस कथाका श्रवण करना चाहिये। इन्हें विधिपूर्वक दिया हुआ कथाका दान अक्षय फल देनेवाला है [अर्थात् ये यदि कथा सुनें तो इनके उक्त दोष अवश्य मिट जाते हैं]। कथाके लिये सात दिन अत्यन्त उत्तम माने गये हैं। वे कोटि यज्ञोंका फल देनेवाले हैं।

इस प्रकार व्रतकी विधि पूर्ण करके उसका उद्यापन करे। उत्तम फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको जन्माष्टमी-व्रतके समान इसका उद्यापन करना चाहिये। जो अकिञ्चन भक्त हैं, उनके लिये प्रायः उद्यापनका आग्रह नहीं है। वे कथा-श्रवणमात्रसे ही शुद्ध हो जाते हैं; क्योंकि वे निष्काम वैष्णव हैं। इस तरह सप्ताह-यज्ञ पूर्ण होनेपर श्रोताओंको बड़ी भक्तिके साथ पुस्तक तथा कथावाचककी पूजा करनी चाहिये और वक्ताको उचित है कि वह श्रोताओंको प्रसाद एवं तुलसीकी माला दे। तत्पश्चात् मृदङ्ग बजाकर तालस्वरके साथ कीर्तन किया जाय, जय-जयकार और नमस्कार शब्दके साथ शङ्खोंकी ध्वनि हो तथा ब्राह्मणों और याचकोंको धन दिया जाय। यदि श्रोता विरक्त हो तो कथा-समाप्तिके दूसरे दिन गीता बाँचनी चाहिये और गृहस्थ हो तो कर्मकी शान्तिके लिये होम करना चाहिये। उस हवनमें दशम स्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घी, तिल और अन्न आदिसे युक्त हवन-सामग्रीकी आहुति दे अथवा एकाग्रचित्त होकर गायत्री-मन्त्रसे हवन करे; क्योंकि वास्तवमें यह महापुराण गायत्रीमय ही है। यदि होम करानेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंको कुछ हवन-सामग्रीका दान करे तथा कर्ममें जो नाना प्रकारकी त्रुटियाँ रह गयी हों या विधिमें जो न्यूनता अथवा अधिकता हो गयी हो, उनके दोषकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं; क्योंकि इससे बढ़कर दूसरा कोई साधन नहीं है। हवनके पश्चात् बारह ब्राह्मणोंको मीठी खीर भोजन करावे और व्रतकी पूर्तिके लिये दूध देनेवाली गौ तथा सुवर्णका दान करे। यदि शक्ति हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवावे, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर आवाहन आदि उपचारोंसे उसका पूजन करे। फिर वस्त्र, आभूषण और गन्ध आदिके द्वारा जितेन्द्रिय आचार्यकी पूजा करके उन्हें दक्षिणासहित वह पुस्तक दान कर दे। जो बुद्धिमान् श्रोता ऐसा करता है, वह भव-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताह-यज्ञका

विधान सब पापोंका निवारण करनेवाला है; इसका इस प्रकार यथावत् पालन करनेसे कल्याणमय श्रीमद्भागवत-पुराण मनोवाञ्छित फल प्रदान करता है तथा धर्म, अर्थ काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताह-श्रवणकी सारी विधि सुना दी। अब और क्या सुनना चाहते हो? श्रीमद्भागवतसे ही भोग और मोक्ष दोनों हाथ लगते हैं। श्रीमद्भागवत नामक एक कल्पवृक्ष है, जिसका अङ्कुर बहुत ही उज्ज्वल है। सत्स्वरूप परमात्मासे इस वृक्षका उद्गम हुआ है, यह बारह स्कन्धों (मोटी डालियों) से सुशोभित है, भक्ति ही इसका थाल्हा है, तीन सौ बत्तीस अध्याय ही इसकी सुन्दर शाखाएँ हैं और अठारह हजार श्लोक ही इसके पत्ते हैं। यह सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है। इस प्रकार यह भागवतरूपी दिव्य वृक्ष अत्यन्त सुलभ होनेपर भी अपनी अनुपम महत्ताके कारण सर्वोपरि विराजमान है।

सूतजी कहते हैं—ऐसा कहकर सनकादि महात्माओंने परम पवित्र श्रीमद्भागवतकी कथा बाँचनी आरम्भ की, जो सब पापोंको हरनेवाली तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। उस समय समस्त प्राणी अपने मनको काबूमें रखकर सात दिनोंतक वह कथा सुनते रहे। तत्पश्चात् सबने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की। कथाके अन्तमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी पूर्णरूपसे पुष्टि की। उन्हें उत्तम तरुण अवस्था प्राप्त हुई, जो समस्त प्राणियोंका मन हर लेनेवाली थी। नारदजी भी अपना मनोरथ सिद्ध हो जानेसे कृतार्थ हो गये, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे परमानन्दमें निमग्न हो गये। इस प्रकार कथा सुनकर भगवान्‌के प्रिय भक्त नारदजी हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण गद्गद वाणीमें सनकादि महात्माओंसे बोले—'तपोधनो! आज मैं धन्य हो गया। आप दयालु महात्माओंने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। सप्ताह-यज्ञमें श्रीमद्भागवतका श्रवण करनेसे आज मुझे भगवान् श्रीहरि समीपमें ही मिल गये। मैं तो सब धर्मोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवत-श्रवणको ही श्रेष्ठ मानता हूँ, क्योंकि उसके सुननेसे वैकुण्ठवासी भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।'

सूतजी कहते हैं—वैष्णवोंमें श्रेष्ठ श्रीनारदजी जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय सोलह वर्षकी अवस्थावाले व्यासपुत्र योगेश्वर श्रीशुकदेव मुनि वहाँ घूमते हुए आ पहुँचे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो ज्ञानरूपी महासागरसे निकले हुए चन्द्रमा हों। वे ठीक कथा समाप्त होनेपर वहाँ पहुँचे थे। आत्मलाभसे परिपूर्ण श्रीशुकदेवजी उस समय बड़े प्रेमसे धीरे-धीरे श्रीमद्भागवतका पाठ कर रहे थे। उन परम तेजस्वी मुनिको आया देख सारे सभासद् तुरंत ही उठकर खड़े हो गये और उन्हें बैठनेके लिये एक ऊँचा आसन दिया; फिर देवर्षि नारदजीने बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक आसनपर विराजमान हो गये तो 'मेरी उत्तम वाणी सुनो' ऐसा कहते हुए बोले—'भगवत्कथाके रसिक भावुक भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका एवं चूकर गिरा हुआ फल है, जो परमानन्दमय अमृत-रससे भरा है। यह श्रीशुकदेवरूप तोतेके मुखसे इस पृथ्वीपर प्राप्त हुआ है; जबतक यह जीवन रहे, जबतक संसारका प्रलय न हो जाय, तबतक आपलोग इस दिव्य रसका नित्य-निरन्तर बारम्बार पान करते रहिये। महामुनि श्रीव्यासजीके द्वारा रचित इस श्रीमद्भागवतमें परम उत्तम निष्काम धर्मका प्रतिपादन किया गया है तथा जिनके हृदयमें ईर्ष्या-द्वेषका अभाव है, उन साधु पुरुषोंके जानने योग्य उस कल्याणप्रद परमार्थ-तत्त्वका निरूपण किया गया है, जो आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंका समूल नाश करनेवाला है। इस श्रीमद्भागवतकी शरण लेनेवाले पुरुषोंको दूसरे साधनोंकी क्या आवश्यकता है। जो बुद्धिमान् एवं पुण्यात्मा पुरुष इस पुराणको श्रवण करनेकी इच्छा करते हैं, उनके हृदयमें स्वयं भगवान् ही तत्काल प्रकट होकर सदाके लिये स्थिर हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत समस्त पुराणोंका तिलक और वैष्णव पुरुषोंकी प्रिय वस्तु है। इसमें परमहंस महात्माओंको प्राप्त

होने योग्य परम उत्तम विशुद्ध अद्वैत-ज्ञानका वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित नैष्कर्म्य धर्म- (निवृत्तिमार्ग-)को प्रकाशित किया गया है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पठन और मननमें संलग्न रहता है, वह संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है। यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास तथा वैकुण्ठमें भी नहीं है; अतः सौभाग्यशाली पुरुषो! तुम इसका निरन्तर पान करते रहो। कभी किसी प्रकार भी इसको छोड़ो मत, छोड़ो मत।'

शौनकजी! व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि वहाँ बीच सभामें प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंका पूजन किया। भगवान्‌को प्रसन्न देखकर नारदजीने उन्हें एक श्रेष्ठ आसनपर बिठा दिया और सब लोग मिलकर उनके सामने कीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये पार्वतीसहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी वहाँ आ गये। प्रह्लादजी चञ्चल गतिसे थिरकते हुए करताल बजाने लगे, उद्धवने मँजीरे ले लिये, देवर्षि नारदजीने वीणाकी तान छेड़ दी, स्वरमें कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया। महात्मा सनक, सनन्दन, आदि कीर्तनके बीचमें जय-जयकार करने लगे और इन सबके आगे व्यासपुत्र शुकदेवजी रसकी अभिव्यक्ति करते हुए भाव बताने लगे। उस कीर्तन-मण्डलीके बीच परम तेजस्वी ज्ञान, भक्ति और वैराग्य नटोंके समान नृत्य कर रहे थे। यह अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'भक्तजन! मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, अतः तुमलोग मुझसे वर माँगो।' भगवान्‌का यह वचन सुनकर सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, उनका हृदय भगवत्प्रेमसे सराबोर हो गया। वे श्रीहरिसे कहने लगे—'भगवन्! हमारी इच्छा है कि जहाँ कहीं भी श्रीमद्भागवतकी सप्ताह-कथा हो, वहाँ इन समस्त पार्षदोंके साथ यत्नपूर्वक पधारें। हमलोगोंका यह मनोरथ अवश्य पूर्ण होना चाहिये।' तब भगवान् 'तथास्तु' कहकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

तत्पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके भक्तोंके चरणोंको लक्ष्य करके मस्तक झुकाया और शुकदेव आदि तपस्वियोंको भी प्रणाम किया। इस प्रकार कथामृतका पान करके सब लोगोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन सबका मोह नष्ट हो गया। फिर वे सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। उस समय श्रीशुकदेवजीने ज्ञान-वैराग्यसहित भक्तिको श्रीमद्भागवत-शास्त्रमें स्थापित कर दिया। इसीसे श्रीमद्भागवतका सेवन करनेपर भगवान् विष्णु वैष्णवोंके हृदयोंमें विराजमान हो जाते हैं; जो लोग दरिद्रता (तरह-तरहके अभाव) और दुःखरूप ज्वरसे दग्ध हो रहे हैं, जिनको मायापिशाचीने अपने पैरोंसे कुचल डाला है तथा जो संसार-समुद्रमें पड़े हुए हैं, उनका कल्याण करनेके लिये श्रीमद्भागवत-शास्त्र निरन्तर गर्जना कर रहा है।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को, गोकर्णजीने धुन्धुकारीको तथा सनकादिने देवर्षि नारदको किस-किस समय श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी थी?

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेके पश्चात् जब कलियुगको आये तीस वर्ष हो गये, उस समय भादोंके शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको श्रीशुकदेवजीने कथा आरम्भ की। राजा परीक्षित्‌के कथा सुननेके पश्चात् कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर शुद्ध आषाढ़ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने कथा सुनायी थी। उसके बाद जब कलियुगके तीन सौ छः वर्ष व्यतीत हो गये, तब कार्तिक शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको सनकादिने कथा आरम्भ की थी। पापरहित शौनकजी! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। इस कलियुगमें श्रीमद्भागवतकी कथा संसाररूपी रोगका नाश करनेवाली है। संतजन! आपलोग श्रद्धापूर्वक इस कथामृतका पान करें। यह भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय, समस्त पापोंका नाश करनेवाला, मुक्तिका एकमात्र कारण तथा भक्तिको बढ़ानेवाला है। इसको छोड़कर लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंके विचार करनेकी

क्या आवश्यकता है? अपने सेवकको पाश हाथमें लिये देख यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो लोग भगवान्‌की कथा-वार्तामें मस्त हो रहे हों, उनसे दूर ही रहना। मैं दूसरे ही लोगोंको दण्ड देनेमें समर्थ हूँ, वैष्णवोंको नहीं।' इस असार संसारमें विषयरूपी विषके सेवनसे व्याकुलचित्त हुए मनुष्यो! यदि कल्याण चाहते हो तो आधे क्षणके लिये भी श्रीमद्भागवतकथारूपी अनुपम सुधाका पान करो। अरे भाई! घृणित चर्चासे भरे हुए कुमार्गपर क्यों व्यर्थ भटक रहे हो। इस कथाके कानमें पड़ते ही मुक्ति हो जाती है। मेरे इस कथनमें राजा परीक्षित् प्रमाण हैं। श्रीशुकदेवजीने प्रेम-रसके प्रवाहमें स्थित होकर यह कथा कही है। जो इसे अपने कण्ठसे लगाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है। शौनकजी! मैंने समस्त शास्त्र-समुदायका मन्थन करके इस समय आपको यह परम गुह्य रहस्य सुनाया है। यह समस्त सिद्धान्तोंद्वारा प्रमाणित है। संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथासे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है, अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये द्वादशस्कन्धरूप इस सारमय कथामृतका किञ्चित्-किञ्चित् पान करते रहिये। जो मनुष्य नियमपूर्वक इस कथाको भक्तिभावसे सुनता है और जो विशुद्ध वैष्णव पुरुषोंके आगे इसे सुनाता है, वे दोनों ही उत्तम विधिका पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल प्राप्त करते हैं। उनके लिये संसारमें कुछ भी असाध्य नहीं है।

★

यमुनातटवर्ती 'इन्द्रप्रस्थ' नामक तीर्थकी माहात्म्य-कथा

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप यमुनाजीके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही यह बात भी बताइये, किसने किसके प्रति इस माहात्म्यका उपदेश किया था?

सूतजीने कहा—एक समयकी बात है, पाण्डु-नन्दन युधिष्ठिर सौभरि मुनिसे कल्याणमय ज्ञान सुननेके लिये उनके स्थानपर गये और उन्हें नमस्कार करके इस प्रकार पूछने लगे—'ब्रह्मन्! सूर्यकन्या यमुनाजीके तटपर जितने तीर्थ हैं उनमें ऐसा कल्याणमय तीर्थ कौन है, जो भगवान्‌की जन्मभूमि मथुरासे भी बड़ा हो।'

सौभरि बोले—एक समय मुनिश्रेष्ठ नारद और पर्वत आकाशमार्गसे जा रहे थे। जाते-जाते उनकी दृष्टि परम मनोहर खाण्डव वनपर पड़ी। वे दोनों मुनि आकाशसे वहाँ उतर पड़े और यमुनाजीके उत्तम तटपर बैठकर विश्राम करने लगे। क्षणभर विश्राम करनेके बाद उन्होंने स्नान करनेके लिये जलमें प्रवेश किया। इसी समय उशीनर देशके राजा शिबिने, जो उस वनमें शिकार खेलनेके लिये आये थे, उन दोनों मुनियोंको देखा। तब वे उनके निकलनेकी प्रतीक्षा करते हुए नदीके तटपर बैठ गये। नारद और पर्वत मुनि जब विधिपूर्वक स्नान करके वस्त्र पहन चुके तब राजा शिबिने उनके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। फिर तो वे मुनि भी राजाके साथ ही तटपर विराजमान हो गये। वहाँ सुवर्णके हजारों यूप दिखायी दे रहे थे। अभिमानरहित राजा शिबिने उन यूपोंपर दृष्टि डालकर देवर्षि नारद और पर्वतसे पूछा—'मुनिवरो! ये यज्ञ-यूप किनके हैं? किस देवता अथवा मनुष्यने यहाँ यज्ञ किये हैं? काशी आदि तीर्थोंको छोड़कर किस पुरुषने यहाँ यज्ञ किया है? अन्य तीर्थोंसे यहाँ क्या विशेषता है? इसमें कौन-सा विज्ञानका भण्डार भरा हुआ है? यह बतानेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें हिरण्यकशिपुने जब देवताओंको जीतकर तीनों लोकोंका राज्य प्राप्त कर लिया तो उसे बड़ा घमण्ड हो गया। उसके पुत्र प्रह्लादजी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे; किन्तु वह पापात्मा उनसे सदा द्वेष रखता था। भक्तसे द्रोह करनेके कारण उसे दण्ड देनेके लिये भगवान् विष्णुने नृसिंहरूप धारण किया और उसका वध करके स्वर्गका राज्य इन्द्रको समर्पित कर दिया। अपना स्थान पाकर इन्द्रने गुरु बृहस्पतिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर

प्रणाम किया और भगवान् नारायणके गुणोंका स्मरण करते हुए कहा—'गुरुदेव! समस्त जगत्का पालन करनेवाले नृसिंहरूपधारी श्रीहरिने मुझे पुनः देवताओंका राज्य प्रदान किया है, अतः मैं यज्ञोंद्वारा उनका पूजन करना चाहता हूँ। इसके लिये आप मुझे पवित्र स्थान बताइये और योग्य ब्राह्मणोंका परिचय दीजिये। आप हमलोगोंके हितकारी हैं, अतः इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये।'

बृहस्पतिजीने कहा—देवराज! तुम्हारा खाण्डव वन परम पवित्र और रमणीय स्थान है। वहाँ त्रिभुवनको पवित्र करनेवाली पुण्यमयी यमुना नदी है। यदि तुम आत्मीयजनोंका कल्याण चाहते हो तो उसीके तटपर चलकर नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान् केशवकी आराधना करो।

गुरु बृहस्पतिके वचन सुनकर देवराज इन्द्र तुरंत गुरु, देवता तथा यज्ञसामग्रीके साथ खाण्डव वनमें आये। फिर गुरुकी आज्ञासे ब्रह्मकुमार वसिष्ठ आदि सप्तर्षियों तथा अन्य ब्राह्मणोंका वरण करके इन्द्रने जगत्पति भगवान् विष्णुका यजन किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु, ब्रह्मा और महादेवजीके साथ इन्द्रके यज्ञमें पधारे। सरलहृदय इन्द्र तीनों देवताओंको उपस्थित देख तुरंत आसनसे उठकर खड़े हो गये और मुनियोंके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर वाहनोंसे उतरकर वे तीनों देवता सोनेके सिंहासनोंपर विराजमान हुए। उस समय वेदियोंपर प्रज्वलित त्रिविध अग्नियोंकी भाँति उन तीनोंकी शोभा हो रही थी। श्वेत और लाल वर्णवाले शङ्कर एवं ब्रह्माजीके बीचमें बैठे हुए पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर भगवान् विष्णु ऐसे जान पड़ते थे मानो दो पर्वत-शिखरोंके बीच बिजलीसहित मेघ दिखायी दे रहा हो। इन्द्रने उन तीनोंके चरण धोकर उस जलको अपने मस्तकपर चढ़ाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ मधुर वाणीमें इस प्रकार स्तुति करना आरम्भ किया।

इन्द्र बोले—देव! आज मेरे द्वारा आरम्भ किया हुआ यह यज्ञ सफल हो गया; क्योंकि योगियोंको भी जिनका दर्शन मिलना अत्यन्त कठिन है, वे ही आप तीनों देवता स्वतः मुझे दर्शन देने पधारे हैं। विष्णो! यद्यपि आप एक ही हैं, तो भी सत्त्व आदि गुणोंका आश्रय लेकर आपने अपने तीन स्वरूप बना लिये हैं। इन तीनों ही रूपोंका तीनों वेदोंमें वर्णन है अथवा ये तीनों रूप तीन वेदस्वरूप ही हैं। जैसे स्फटिकमणि स्वतः उज्ज्वल है, किन्तु भाँति-भाँतिके रंगोंके सम्पर्कमें आकर विविध रंगका जान पड़ता है, उसी प्रकार आप एक होनेपर भी उपाधिभेदसे अनेकवत् प्रतीत होते हैं। आपका यह नानात्व स्फटिकमणिके रंगोंकी भाँति मिथ्या ही है। प्रभो! जैसे लकड़ियोंमें छिपी हुई आग रगड़े बिना प्रकट नहीं होती, उसी प्रकार सम्पूर्ण भूतोंके हृदयमें छिपे हुए आप परमात्मा भक्तिसे ही प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देते हैं। आप सब प्राणियोंका उपकार करनेवाले हैं। आपमें एककी भी भक्ति हो तो अनेकोंको सुख होता है। प्रह्लादजीकी की हुई भक्तिके द्वारा आज सम्पूर्ण देवता सुखी हो गये हैं। देव हम सभी देवता विषय-भोगोंमें ही फँसे हैं। हमारे मनपर आपकी मायाका पर्दा पड़ा है, अतः हम आपके स्वरूपको नहीं जानते; उसका यथावत् ज्ञान तो उन्हींको होता है, जो आपके चरणोंके सेवक हैं। ब्रह्मा और महादेवजी! आप दोनों भी इस जगत्के गुरु हैं; यह गुरुत्व भगवान् विष्णुका ही है, इसलिये आपलोग इनसे पृथक् नहीं हैं। वाणीसे जो कुछ भी कहा जाता है और मनसे जो कुछ सोचा जाता है, वह सब भगवान् विष्णुकी माया ही है। जो कुछ देखनेमें आ रहा है, यह सारा प्रपञ्च ही मिथ्या है—ऐसा विचार करके जो मनुष्य भगवान् विष्णुके चरणोंका भजन करते हैं, वे संसार-सागरसे तर जाते हैं। महादेवजी! इन चरणोंकी महिमाका कहाँतक वर्णन किया जाय, जिनका जल आप भी अपने मस्तकपर धारण करते हैं। ब्रह्माजी! मैं तो यही चाहता हूँ कि जिनकी दृष्टि पड़नेमात्रसे विकारको प्राप्त होकर प्रकृति महत्तत्त्व आदि समस्त जगत्की सृष्टि करती है, उन्हीं भगवान् विष्णुके चरण-कमलोंमें मेरा जन्म-जन्म दृढ़ अनुराग बना रहे। भगवान् नृसिंह! आपके समान दयालु प्रभु दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि जो आपसे शत्रुभाव रखते हैं, उनके लिये भी आप सुखका

ही विस्तार करते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं कि आप अपने भक्तोंका शोक दूर करनेके लिये ही दयालु हैं—यह उनकी अज्ञता है।

राजन्! इस प्रकार भगवान् केशवकी स्तुति करके देवराज इन्द्रने उनके चरणोंमें प्रणाम किया तथा उनका वचन सुननेके लिये वे दत्तचित्त होकर खड़े हो गये। तब यज्ञसभामें आये हुए मुनि इन्द्रद्वारा की हुई रमापति भगवान् विष्णुकी यह स्तुति सुनकर भगवद्भक्तिकी प्रशंसा करते हुए उन्हें साधुवाद देने लगे।

नारदजी कहते हैं—मुनियोंद्वारा त्रिलोकीसे अतीत नित्य धामकी प्राप्ति करानेवाली तथा सबके सेवन करनेयोग्य अपनी भक्तिका समर्थन सुनकर सम्पूर्ण जगत्के गुरु भगवान् श्रीहरि उस समाजके भीतर इन्द्रसे मधुर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—देवराज! ये मुनि परम ज्ञानी हैं। अतः यदि ये मेरी भक्तिको गौरव देते और उसका सत्कार करते हैं तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि ये तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले प्राणियोंको उपदेश देनेवाले हैं। ये ही सदा नष्ट हुए वैदिक मार्गको पुनः स्थापित करते हैं। यद्यपि तुम स्वर्गके भोगोंमें आसक्त थे, तथापि जो भक्तिपूर्वक मेरी शरणमें आ गये—इसमें कोई आश्चर्य नहीं है; क्योंकि देवगुरु बृहस्पति-जैसे महात्मा तुम्हारे गुरु हैं। सुरश्रेष्ठ! तुम बहुत-सी दक्षिणावाले यज्ञोंसे मेरा यजन करो, किन्तु मनमें कोई कामना न रखो। इससे तुम तुरंत ही मेरे समीपवर्ती पद—परम धामको प्राप्त होओगे। तुम प्रत्येक यज्ञमें रत्नोंके अनेक प्रस्थ (ढेर) दान करो; फिर इसी नामसे यह स्थान इन्द्रप्रस्थ कहलायेगा। महादेवजी! आप यहीं काशी और शिवकाञ्चीकी स्थापना कीजिये और पार्वतीजीके साथ सदा इस तीर्थमें निवास कीजिये। बृहस्पतिजी! आप भी यहाँ निगमोद्बोधक तीर्थकी स्थापना कीजिये। यहाँ स्नान करनेसे पूर्वजन्मकी स्मृति और परमात्माका ज्ञान प्राप्त हो। मैं भी यहाँ परम मनोहर द्वारकापुरी, अयोध्यापुरी, मधुवन और बदरिकाश्रमकी स्थापना करता हूँ तथा सदा यहाँ उपस्थित रहूँगा। इन्द्र! हरिद्वार और पुष्कर नामक जो दो श्रेष्ठ तीर्थ हैं, उनको भी मैं तुम्हारे हितकी कामनासे यहाँ स्थापित करता हूँ। नैमिषारण्य, कालञ्जरगिरि तथा सरस्वतीके तटपर भी जितने तीर्थ हैं, उन सबकी मैं यहाँ स्थापना करता हूँ।

नारदजी कहते हैं—राजा शिबि! श्रीहरिके ये कल्याणमय वचन सुनकर सबने वैसा ही किया। अब यह स्थान सम्पूर्ण तीर्थोंका स्वरूप बन गया, अतः देवराज इन्द्रने सुवर्णके यूपोंसे सुशोभित अनेक यज्ञोंद्वारा पुनः भगवान् लक्ष्मीपतिका यजन किया और भगवान्के सामने ही ब्राह्मणोंको रत्नोंके कितने ही प्रस्थ दान किये। दान देते समय उन्होंने केवल यही उद्देश्य रखा कि मुझपर सर्वात्मा नारायण सन्तुष्ट हों। तभीसे यह तीर्थ इन्द्रप्रस्थ कहलाता है।

इन्द्रने यहाँ सुवर्ण-यूपोंसे सुशोभित यज्ञोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान पूर्ण किया और भगवान् विष्णु आदि देवताओंकी पूजा करके उन्हें विदा किया। फिर ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ आदि ऋत्विजोंको धन आदिके द्वारा सन्तुष्ट करके बृहस्पतिको आगे करके इन्द्र स्वर्गलोकको चले गये। राजन्! वहाँ भगवान्की भक्तिसे युक्त हो इन्द्रने राज्य किया और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः हस्तिनापुरमें जन्म लिया।

वहाँ शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण थे, जो वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् थे। उनकी पत्नीका नाम गुणवती था। भगवान् विष्णुके सेवक देवराज इन्द्र उसीके गर्भसे उत्पन्न हुए। शिवशर्माने ज्यौतिषियोंको बुलवाया। ज्यौतिषी लग्न देखकर उसका फल बतलाने लगे—'शिवशर्माजी! आपका यह बालक भगवान् विष्णुका प्रिय भक्त होगा तथा आपके कुलका उद्धार करेगा।' ज्यौतिषियोंका यह शान्तिदायक वचन सुनकर शिवशर्माने अपने पुत्रका नाम विष्णुशर्मा रखा और उन्हें धन देकर विदा किया। शिवशर्मा बड़े बुद्धिमान् थे। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'मेरा जीवन धन्य है; क्योंकि मेरा पुत्र भगवान् विष्णुका भक्त होगा।' मनमें ऐसी ही बात विचारते हुए शिवशर्माने किसी अच्छे दिनको श्रेष्ठ

ब्राह्मणोंके द्वारा शिशुके जात-कर्म आदि संस्कार कराये। जब सात वर्ष व्यतीत हो गये और आठवाँ वर्ष आ लगा तब उन्होंने अपने पुत्रका उपनयन-संस्कार किया। इसके बाद बारह वर्षोंतक उसे अङ्गोंसहित वेद पढ़ाये। तत्पश्चात् शिवशर्माने पुत्रका विवाह कर दिया। बुद्धिमान् विष्णुशर्माने अपनी पत्नीसे एक पुत्र उत्पन्न करके अपने विषय-वासनारहित मनको तीर्थयात्रामें लगाया और पिताके पास जाकर उनके दोनों चरणोंमें प्रणाम किया। तत्पश्चात् महाप्राज्ञ विष्णुशर्मा इस प्रकार बोले—'पिताजी! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं सत्सङ्ग प्रदान करनेवाले तृतीय आश्रमको स्वीकार करके अब श्रीविष्णुकी आराधना करूँगा। स्त्री, गृह, धन, सन्तान और सुहृद्—ये सभी जलमें उठनेवाले बुद्बुदोंकी तरह क्षणभङ्गुर हैं; अतः विद्वान् पुरुष इनमें आसक्त नहीं होता। मैंने वेदोंके स्वाध्यायसे और सन्तानोत्पत्तिके द्वारा क्रमशः ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणसे उद्धार पा लिया है। अब तीर्थोंमें रहकर निष्कामभावसे भगवान् केशवकी आराधना करना चाहता हूँ। गुणमय पदार्थोंकी आसक्तिका त्याग करके जबतक प्रारब्ध शेष है, किसी उत्तम तीर्थमें रहनेका विचार करता हूँ।'

शिवशर्माने कहा—बेटा! मेरे लिये भी अहङ्कारशून्य होकर चतुर्थ आश्रममें प्रवेश करनेका समय आ गया है, अतः मैं भी विषयोंको विषकी भाँति त्यागकर श्रीकेशवरूपी अमृतका सेवन करूँगा। अब मेरी वृद्धावस्था आ गयी, अतः घरमें मेरा मन नहीं लगता। तुम्हारा छोटा भाई सुशर्मा कुटुम्बका पालन-पोषण करेगा। हम दोनों श्रीहरिके चरण-कमलोंका चिन्तन करते हुए अब यहाँसे चल दें।

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! ऐसा निश्चय करके वे दोनों मुमुक्षु पिता-पुत्र अन्धकारपूर्ण आधी रातके समय घरसे चल दिये और घूमते हुए इस परम कल्याणदायक तीर्थ इन्द्रप्रस्थमें आये। यहाँ अपने पूर्वजन्मके किये हुए यज्ञयूपोंको देखकर विष्णुशर्माको श्रीहरिके समागमका स्मरण हो आया। उन्होंने अपने पितासे कहा—'पिताजी! मैं पूर्वजन्ममें इन्द्र था। मैंने ही भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेकी इच्छासे यहाँ यज्ञ किये थे। यहीं मेरे ऊपर भक्तवत्सल भगवान् केशव प्रसन्न हुए थे। मैंने रत्नोंके प्रस्थ दान करके यहाँ ब्राह्मणों और सप्तर्षियोंको सन्तुष्ट किया था। उन्होंने ही मुझे विष्णुभक्तिकी प्राप्ति तथा इस जन्ममें मोक्ष होनेका आशीर्वाद दिया था। इस तीर्थको सर्वतीर्थमय बनाकर इन्द्रप्रस्थ नाम दिया गया था। उन मुनिवरोंने इसी स्थानपर मेरी मृत्यु होनेकी बात बतायी है और अन्तमें भगवान्के परमधामकी प्राप्ति होनेका आश्वासन दिया है। ये सब बातें मुझे इस समय याद आ रही हैं। यह निगमोद्बोधक नामक तीर्थ है, जिसे मेरे गुरु बृहस्पतिजीने स्थापित किया था। सप्ततीर्थ और निगमोद्बोध—इन दो तीर्थोंके बीचमें देवताओंने इस इन्द्रप्रस्थनामक महान् क्षेत्रकी स्थापना की है। पिताजी! यह पूर्वसे पश्चिमकी ओर एक योजन चौड़ा है और यमुनाके दक्षिण तटपर चार योजनकी लंबाईमें फैला हुआ है। महर्षियोंने इन्द्रप्रस्थकी इतनी ही सीमा बतायी है।'

★

निगमोद्बोध नामक तीर्थकी महिमा—शिवशर्माके पूर्वजन्मकी कथा

नारदजी कहते हैं—राजन्! यह बात सुनकर शिवशर्माके मनमें बड़ा सन्देह हुआ और उन्होंने अपने सत्यवादी पुत्र विष्णुशर्मासे पूछा—'बेटा! मैं कैसे समझूँ कि तुम पूर्वजन्ममें देवताओंके राजा इन्द्र थे और तुमने ही यज्ञ करके रत्नोंके द्वारा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया था। तुम्हारी कही हुई बातें जिस प्रकार मेरी समझमें आ जायँ, वह करो। पूर्वजन्ममें किये हुए कार्योंका ज्ञान इस समय तुम्हें कैसे हो रहा है?

विष्णुशर्माने कहा—पिताजी! मुझे ऋषियोंने पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहनेका वरदान दिया है। उन्हींके मुँहसे इस तीर्थके विषयमें ऐसी महिमा सुनी थी। आप यहाँ निगमोद्बोध तीर्थमें स्नान कीजिये। इससे आपको भी

पूर्वजन्मकी स्मृति प्रदान करनेवाला दुर्लभ ज्ञान प्राप्त होगा।

यह सुनकर विप्रवर शिवशर्माने पूर्वजन्मकी स्मृति प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीहरि, श्रीगङ्गाजी एवं अयोध्या आदि सात पुरियोंका स्मरण करके और भगवान् गोविन्दमें चित्त लगाकर निगमोद्बोध तीर्थमें बार-बार डुबकियाँ लगाकर स्नान किया। उसके बाद सन्ध्या-तर्पण किया। तदनन्तर सूर्यको सादर अर्घ्य देकर विविध उपचारोंसे भगवान् विष्णुका पूजन किया। इस तरह नित्यकर्म पूरा करके वे सुखपूर्वक बैठे और अपने सुयोग्य पुत्र विष्णुशर्मासे बोले।

शिवशर्माने कहा—विष्णुशर्मन्! यहाँ स्नान करनेसे मुझे भी पहलेके जन्म-कर्मोंका स्मरण हो आया है। महाभाग! मैं उन्हें तुम्हारे सामने कहता हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मैं धनवान् वैश्यके कुलमें उत्पन्न हुआ था। मेरे पिताका नाम शरभ था। वे कान्यकुब्जपुरमें निवास करते थे। वहाँ व्यापारके द्वारा उन्होंने बहुत धन कमाया; परन्तु रात-दिन उन्हें यही चिन्ता घेरे रहती थी कि पुत्रके बिना मेरी सञ्चित की हुई यह सारी धनराशि व्यर्थ ही है। इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए वैश्यके घर एक दिन परोक्ष विषयोंका ज्ञान रखनेवाले मुनिवर देवलजी पधारे। उन्हें आया देख मेरे पिता आसनसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने पाद्य और अर्घ्य देकर मुनिको प्रणाम किया, उत्तम आसनपर बैठाया और सम्मानपूर्वक कुशलप्रश्न पूछते हुए कहा—'मुनिश्रेष्ठ! आपका इस पृथ्वीपर विचरना हम-जैसे गृहस्थोंको सुख देनेके लिये ही होता है; अन्यथा यदि आप कृपा करके स्वतः न पधारें, तो घरकी चिन्तामें डूबे हुए मनुष्योंको आप-जैसे महात्माका दर्शन कहाँ हो सकता है? जिनकी बुद्धि भगवान्‌की चरण-रजके चिन्तनमें लगी हुई है, उन्हें कहीं भी कोई कामना नहीं हो सकती। तथापि यहाँ आपके पधारनेका क्या कारण है? यह शीघ्र बतानेकी कृपा करें।'

वैश्यके ऐसा कहनेपर देवल मुनिने उनके मनोभावको जाननेके लिये पूछा—'वैश्यप्रवर! तुमने धर्मपूर्वक बहुत धनका सञ्चय कर लिया है और उसीसे तुम नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका भलीभाँति अनुष्ठान करते हो। फिर भी तुम्हारा शरीर सूखा क्यों जा रहा है? यदि कोई गोपनीय बात न हो, तो मुझे अवश्य बताओ।'

वैश्यने कहा—मुनिश्रेष्ठ! आपसे छिपानेयोग्य कौन-सी बात हो सकती है? आपकी कृपासे मुझे सब प्रकारका सुख है। दुःख केवल एक ही बातका है कि बुढ़ापा आ जानेपर भी अबतक मेरे कोई पुत्र नहीं हुआ। आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे मैं भी पुत्रवान् हो सकूँ। आप-जैसे महात्माओंके लिये इस पृथ्वीपर कोई भी कार्य असम्भव नहीं है।

वैश्यश्रेष्ठ शरभके ये वचन सुनकर परोक्षज्ञानी देवलजीने आँखें बंद कर मनको स्थिर करके क्षणभर ध्यान किया और मेरे पिताको सन्तानकी प्राप्ति होनेमें जो रुकावट थी, उसका कारण जानकर उन्हें पुरानी बातोंकी याद दिलाते हुए कहा—"वैश्य! पहलेकी बात है, एक दिन तुम्हारी धर्मपत्नीने अपने मनमें जो कामना की थी, उसे बतलाता हूँ; सुनो। इसने पार्वतीजीसे प्रार्थना की—'शिवप्रिया गौरीदेवी! यदि मैं गर्भवती हो जाऊँ तो तुम्हें षड्रस भोजनसे सन्तुष्ट करूँगी।' इस प्रार्थनाके बाद उसी महीनेमें तुम्हारी पत्नीके गर्भ रह गया। तब सखियोंके अनुरोधसे तुम्हारी पतिव्रता पत्नीने तुम्हारे पास आकर विनयपूर्वक कहा—'नाथ! मैं सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली पार्वती देवीकी पूजा करना चाहती हूँ, क्योंकि उन्हींकी कृपासे इस समय मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ है।'

"वैश्यप्रवर! अपनी पत्नीके ये शुभ वचन सुनकर तुम बहुत प्रसन्न हुए और तुमने मधु, अन्न, द्राक्षा और गन्ध आदि सब सामग्रियोंको मँगवाकर अपनी पत्नीके हवाले कर दिया। तब तुम्हारी पत्नीने सखियोंको बुलाकर कहा—'सहेलियो! पूजनकी सारी सामग्री मैंने मँगा ली है। यह सब लेकर तुमलोग मन्दिरमें जाओ और विधिवत् पूजा करके देवीको सन्तुष्ट करो। हमारे कुलमें गर्भवती स्त्री घरसे बाहर नहीं निकलती; इसलिये मैं नहीं चल सकूँगी। तुम्हीं लोग देवीकी पूजाके लिये जाओ।'

"तुम्हारी पत्नीकी आज्ञा पाकर सखियाँ पूजाकी सामग्री ले अम्बिकाके मन्दिरमें गयीं। वहाँ उन्होंने पार्वतीजीको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके भक्तिपूर्वक कहा—'जगदम्बे! तुम्हें नमस्कार है। शिवप्रिये! हमारा कल्याण करो। शरभ नामक वैश्यकी पत्नी ललिताको तुम्हारी कृपासे गर्भ प्राप्त हो गया, अतः उसने तुम्हारी पूजाके लिये यह सब सामग्री हमारे हाथ भेजी है। उसके कुलमें गर्भवती स्त्री घरसे बाहर नहीं निकलती, इसीलिये वह स्वयं नहीं आ सकी है। देवि! तुम प्रसन्न होकर इस पूजनको ग्रहण करो।'

"ऐसा कहकर सखियोंने माता पार्वतीका चन्दन आदिसे विधिपूर्वक पूजन किया; परन्तु भगवती गौरीकी ओरसे उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला। सखियाँ घर लौट आयीं और तुम्हारी पत्नीसे बोलीं कि इस पूजासे पार्वतीजी प्रसन्न नहीं हैं। सखियोंकी बात सुनकर तुम्हारी स्त्रीके मनमें बड़ी व्याकुलता हुई। वह मन-ही-मन चिन्ता करने लगी कि 'उनके सुन्दर मन्दिरमें पूजाके समय मैं स्वयं नहीं जा सकी, यही मेरा अपराध है। इसके सिवा दूसरी कोई ऐसी बात नहीं जान पड़ती, जो उनकी अप्रसन्नताका कारण हो। जो बात बीत गयी, उसको तो बदलना असम्भव है; किन्तु मैं गर्भसे छुटकारा पानेपर स्वयं भगवतीकी पूजाके लिये उनके मन्दिरमें जाऊँगी। महादेवजीकी पत्नी भगवती उमाको नमस्कार है। वे मेरा कल्याण करें।'

वैश्यने पूछा—मुने! मेरी पत्नीने जैसी प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार उसने पार्वतीजीका पूजन किया; फिर उनकी अप्रसन्नताका क्या कारण है, यह बतानेकी कृपा करें।

देवलजीने कहा—वैश्यवर! इसका कारण सुनो; जब तुम्हारी पत्नीकी सखियाँ स्कन्दमाता पार्वतीका पूजन करके लौट आयीं तब विजयाने कौतूहलवश पार्वतीजीसे पूछा—'गिरिजे! ललिताकी सखियोंने तुम्हारी श्रद्धा-पूर्वक पूजा की है; फिर तुम प्रसन्न क्यों नहीं हुईं।'

पार्वतीजीने कहा—सखी विजया! मैं जानती हूँ, वैश्य-पत्नी घरसे बाहर निकलनेमें असमर्थ थी; इसीलिये उसकी सखियाँ आयी थीं। किन्तु मेरी-जैसी देवियाँ दूसरेके हाथकी पूजा स्वीकार नहीं कर सकतीं। उसका पति आ जाता, तो भी उसका कल्याण होता। पत्नी जिस व्रत और पूजनको करनेमें असमर्थ हो, उसे अपने पतिसे ही करा सकती है। इससे उसकी वह पूजा भङ्ग नहीं होती। अथवा अनन्य भावसे पतिसे पूछकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा भी वह पूजा करा सकती थी। पर उसने न तो स्वयं पूजन किया और न पतिसे करवाया। इसलिये उसका गर्भ निष्फल हो जायगा। यदि दोनों पति-पत्नी श्रद्धापूर्वक यहाँ आकर मेरी पूजा करेंगे, तो उन्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।"

वैश्य! तुम्हारे सन्तान न होनेमें यही कारण है, जो तुम्हें बता दिया। जैसे पूर्वकालमें महर्षि वसिष्ठने महाराज दिलीपको सन्तान-प्राप्तिके लिये नन्दिनीकी सेवा बतलायी थी, उसे सुनकर राजाने नन्दिनीको सन्तुष्ट किया था और राजाकी सेवासे प्रसन्न हुई नन्दिनीने उन्हें पुत्र प्रदान किया था, उसी प्रकार तुम भी पत्नीसहित जाकर भगवती पार्वतीकी आराधना करो। इससे वे तुम्हें पुत्र प्रदान करेंगी।

═══★═══

देवल मुनिका शरभको राजा दिलीपकी कथा सुनाना—राजाको नन्दिनीकी सेवासे पुत्रकी प्राप्ति

वैश्यने पूछा—मुने राजा दिलीप कौन थे तथा वह नन्दिनी गौ कौन थी, जिसकी आराधना करके महाराजने पुत्र प्राप्त किया था? इस कथाके सुननेके बाद मैं पत्नीसहित पार्वतीजीकी आराधना करूँगा।

देवलने कहा—महामते! वैवस्वत मनुके वंशमें एक दिलीप नामके श्रेष्ठ राजा हुए हैं। वे धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका पालन करते हुए अपने उत्तम गुणोंके द्वारा समस्त प्रजाको प्रसन्न रखते थे। मगधराजकुमारी

सुदक्षिणा राजा दिलीपकी महारानी थी। महारानीको अवधमें आये बहुत दिन हो गये, किन्तु उनके गर्भसे कोई पुत्र नहीं हुआ। तब कोसलसम्राट् दिलीप अपने मनमें विचार करने लगे कि 'मैंने कोई दोष नहीं किया है और धर्म, अर्थ तथा कामका यथासमय सेवन किया है। फिर मेरे किस दोषके कारण महारानीके गर्भसे सन्तान नहीं हुई? हमारे कुलगुरु वसिष्ठजी भूत और भविष्यके ज्ञाता हैं; वे ही उस दोषको बता सकते हैं, जिससे मुझे पुत्र नहीं हो रहा है।'

ऐसा विचारकर राजा अपनी रानीसहित गुरु वसिष्ठके शुभ आश्रमपर गये। वसिष्ठजी सायंकालका नित्यकर्म समाप्त करके आश्रममें बैठे थे। उसी समय राजा और रानीने वहाँ पहुँचकर उनका दर्शन किया। महाराजने गुरुके और महारानीने गुरुपत्नी अरुन्धती देवीके चरणोंमें प्रणाम किया। वसिष्ठजीने राजाको और अरुन्धती देवीने रानीको आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् पूजनीय पुरुषोंमें श्रेष्ठ महर्षि वसिष्ठने मधुपर्क आदि सामग्रियोंसे अपने नवागत अतिथिका सत्कार करके उनसे कुशल पूछी।

तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठने अपने योगके प्रभावसे नाना प्रकारके भोज्य पदार्थ प्रस्तुत किये और उन्हें राजा दिलीपको भोजन कराया तथा उदारहृदया अरुन्धती देवीने भी महारानी सुदक्षिणाको बड़े आदरके साथ भाँति-भाँतिके व्यञ्जन और पकवान भोजन कराये। जब राजा भोजन करके आरामसे बैठे, तब सदा आत्म-स्वरूपमें स्थित रहनेवाले मुनि उन विनयशील नरेशका हाथ अपने हाथमें लेकर पूछने लगे—'राजन्! जिस राज्यके राजा, मन्त्री, राष्ट्र, किला, खजाना, सेना और मित्रवर्ग— ये सातों अङ्ग एक दूसरेके उप कारक एवं सकुशल हों, जहाँकी प्रजा अपने-अपने धर्मके पालनमें तत्पर रहती हो, जहाँ बन्धुजन और मन्त्री प्रेम और प्रसन्नतासे रहते हों, जहाँके योद्धा अस्त्र-शस्त्रोंके सञ्चालनकी क्रियामें कुशल हों, मित्र वशमें हों और शत्रुओंका नाश हो गया हो तथा जहाँ निवास करनेवाले लोगोंका मन भगवान्‌की आराधनामें लगा रहता हो, ऐसा राज्य जिस राजाके अधिकारमें हो, उसे स्वर्गका राज्य लेकर क्या करना है? राजन्! इक्ष्वाकु-कुलके धार्मिक नरेश पुत्र उत्पन्न करके उनको राज्यका भार सौंपनेके बाद तपके लिये वनमें आया करते थे। तुम तो अभी जवान हो। तुमने अभी पुत्रका मुँह भी नहीं देखा है, अतः तुम तपस्याके अधिकारी नहीं हो। फिर वैसा राज्य छोड़कर इस तपोवनमें किस लिये आये हो?'

राजाने कहा—ब्रह्मन्! मैं तपस्या करनेके लिये यहाँ नहीं आया हूँ। जैसे बाल्यावस्था चली गयी और जवानी आयी है, उसी प्रकार यह भी चली जायगी और वृद्धावस्था आवेगी। वृद्धावस्थाके अनन्तर मृत्यु निश्चित है। गुरुदेव! इस प्रकार यदि मैं पुत्र हुए बिना ही मर जाऊँगा, तो मेरे बाद यह पृथ्वीका राज्य किसके अधिकारमें रहेगा? तपोनिधे! किस दोषके कारण मुझे पुत्र नहीं होता? गुरुदेव! मेरे उस दोषको ध्यानके द्वारा देखकर शीघ्र ही बतानेकी कृपा मुझे कीजिये।

राजाका यह वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठने ध्यान लगाया और सन्तान-बाधाका कारण जानकर इस प्रकार कहा—"नृपश्रेष्ठ! पहलेकी बात है, तुमने देवराज इन्द्रकी सेवासे राजमहलको लौटते समय उतावलीके कारण मार्गमें कल्पवृक्षके नीचे खड़ी कामधेनु गौको प्रदक्षिणा करके प्रणाम नहीं किया। इससे कामधेनुको बड़ा क्रोध हुआ और उसने यह शाप दे दिया कि 'जबतक तू मेरी सन्तानकी सेवा नहीं करेगा, तबतक तुझे पुत्र नहीं होगा।' अतः अब तुम बछड़ेसहित मेरी नन्दिनी गौकी, जो कामधेनुकी पुत्रीकी पुत्री है, इस बहूके साथ आराधना करो। यह नन्दिनी तुम्हें पुत्र प्रदान करेगी।'

इसी समय नन्दिनी गौ तपोवनसे आश्रमपर आ पहुँची। उसे देखकर मुनिवरका मन प्रसन्न हो गया। वे नन्दिनीको दिखाकर राजासे बोले—'राजन्! देखो, स्मरणमात्रसे कल्याण करनेवाली यह नन्दिनी गौ चर्चा होते ही चली आयी; अतः तुम अपनी कार्य-सिद्धिको समीप ही समझो। तपोवनमें इसके पीछे-पीछे रहकर तुम इसकी आराधना करो और आश्रमपर आनेपर रानी सुदक्षिणा इसकी सेवामें लगी रहे। इससे प्रसन्न

होकर यह गौ तुम्हें निश्चय ही पुत्र प्रदान करेगी। महाराज! तुम हाथमें धनुष लेकर वनमें पूरी सावधानीके साथ गौको चराओ, जिससे कोई हिंसक जीव इसपर आक्रमण न कर बैठे।' राजाने 'बहुत अच्छा' कहकर शीघ्र ही गुरुकी आज्ञा शिरोधार्य की।

देवलजी कहते हैं—तदनन्तर प्रातःकाल जब महारानी सुदक्षिणाने फूल आदिसे नन्दिनीकी पूजा कर ली, तब राजा उस धेनुको लेकर वनमें गये। वह गौ जब चलने लगती तो राजा भी छायाकी भाँति उसके पीछे-पीछे चलते थे। जब घास आदि चरने लगती, तब वे भी फल-मूल आदि भक्षण करते थे। जब वह वृक्षोंके नीचे बैठती तो वे भी बैठते और जब पानी पीने लगती तो वे भी स्वयं पानी पीते थे। राजा हरी-हरी घास लाकर गौको देते, उसके शरीरसे डाँस और मच्छरोंको हटाते तथा उसे हाथोंसे सहलाते और खुजलाते थे। इस प्रकार वे गुरुकी कामधेनु गौके सेवनमें लगे रहे। जब शाम हुई, तब वह गौ अपने खुरोंसे उड़े हुए धूलिकणोंद्वारा राजाके शरीरको पवित्र करती हुई आश्रमको लौटी। आश्रमके निकट पहुँचनेपर रानी सुदक्षिणाने आगे बढ़कर नन्दिनीकी अगवानी की और विधिपूर्वक पूजा करके बारंबार उसके चरणोंमें मस्तक झुकाया। फिर गौकी परिक्रमा करके वह हाथ जोड़ उसके आगे खड़ी हो गयी। गौने स्थिर भावसे खड़ी होकर रानीद्वारा श्रद्धापूर्वक की हुई पूजाको स्वीकार किया, तत्पश्चात् उन दोनों दम्पतिके साथ वह आश्रमपर आयी। इस प्रकार दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाले राजा दिलीपके उस गौकी आराधना करते हुए इक्कीस दिन बीत गये। तत्पश्चात् राजाके भक्तिभावकी परीक्षा लेनेके लिये नन्दिनी सुन्दर घासोंसे सुशोभित हिमालयकी कन्दरामें प्रवेश कर गयी। उस समय उसके हृदयमें तनिक भी भय नहीं था। राजा दिलीप हिमालयके सुन्दर शिखरकी शोभा निहार रहे थे। इतनेमें ही एक सिंहने आकर नन्दिनीको बलपूर्वक धर दबाया। राजाको उस सिंहके आनेकी आहटतक नहीं मालूम हुई। सिंहके चङ्गुलमें फँसकर नन्दिनीने दयनीय स्वरमें बड़े जोरसे चीत्कार किया। उसके करुण-क्रन्दनने धनुर्धर राजाके चित्तमें दयाका सञ्चार कर दिया। उन्होंने देखा, गौका मुख आँसुओंसे भीगा हुआ है और उसके ऊपर तीखे दाढ़ों तथा पंजोंवाला सिंह चढ़ा हुआ है। यह दुःखपूर्ण दृश्य देखकर राजा व्यथित हो उठे। उन्होंने सिंहके पंजेमें पड़ी हुई गौको फिरसे देखा और तरकससे एक बाण निकालकर उसे धनुषकी डोरीपर रखा और सिंहका वध करनेके लिये धनुषकी प्रत्यञ्चाको खींचा। इसी समय सिंहने राजाकी ओर देखा। उसकी दृष्टि पड़ते ही उनका सारा शरीर जडवत् हो गया। अब उनमें बाण छोड़नेकी शक्ति न रही। इससे वे बहुत ही विस्मित हुए।

राजाको इस अवस्थामें देखकर सिंहने उन्हें और भी विस्मयमें डालते हुए मनुष्यकी वाणीमें कहा—'राजन्! मैं तुम्हें जानता हूँ। तुम सूर्यवंशमें उत्पन्न राजा दिलीप हो। तुम्हारा शरीर जो जडवत् हो गया है, उसके लिये तुम्हें विस्मय नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस हिमालयमें भगवान् शंकरकी बहुत बड़ी माया फैली है। किसी दूसरे सिंहकी भाँति मुझपर प्रहार करना भी तुम्हारे वशकी बात नहीं है; क्योंकि भगवान् शंकर मेरी पीठपर पैर रखकर अपने वृषभपर आरूढ़ हुआ करते हैं। अच्छा, अब तुम लौट जाओ और समस्त पुरुषार्थोंके साधनभूत अपने शरीरकी रक्षा करो। वीर! इस गौको दैवने मेरे आहारके लिये ही भेजा है।'

सिंहके 'वीर' सम्बोधनसे युक्त वचन सुनकर जडवत् शरीरवाले राजा दिलीपने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—'मृगराज! हमारे गुरु महर्षि वसिष्ठकी यह सम्पूर्ण मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली नन्दिनी नामक धेनु है। गुरुदेवने सन्तान-प्राप्तिके उद्देश्यसे इसकी आराधना करनेके लिये इसे मुझको सौंपा है। मैंने अबतक इसकी भलीभाँति आराधना की है। यह छोटे बछड़ेकी माँ है। तुमने इसे पर्वतकी कन्दरामें पकड़ रखा है। तुम शंकरजीके सेवक हो, इसलिये तुम्हारे हाथसे बलपूर्वक इसको छुड़ाना मेरे लिये असम्भव है। अब मेरा यह शरीर अपकीर्तिसे मलिन हो चुका। मैं इस गौके बदले अपने शरीरको ही तुम्हें समर्पित करता हूँ। ऐसा करनेसे

महर्षिके धार्मिक कृत्योंमें भी कोई बाधा नहीं पड़ेगी और तुम्हारे भोजनका भी काम चल जायगा। साथ ही गो-रक्षाके लिये प्राणत्याग करनेसे मेरी भी उत्तम गति होगी।'

यह सुनकर सिंह मौन हो गया। धर्मज्ञ राजा दिलीप उसके आगे नीचे मुँह किये पड़ गये। वे सिंहके द्वारा होनेवाले दुःसह आघातकी प्रतीक्षा कर रहे थे कि अकस्मात् उनके ऊपर देवेश्वरोंद्वारा की हुई फूलोंकी वृष्टि होने लगी। फिर, 'बेटा ! उठो।' यह वचन सुनकर राजा दिलीप उठकर खड़े हो गये। उस समय उन्होंने माताके समान सामने खड़ी हुई धेनुको ही देखा। वह सिंह नहीं दिखायी दिया। इससे राजाको बड़ा विस्मय हुआ। तब नन्दिनीने नृपश्रेष्ठ दिलीपसे कहा—'राजन् ! मैंने मायासे सिंहका रूप बनाकर तुम्हारी परीक्षा ली है। मुनिके प्रभावसे यमराज भी मुझे पकड़नेका विचार नहीं ला सकता। तुम अपना शरीर देकर भी मेरी रक्षाके लिये तैयार थे। अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे अपना अभीष्ट वर माँगो।'

राजा बोले—माता ! देहधारियोंके अन्तःकरणमें जो बात होती है, वह आप-जैसी देवियोंसे छिपी नहीं रहती। आप तो मेरा मनोरथ जानती ही हैं। मुझे वंशधर पुत्र प्रदान कीजिये।

राजाकी बात सुनकर देवता, पितर, ऋषि और मनुष्य आदि सब भूतोंका मनोरथ सिद्ध करनेवाली नन्दिनीने कहा—'बेटा ! तुम पत्तेके दोनेमें मेरा दूध दुहकर इच्छानुसार पी लो। इससे तुम्हें अस्त्र-शस्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाला वंशधर पुत्र प्राप्त होगा।' यह सुनकर राजाने कामधेनुकी दौहित्री नन्दिनीसे विनयपूर्वक कहा—'माता ! इस समय तो मैं आपके मधुर वचनामृतका पान करके ही तृप्त हूँ, अब आश्रमपर चलकर समस्त धार्मिक क्रियाओंके अनुष्ठानसे बचे हुए आपके प्रसादस्वरूप दूधका ही पान करूँगा।'

राजाका यह वचन सुनकर गौको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने 'साधु-साधु' कहकर राजाका सम्मान किया। तत्पश्चात् वह उनके साथ आश्रमपर गयी। पूर्व दिनकी भाँति उस दिन भी महारानी सुदक्षिणाने आगे आकर उसका पूजन किया। महाराजके मुखको प्रसन्न देखकर रानीको कार्य-सिद्धिका निश्चय हो गया। वह समझ गयी कि जिसके लिये यह यत्न हो रहा था, वह उद्देश्य सफल हो गया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी विधिवत् पूजित हुई गौके साथ अपने गुरु वसिष्ठजीके सामने उपस्थित हुए। उन दोनोंके मुख-कमल प्रसन्नतासे खिले हुए देखकर ज्ञानके भण्डार मुनिवर वसिष्ठजी उन्हें प्रसन्न करते हुए बोले—'राजन् ! मुझे मालूम हो गया कि यह गौ तुम दोनोंपर प्रसन्न है; क्योंकि इस समय तुम्हारे मुखकी कान्ति अपूर्व दिखायी दे रही है। कामधेनु और कल्पवृक्ष—दोनों ही सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं—यह बात प्रसिद्ध है। फिर उसी कामधेनुकी सन्तानकी भलीभाँति आराधना करके यदि कोई सफलमनोरथ हो जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? यह पापरहित कामधेनु तथा देवनदी गङ्गा दूरसे भी नाम लेनेपर समस्त मनोरथोंको पूर्ण करती हैं; फिर श्रद्धापूर्वक निकटसे सेवा करनेपर ये समस्त कामनाएँ पूर्ण करें—इसके लिये तो कहना ही क्या है। राजन् ! आज इस गौकी पूजा करके रानीसहित यहीं रात्रि बिताओ। कल अपने व्रतको विधिपूर्वक समाप्त करके अयोध्यापुरीको जाना।'

देवलजी कहते हैं—वैश्यवर ! इस प्रकार धेनुकी आराधनासे मनोवाञ्छित वर पाकर राजा दिलीप रात्रिमें पत्नीसहित आश्रमपर रहे। फिर प्रातःकाल होनेपर गुरुकी आज्ञा ले वे राजधानीको पधारे। कुछ दिनोंके बाद राजा दिलीपके रघु नामक पुत्र हुआ, जिसके नामसे इस पृथ्वीपर सूर्यवंशकी ख्याति हुई अर्थात् रघुके बाद वह वंश 'रघुवंश' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जो भूतलपर राजा दिलीपकी इस कथाका पाठ करता है, उसे धन-धान्य और पुत्रकी प्राप्ति होती है। शरभ ! तुम भी इस वधूके साथ जा श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्तिके लिये अपनी बुद्धिसे आराधना करके पार्वतीजीको प्रसन्न करो। वे तुम्हें पापरहित, गुणवान् एवं वंशधर पुत्र प्रदान करेंगी।

इस प्रकार शरभसे राजा दिलीपके मनोहर चरित्रका वर्णन करके देवल मुनिने उन्हें अम्बिकाके पूजनकी विधि बतायी। इसके बाद वे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये।

★

शरभको देवीकी आराधनासे पुत्रकी प्राप्ति; शिवशर्माके पूर्वजन्मकी कथाका और निगमोद्बोधकतीर्थकी महिमाका उपसंहार

शिवशर्मा कहते हैं—विष्णुशर्मन्! तदनन्तर शरभ वैश्यने अपनी पत्नीके साथ मन्दिरमें जाकर पुत्रकी कामनासे विधिपूर्वक स्नान करके पुष्प, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक पार्वतीजीका पूजन किया। इस प्रकार सात दिनोंतक श्रद्धापूर्वक पूजन करनेके बाद माता पार्वतीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा—'वैश्य! तुम्हारी सुदृढ़ भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। साधो! तुम जिसके लिये प्रयत्नशील हो, वह पुत्र मैं तुम्हें देती हूँ। अब तुम इन्द्रके खाण्डव वनमें जाओ। विलम्ब न करो। वहाँ परम पुण्यमय इन्द्रप्रस्थ नामक उत्तम तीर्थ है। उस तीर्थमें बृहस्पतिजीके द्वारा स्थापित किया हुआ सर्वकामप्रद निगमोद्बोधकतीर्थ है। उसमें पुत्रकी कामनासे स्नान करो। तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्त होगा।'

देवीके आज्ञानुसार शरभ पत्नीके साथ इस उत्तम तीर्थमें आये और पुत्रकी इच्छासे उन्होंने यहाँ स्नान किया; फिर ब्राह्मणोंको अन्य उपकरणोंसहित सौ गौएँ दान कीं तथा देवता और पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण किया, फिर सात दिन वहाँ रहकर वे घर लौट आये। उसी महीनेमें वैश्यपत्नीको गर्भ रह गया। समयपर मेरा जन्म हुआ। मेरे योग्य होनेपर एक दिन पिताजीने संसारसे विरक्त होकर मुझसे कहा कि 'घर तुम सँभालो; मैं विषय-कामनाओंको छोड़कर श्रीहरिकी भक्ति, तीर्थ-भ्रमण और सत्संगरूपी ओषधिका पान करके संसाररूपी रोगका नाश करूँगा।' इस प्रसंगमें उन्होंने बार-बार विषयासक्तिकी निन्दा और भगवद्भक्तिकी प्रशंसा की।

मैंने श्रीगङ्गाजीकी प्रशंसा करते हुए पिताजीसे प्रार्थना की कि अपने समीप ही श्रीगङ्गाजी बहती हैं, इन्हें छोड़कर आप अन्यत्र न जाइये। पिताजी मेरी बात मानकर घरपर ही रह गये; वे प्रतिदिन तीनों समय श्रीगङ्गाजीमें स्नान करते और पुराणोंकी कथा सुनते रहते। एक दिन उन्होंने इन्द्रप्रस्थ तीर्थकी बड़ी महिमा सुनी और तबसे वे यहाँ आकर मोक्ष, कामनासे निगमोद्बोधकतीर्थका सेवन करने लगे। कुछ दिनों बाद उन्हें भयंकर ज्वर हो आया। तब यह समाचार पाकर मैं भी यहाँ आ गया। मेरे आनेके बाद तीर्थराजके जलमें आधा शरीर रखे हुए पिताजीकी मृत्यु हो गयी। उसी समय स्वयं भगवान् विष्णु यहाँ पधारे और पिताजीको श्रीवैकुण्ठधाममें ले गये।

पिताजीको भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त हुआ देखकर उनका अन्तिम संस्कार करनेके बाद मैं भी भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ मोक्षकी कामनासे यहीं रहने लगा।

शिवशर्माकी यह बात सुनकर उसके पुत्र विष्णुशर्माने कहा—'महान् तीर्थमें निवास करनेपर भी आपको फिरसे जन्म क्यों लेना पड़ा? मुक्ति कैसे नहीं हुई?' इसके उत्तरमें शिवशर्माने कहा कि एक दिन मैं भगवान्‌के ध्यानमें बैठा था। महर्षि दुर्वासा उसी समय पधारे और मुझे चुप देखकर उन्होंने शाप दे दिया कि 'इस जन्ममें तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होगा।' मेरे बहुत गिड़गिड़ानेपर उन्होंने कहा—'अगले जन्ममें ब्राह्मण होकर तुम यहीं मृत्युको प्राप्त होओगे और फिर तुम्हें जन्म नहीं लेना पड़ेगा।' तदनन्तर फिर मैं घर लौट आया और मैंने संसारके समस्त भोगोंको अनित्य मानकर श्रीभगवन्नामकीर्तन और भजन करनेका निश्चय किया। कुछ दिनों बाद गङ्गातटपर मेरी मृत्यु हो गयी। दुर्वासाजीके कथनानुसार वैष्णव ब्राह्मणकुलमें मेरा जन्म हुआ। अब इस उत्तम तीर्थमें मृत्युको प्राप्त होकर मैं श्रीहरिके वैकुण्ठधाममें जाऊँगा।

नारदजी कहते हैं—राजा शिबि! इस प्रकार अपने-अपने पूर्वजन्मके कर्मोंका वर्णन करके वे दोनों पिता-पुत्र श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए यहाँ रहने लगे और अन्तमें दोनोंने भगवान्‌के समान रूप प्राप्त कर लिया।

═══★═══

इन्द्रप्रस्थके द्वारका, कोसला, मधुवन, बदरी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग, काशी, कांची और गोकर्ण आदि तीर्थोंका माहात्म्य

राजा शिबि बोले—मुने ! अब मुझे इन्द्रप्रस्थके सैकड़ों तीर्थोंमेंसे अन्य तीर्थोंका भी माहात्म्य बतलाइये।

नारदजीने कहा—राजन् ! इन्द्रप्रस्थके भीतर यह द्वारका नामक तीर्थ है। इसकी महिमा सुनो। काम्पिल्य नगरमें एक बहुत सुन्दर और संगीतज्ञ ब्राह्मण रहता था। उसके गानकी सुरीली ध्वनिसे नगरकी स्त्रियोंके मनोंमें उसके प्रति पाप-वासनायुक्त बड़ा आकर्षण हो गया। नगरके लोगोंने जाकर राजासे शिकायत की। राजाके पूछनेपर ब्राह्मणने अपनेको निर्दोष बताया और नगरकी स्त्रियोंको उच्छृङ्खल। इतनेमें कुछ स्त्रियाँ भी वहाँ आ गयीं और निर्लज्जतापूर्ण बातें करने लगीं। ब्राह्मणने कामवासनाकी और पति-वञ्चनाकी निन्दा करते हुए पातिव्रतकी महिमा बताकर उन स्त्रियोंको समझाया। वे ब्राह्मणकी बात सुनकर बहुत लज्जित हुईं और परस्पर पापी कामकी निन्दा करती हुई अपने घरोंको लौट आयीं। कुछ समय बाद कारूष देशके राजाने काम्पिल्य नगरपर आक्रमण किया और युद्धमें काम्पिल्यराज मारे गये। उनका नगर लुट गया। शूरवीर मारे गये और नगरकी स्त्रियाँ जहर खाकर मर गयीं। जिन स्त्रियोंने संगीतज्ञ ब्राह्मणके प्रति आकर्षित होनेके पापका प्रायश्चित्त नहीं किया था, वे सब-की-सब बड़ी भयानक राक्षसियाँ होकर भूख-प्याससे पीड़ित रहने लगीं। वाणी और मनके किये हुए एक ही पापसे उन्हें दो जन्मोंतक राक्षसी योनिमें रहना पड़ा। अतएव पापसे डरनेवाली किसी भी स्त्रीको मन-वाणीसे कभी किसी भी पराये प्रतिका सेवन नहीं करना चाहिये। अपना पति रोगी, मूर्ख, दरिद्र और अंधा हो, तो भी उत्तम गतिकी इच्छा रखनेवाली स्त्रियोंको उसका त्याग नहीं करना चाहिये। ये राक्षसियाँ इन्द्र-प्रस्थके द्वारका नामक तीर्थसे जल लेकर पुष्कर जाते हुए ब्राह्मणके कमण्डलुसे जलकी कुछ बूँदें पड़ते ही निष्पाप हो गयीं और भयानक राक्षसी-शरीरसे मुक्त होकर स्वर्गमें चली गयीं।

इसी इन्द्रप्रस्थमें कोसला (अयोध्या) नामक एक तीर्थ है। इसके विषयमें भी एक पुण्यमय उपाख्यान है। चन्द्रभागा नदीके किनारे एक पुरीमें चण्डक नामक एक जुआरी, शराबखोर, व्यभिचारी, डकैत, हत्यारा और मन्दिरोंका सामान चुरानेमें चतुर एक नाई रहता था। उसने एक दिन अपने समीप ही रहनेवाले मुकुन्द नामक धार्मिक और धनवान् ब्राह्मणके घरमें चोरी करनेके लिये प्रवेश करके ब्राह्मणको मार डाला। इससे उनकी स्नेहमयी माता और सती पत्नीको बड़ा दुःख हुआ और वे आर्तस्वरसे विलाप करने लगीं। इतनेमें ही मुकुन्दके गुरु वेदायन नामक संन्यासी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने शरीरकी नश्वरताका वर्णन करते हुए आत्मज्ञानका उपदेश देकर उन लोगोंको समझाया और मुकुन्दका अन्त्येष्टि-संस्कार करवाया। मुकुन्दकी गर्भवती पत्नीको विद्वान् संन्यासीने सती होनेसे रोक दिया। मुकुन्दका छोटा भाई मुकुन्दकी अस्थियोंको लेकर गङ्गाजीमें छोड़नेके लिये चला, चलते-चलते वह इस कोसलातीर्थमें आया। आधी रातको यहाँ अस्थिकी गठरीको एक कुत्तेने उठाकर कोसलाके जलमें फेंक दिया। अस्थियोंके जलमें पड़ते ही मुकुन्द दिव्य विमानपर चढ़कर वहाँ आया और उसने तीर्थके माहात्म्यका वर्णन करते हुए यह बताया कि 'मेरी हड्डियोंके तीर्थमें पड़ते ही मैं नरकसे निकलकर इस उत्तम गतिको प्राप्त हुआ हूँ। नरक मुझे इसीलिये प्राप्त हुआ था कि मैं गुरुद्रोही था। अब मैं उस पापसे मुक्त होकर चौदह इन्द्रोंके कालतक सुखपूर्वक स्वर्गमें निवास करूँगा।' यों कहकर वह देवताके समान सुन्दर शरीरवाला ब्राह्मण देखते-ही-देखते तत्काल स्वर्गको चला गया।

अब उस चण्डक नाईकी कथा सुनो। मुकुन्दकी हत्याका समाचार पाकर राजाने चण्डकको पकड़ मँगवाया और उसे चन्द्रभागासे आठ कोसकी दूरीपर ले जाकर चाण्डालोंके द्वारा मरवा डाला। वह मारवाड़

देशमें काला साँप हुआ। एक ब्राह्मण अपने माता-पिताकी हड्डियाँ गङ्गाजीमें डालनेके लिये एक पेटीमें रखकर लाया था और वह कुछ साधुओंके दलके साथ वहीं आकर ठहरा, जहाँ साँप रहता था। रातको साँप उस पेटीमें घुस गया और पेटीके साथ वह भी कोसला-तटपर आ पहुँचा। यहाँ पेटी खोली गयी तो साँप निकल भागा; पर लोगोंने उसे मार डाला और मरते ही वह देवशरीर प्राप्त कर दिव्य विमानमें बैठकर आ गया। उसने कहा, 'मैं चण्डक नामक नाई था और ब्रह्महत्याके पापसे पाँच लाख वर्षतक नरककी पीड़ा और बीस हजार वर्षतक सर्पयोनि भोगकर आज इस तीर्थमें मरनेके कारण परम उत्तम देवत्वको प्राप्त हुआ हूँ।'

तीर्थका यह प्रत्यक्ष वैभव देखकर उस ब्राह्मणने भी अपने माता-पिताकी हड्डियोंको इसी तीर्थमें डाल दिया। हड्डियोंके पड़ते ही उसके माता-पिता श्रेष्ठ विमानपर बैठकर दिव्यरूप धारण किये यहाँ आये और अपने पुत्रको आशीर्वाद देते हुए स्वर्गको चले गये। फिर वे सब साधु भी इसी कोसलातीर्थमें रह गये और अन्तमें वैकुण्ठको प्राप्त हुए।

नारदजी कहते हैं—यह परमपावन मधुवनतीर्थ है, यहाँ विश्रान्तिघाट नामक तीर्थ है। एक ब्राह्मण पर्णशाला बनाकर यहाँ भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे सकुटुम्ब रहते थे। एक दिन तीर्थमें स्नान करते समय भी उन्हें यही अभिलाषा हुई और तत्काल भगवान्‌ने दर्शन देकर उनको कृतार्थ कर दिया और वे भगवान्‌की स्तुति करके उन्हींके साथ वैकुण्ठलोकको चले गये।

इस मधुवनसे ग्यारह धनुषकी दूरीपर एक बदरिकाश्रमतीर्थ है। मगधदेशमें देवदास नामक एक सत्यवादी, जितेन्द्रिय और धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। वे भगवान्‌के परम भक्त थे। उनके घरमें उत्तमा नामकी गुणवती पतिव्रता पत्नी थी। देवदासके अंगद नामक एक पुत्र और वलया नामकी एक कन्या थी। देवदासने दोनोंका विवाह कर दिया। कन्या विवाहिता होनेपर ससुराल चली गयी और पुत्र अंगदने घरका काम सँभाल लिया। कुछ समय बाद विप्रवर देवदासने अपनी पत्नी उत्तमासे परामर्श करके निश्चय किया कि अब इस वृद्धावस्थामें संसारके समस्त विनाशी पदार्थोंसे मन हटाकर इन्द्रिय-संयमपूर्वक हमलोगोंको भगवान्‌का भजन और तीर्थसेवन करना चाहिये। फिर उन्होंने अपने पुत्र अंगदको बुलाकर भगवान् श्रीहरिकी आराधनाका महत्त्व बतलाते हुए अपना निश्चय सुनाया और पुत्रसे अनुमति पाकर वे दोनों कुछ धन लेकर भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये चल पड़े। रास्तेमें कल्पग्रामके एक सिद्ध पुरुषसे उनकी भेंट हुई। उस सिद्ध पुरुषने इन्द्रप्रस्थके वदरी नामक तीर्थका माहात्म्य सुनाया, जिसमें पूर्वजन्मके व्यभिचार और डकैती आदि पापोंके फलस्वरूप भयंकर भैंसा बने हुए एक राजाका तीर्थमें प्रवेश करते ही उद्धार हो गया था। फिर सिद्ध पुरुषने उन दोनोंसे कहा कि 'यदि तुम भी अपने परमकल्याणकी इच्छा रखते हो, तो वहीं चले जाओ। मैं भी अपने निःस्पृह और मोक्षके इच्छुक बूढ़े पिताको इस वदरिकाश्रम तीर्थमें लानेके लिये घर जा रहा हूँ।' सिद्धकी बात सुनकर धीरबुद्धि ब्राह्मण देवदास तीर्थोंमें घूमते हुए इन्द्रप्रस्थमें आये और यहाँ इस वदरिकाश्रममें भगवान् उन्हें उसी शरीरसे परमधामको ले गये। सिद्ध पुरुषने भी शीघ्र ही अपने पिताको घरसे लाकर उस तीर्थमें नहलवाया। इससे उनको भी भगवान् विष्णुका परमधाम प्राप्त हो गया।

इन्द्रप्रस्थमें हरिद्वार नामक तीर्थ है। इसकी भी बड़ी महिमा है। कुरुक्षेत्रमें नगरसे बाहर कालिङ्ग नामक एक पापी चाण्डाल रहता था। एक बार सूर्यग्रहणके समय आये हुए एक धनी वैश्यके पीछे वह लग गया और कुरुक्षेत्रसे उस वैश्यके लौटनेके समय इसी हरिद्वारमें आधी रातके वक्त उस पापीने वैश्यके खेमेमें चोरी करनेकी चेष्टा की और दो पहरेदारोंको मार डाला। इसी समय वैश्यके एक सेवकने दूरसे बाण मारा, जिससे भागता हुआ वह पापी भी मर गया। तदनन्तर चाण्डाल-द्वारा मारे हुए वैश्यके दोनों पहरेदार और वह चाण्डाल—तीनों देवताओंके द्वारा लाये हुए विमानपर चढ़कर वैश्यसे बोले—'देखो इस तीर्थका माहात्म्य!

यह हरिद्वार पापियोंका भी कल्याण करनेवाला है।' यों कहकर वे स्वर्गलोकको चले गये। दूसरे दिन वैश्यने अपने दोनों पहरेदारोंके शरीरोंका दाह-संस्कार कराकर उनकी हड्डियाँ हरिद्वारतीर्थमें डलवा दीं। इसके परिणामस्वरूप वे दोनों भाग्यवान् स्वर्गसे लौटकर भगवान् विष्णुके परमधाममें चले गये। तदनन्तर बुद्धिमान् वैश्यने अपने घर जाकर सांसारिक कार्योंको धर्मपूर्वक करते हुए भगवान्‌की भक्तिमें मन लगाया और अन्तमें इसी वैकुण्ठधामकी प्राप्ति करानेवाले तीर्थमें आकर मृत्युको प्राप्त हुआ।

अब इन्द्रप्रस्थके पुष्करतीर्थका माहात्म्य सुनो। विदर्भ नगरमें मालव नामक एक ब्रह्मवेत्ता, शान्त, विद्वान्, हरिभक्त, देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और समस्त भूत-प्राणियोंके पोषक ब्राह्मण रहते थे। वे एक समय जब बृहस्पति सिंहराशिपर थे, दान करनेके लिये दस हजार स्वर्णमुद्राएँ साथ लेकर गोदावरी नदीमें स्नान करनेको चले। उन्होंने आधे रुपये अपने पुण्डरीक नामक भानजेको देनेका विचार किया और आधे अन्यान्य श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको। गोदावरीके तटपर पहुँचनेके बाद मालवके बुलाये हुए उनके भानजे पुण्डरीक भी वहीं आ गये और उन्होंने अपना आधा धन पुण्डरीकको दे दिया। पुण्यात्मा पुण्डरीकने अपने धनमेंसे चौथाई भाग प्रसन्नतापूर्वक श्रोत्रिय ब्राह्मणोंको दिया। इसके बाद वे अपने मामा मालवसे उपदेश, आशीर्वाद और सन्देश प्राप्त करके अपने घरकी ओर लौटे और कुछ दिनों बाद इस कल्याणप्रद तीर्थमें आये। यहाँ आकर अपने छोटे भाई भरतको खूनसे लथपथ और अन्तिम श्वास लेते हुए पृथ्वीपर पड़ा देखा। कुछ ही देरमें पीड़ासे छटपटाकर उसने प्राण त्याग दिये। उसी समय आकाशसे एक विमान उतरा और दिव्य देह धारण करके भरत उसपर जा बैठा। फिर उस समय भरतने भाई पुण्डरीकसे कहा—'भाईजी! इस समय मैं तुम्हें मारकर मामाका दिया हुआ धन छीननेके लिये आया था और तुम्हारी ही घातमें था। परन्तु आधी रातके समय बाहरसे आये हुए व्यापारियोंके सेवकोंने मुझे चोर समझकर मार दिया। पर इस पुष्करतीर्थके प्रसादसे मैंने दिव्य देह प्राप्त कर ली। मैं एक बार बाजारमें किसी अनाथ बालकको मरा देखकर उसे उठाकर गङ्गाजीके सुन्दर तटपर ले गया था और कफन आदिसे ढककर उसका दाह-संस्कार किया था। उसी पुण्यसे मुझे इस तीर्थकी प्राप्ति हुई।'

धर्मात्मा पुण्डरीकने भाई भरतकी सद्गति देखकर अपने हृदयमें अनुमान किया कि यह तीर्थ मनःकामना पूर्ण करनेवाला है। फिर उन्होंने 'माघभर भगवान् विष्णु अपने साक्षात् स्वरूपसे मेरे घरमें पधारकर निवास करें' इस कामनासे पुष्करतीर्थमें स्नान किया। तदनन्तर घर लौटकर पौषकी पूर्णिमाके दिन घरको भलीभाँति सजाकर उत्सव किया, ब्राह्मणभोजन करवाया और भगवान्‌का गुणगान करते हुए जागरण किया। भगवान्‌के पधारनेकी प्रतीक्षा तो थी ही। दूसरे दिन सचमुच ही भगवान् उसके घर पधार गये। पुण्डरीकने आनन्दमग्न होकर आसन, अर्घ्य आदिके द्वारा भगवान्‌की पूजा की और फिर स्तवन करके माघभर घरमें निवास करनेके लिये उनसे प्रार्थना की। भगवान् उसके द्वारा विविध भाँतिसे पूजित होकर पूरे माघभर उसके घरमें रहे और अन्तमें उसको सर्वतीर्थशिरोमणि इन्द्रप्रस्थके पुष्करतीर्थमें लाकर स्नान कराया। बस, उसी समय पुण्डरीकके शरीरसे एक दिव्य ज्योति निकली और वह भगवान् गोविन्दके चरणोंमें समा गयी।

अब इन्द्रप्रस्थके प्रयागकी महिमा सुनो। नर्मदा नदीके किनारे माहिष्मतीपुरीमें एक रूप-यौवन-सम्पन्ना, नाच-गानमें निपुण मोहिनी नामकी वेश्या रहती थी। धनके लोभमें उसने अनेकों महापाप किये थे। वृद्धावस्था आनेपर उसको सुबुद्धि आयी और उसने अपना धन बगीचे, पोखरे, बावली, कुआँ, देवमन्दिर और धर्मशाला बनवानेमें लगाया। यात्रियोंके लिये भोजन और जगह-जगह जलकी भी व्यवस्था की। एक बार वह बीमार पड़ी। अपना सारा धन ब्राह्मणोंको देना चाहा, पर ब्राह्मणोंके न लेनेपर उसने एक भाग अपने दासियोंको और दूसरा परदेशी यात्रियोंको दे दिया। स्वयं निर्धन हो गयी। इस समय जरद्गवा नामक मोहिनीकी

एक सखी उसकी सेवा करती थी। भाग्यवश कुछ दिनोंमें वह अच्छी हो गयी, पर निर्धनताकी अवस्थामें जरद्गवाके घर रहनेमें उसे बड़ा संकोच हुआ और वह घरसे निकल गयी।

एक दिन मोहिनी वनके मार्गसे जा रही थी। चोरोंने उसके पास धन समझकर लोभसे उसे मार दिया। पर जब धन नहीं मिला, तब वे उसे वनमें ही छोड़कर चल दिये। अभी मोहिनीकी साँस चल रही थी, उसी समय एक वानप्रस्थी महात्मा इस प्रयागके जलको कमण्डलुमें लिये वहाँ आ पहुँचे और तीर्थकी महिमा कहते हुए उन्होंने मोहिनीके मुखमें वह जल डाल दिया। उस समय मोहिनीके मनमें किसी राजाकी महारानी बननेकी इच्छा थी। मुँहमें प्रयागका जल पड़ते ही मोहिनी मर गयी और दूसरे जन्ममें वह द्रविड़ देशमें राजा वीरवर्माकी हेमाङ्गीनामक महारानी हुई। राजमन्त्रीकी लड़की कला उसकी सखी थी। एक दिन हेमाङ्गी कलाके घर गयी और कलाने एक सोनेकी पेटीमें उसे एक विचित्र पुस्तक दिखायी, जिसमें अवतारोंके चित्रोंके साथ-साथ सारे भूगोलका मानचित्र था। मानचित्र देखते-देखते हेमाङ्गीकी दृष्टि इस प्रयागतीर्थपर पड़ी और उसे तुरंत अपने पूर्वजन्मका स्मरण हो आया। तदनन्तर उसने घर लौटकर अपने पतिसे पूर्व-जन्मकी सारी घटनाएँ सुनाकर प्रार्थना की कि 'नाथ ! मैं उस तीर्थ-जलके प्रसादसे ही आपके घरकी रानी बनी हूँ। इस समय आपके साथ चलकर इन्द्रप्रस्थके मनोवाञ्छा पूर्ण करनेवाले तीर्थराज प्रयागका दर्शन करना चाहती हूँ। जब मैं उस तीर्थराजके लिये चल पड़ूँगी, तभी अन्न-जल ग्रहण करूँगी।' राजाके पूरा विश्वास न करनेपर उसी समय आकाशवाणीने कहा—'राजन् ! तुम्हारी पत्नीका कथन सत्य है। इन्द्रप्रस्थके परम पवित्र प्रयागतीर्थमें जाकर तुम स्नान करो। इससे तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जायँगी।' तब तो राजा आकाशवाणीको नमस्कार करके मन्त्रीको सारा भार सौंप हेमाङ्गीके साथ चल पड़े और कुछ दिनोंमें इन्द्रप्रस्थके प्रयागमें आ पहुँचे। 'इस प्रयागस्नानके पुण्यसे हमपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हों' इस इच्छासे तीर्थमें स्नान करते ही भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी क्रमशः गरुड़ और हंसपर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। राजा वीरवर्माने मस्तक झुकाकर भगवान्के दोनों स्वरूपोंको प्रणाम किया और एकाग्रचित्तसे उनकी विलक्षण स्तुति की। फिर हेमाङ्गीने उनका स्तवन करके मनोरथ पूर्ण करनेकी प्रार्थना की। भगवान् विष्णु और ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर हेमाङ्गीकी बड़ी प्रशंसा की और फिर दोनोंको अपने साथ सत्यलोकमें ले गये।

अब इन्द्रप्रस्थके काशीतीर्थका परम पवित्र तथा यश और आयुको बढ़ानेवाला माहात्म्य सुनो। सत्ययुगमें इन्द्रप्रस्थके काशीतीर्थमें शिंशपाके वृक्षपर एक कौआ रहता था और उसके नीचे खोखलेमें एक बहुत बड़ा साँप। एक दिन आँधी आयी और शिंशपाका वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा। उसके नीचे दबकर साँप और कौआ मर गये। फिर तो शिंशपा, कौआ और साँप—तीनों ही दिव्यरूप धारण करके तीन विमानोंपर सवार होकर भगवान्के वैकुण्ठधाममें चले गये। पूर्वजन्ममें वह कौआ कुरुजाङ्गल देशमें श्रवण नामक ब्राह्मण था और एकान्तमें अकेला मिठाइयाँ उड़ाया करता था। वह कालसर्प उसी ब्राह्मणका भाई कुरण्टक था, जो बड़ा नास्तिक, निर्दयी, वेदमार्गको तोड़नेवाला और देवताओंका निन्दक था और वह शिंशपा पेड़ बनी हुई श्रवणकी स्त्री कुण्ठा थी, जो दोनोंके ही दोषोंसे युक्त थी। इसीलिये वह स्थावर बनकर दोनोंका ही आश्रय हुई। इन दोनों भाइयोंने एक दिन किसी पथिककी कुएँमें पड़ी हुई गौको बाहर निकाल दिया था और घर आनेपर कुण्ठाने 'बहुत अच्छा' कहकर उनके कार्यका समर्थन किया था। इसी पुण्यके प्रभावसे इन्द्रप्रस्थके तटपर स्थित काशीमें दुर्लभ मृत्युको पाकर वे तीनों वैकुण्ठको गये।

अब इन्द्रप्रस्थके गोकर्णतीर्थकी महिमा सुनो। यह शिवजीका परम पवित्र क्षेत्र है। इसमें मरनेवाला मनुष्य निस्सन्देह शिवस्वरूप हो जाता है। गोकर्णतीर्थमें मरे हुए मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता।

इन्द्रप्रस्थके किनारे शिवकाञ्चीतीर्थ है। इसमें मरनेवाला भी पुनर्जन्मको नहीं प्राप्त होता। यहाँ

श्रीमहादेवजीने भगवान् विष्णुकी आराधना करके भक्तराजकी पदवी पायी है। हेरम्ब नामक एक धर्मात्मा ब्राह्मण बड़े शिवभक्त थे। वे शिवतीर्थोंमें घूमते हुए यहाँ शिवकाञ्चीमें आये और यहीं उनके प्राण छूटे। वे भगवान् शिवजीके लोकमें जाकर पश्चात् वैकुण्ठको प्राप्त हुए।

इसके सिवा इन्द्रप्रस्थमें कपिलाश्रम, केदार और प्रभास आदि और भी बहुत-से तीर्थ हैं। उनका भी बड़ा माहात्म्य है।

सौभरि कहते हैं—राजा शिबिसे यों कहकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी भगवान्के गुणोंका गान करते हुए वहाँसे चले गये। राजा शिबिने मुनिके मुखसे इन्द्रप्रस्थका यह वैभव सुनकर अपनेको कृतार्थ माना और विधिपूर्वक स्नान करके अपनी धार्मिक क्रियाएँ पूरी कीं। तदनन्तर वे अपने नगरको चले गये। राजा युधिष्ठिर! यह मैंने यमुना-तीरवर्ती इन्द्रप्रस्थके लोक-पावन माहात्म्यका तुमसे वर्णन किया है।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार सौभरि मुनिसे इन्द्रप्रस्थका माहात्म्य सुनकर राजा युधिष्ठिर हस्तिनापुरको गये और वहाँसे अपने दुर्योधन आदि भाइयोंको साथ ले राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छासे पुण्यमय इन्द्रप्रस्थमें आये। राजाने अपने कुलदेवता भगवान् गोविन्दको द्वारकासे बुलाकर राजसूय यज्ञके द्वारा उनका यजन किया। 'यह तीर्थ मुक्ति देनेवाला है; अतः यहाँ मुँहसे कुत्सित वचन कहनेपर भी शिशुपालकी मुक्ति हो जायगी।' यह सोचकर ही श्रीहरिने वहाँ शिशुपालका वध किया। शिशुपालने भी उस तीर्थमें मरनेके कारण समस्त पुरुषार्थोंके दाता भगवान् श्रीकृष्णका सायुज्य प्राप्त कर लिया। जहाँ शिशुपाल मारा गया और जहाँ राजा युधिष्ठिरने यज्ञ किया, उस स्थानपर भीमसेनने अपनी गदासे एक विस्तृत कुण्ड बना दिया था। वह पावन कुण्ड इस पृथ्वीपर भीमकुण्डके नामसे विख्यात हुआ। वह यमुनाके दक्षिण एक कोसके भूभागमें है। इन्द्रप्रस्थकी यमुनामें स्नान करनेसे जो फल होता है, वही फल उस कुण्डमें स्नान करनेसे मिल जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो मनुष्य प्रतिवर्ष इस तीर्थकी परिक्रमा करता है, वह क्षेत्रापराधजनित दोषों और पातकोंसे मुक्त हो जाता है। जो भगवान्के नामोंका जप करते हुए इस तीर्थकी प्रदक्षिणा करता है, उसे पग-पगपर कपिलादानका फल मिलता है। जो मनुष्य चैत्र कृष्णा चतुर्दशीको इन्द्रप्रस्थकी प्रदक्षिणा करता है, वह धन्य एवं सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

वसिष्ठजीका दिलीपसे तथा भृगुजीका विद्याधरसे माघस्नानकी महिमा बताना तथा माघस्नानसे विद्याधरकी कुरूपताका दूर होना

ऋषियोंने कहा—लोमहर्षण सूतजी! अब हमें माघका माहात्म्य सुनाइये, जिसको सुननेसे लोगोंका महान् संशय दूर हो जाय।

सूतजी बोले—मुनिवरो! आपलोगोंको साधुवाद देता हूँ। आप भगवान् श्रीकृष्णके शरणागत भक्त हैं; इसीलिये प्रसन्नता और भक्तिके साथ आपलोग बार-बार भगवान्की कथाएँ पूछा करते हैं। मैं आपके कथनानुसार माघ-माहात्म्यका वर्णन करूँगा; जो अरुणोदयकालमें स्नान करके इसका श्रवण करते हैं, उनके पुण्यकी वृद्धि और पापका नाश होता है। एक समयकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ महाराज दिलीपने यज्ञका अनुष्ठान पूरा करके ऋषियोंद्वारा मङ्गल-विधान होनेके पश्चात् अवभृथ-स्नान किया। उस समय सम्पूर्ण नगरनिवासियोंने उनका बड़ा सम्मान किया। तदनन्तर राजा अयोध्यामें रहकर प्रजाजनोंकी रक्षा करने लगे। वे समय-समयपर वसिष्ठजीकी अनुमति लेकर प्रजावर्गका पालन किया करते थे। एक दिन उन्होंने वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! आपके प्रसादसे मैंने आचार, दण्डनीति, नाना प्रकारके राजधर्म, चारों वर्णों और आश्रमोंके कर्म, दान, दानकी विधि, यज्ञ, यज्ञके विधान, अनेकों व्रत, उनके

उद्यापन तथा भगवान् विष्णुकी आराधना आदिके सम्बन्धमें बहुत कुछ सुना है। अब माघस्नानका फल सुननेकी इच्छा है। मुने! जिस विधिसे इसको करना चाहिये, वह मुझे बताइये।'

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें माघस्नानका फल बतलाता हूँ, सुनो। जो लोग होम, यज्ञ तथा इष्टापूर्त कर्मोंके बिना ही उत्तम गति प्राप्त करना चाहते हों, वे माघमें प्रातःकाल बाहरके जलमें स्नान करें। जो गौ, भूमि, तिल, वस्त्र, सुवर्ण और धान्य आदि वस्तुओंका दान किये बिना ही स्वर्गलोकमें जाना चाहते हों, वे माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करें। जो तीन-तीन राततक उपवास, कृच्छ्र और पराक आदि व्रतोंके द्वारा अपने शरीरको सुखाये बिना ही स्वर्ग पाना चाहते हों, उन्हें भी माघमें सदा प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। वैशाखमें जल और अन्नका दान उत्तम है, कार्तिकमें तपस्या और पूजाकी प्रधानता है तथा माघमें जप, होम और दान—ये तीन बातें विशेष हैं। जिन लोगोंने माघमें प्रातःस्नान, नाना प्रकारका दान और भगवान् विष्णुका स्तोत्र-पाठ किया है, वे ही दिव्यधाममें आनन्दपूर्वक निवास करते हैं। प्रिय वस्तुके त्याग और नियमोंके पालनसे माघ मास सदा धर्मका साधक होता है और अधर्मकी जड़ काट देता है। यदि सकामभावसे माघस्नान किया जाय तो उससे मनोवाञ्छित फलकी सिद्धि होती है और निष्कामभावसे स्नान आदि करनेपर वह मोक्ष देनेवाला होता है। निरन्तर दान करनेवाले, वनमें रहकर तपस्या करनेवाले और सदा अतिथि-सत्कारमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंको जो दिव्यलोक प्राप्त होते हैं, वे ही माघस्नान करनेवालोंको भी मिलते हैं। अन्य पुण्योंसे स्वर्गमें गये हुए मनुष्य पुण्य समाप्त होनेपर वहाँसे लौट आते हैं; किन्तु माघस्नान करनेवाले मानव कभी वहाँसे लौटकर नहीं आते। माघस्नानसे बढ़कर कोई पवित्र और पापनाशक व्रत नहीं है। इससे बढ़कर कोई तप और इससे बढ़कर कोई महत्त्वपूर्ण साधन नहीं है। यही परम हितकारक और तत्काल पापोंका नाश करनेवाला है। महर्षि भृगुने मणिपर्वतपर विद्याधरसे कहा था—'जो मनुष्य माघके महीनेमें, जब उषःकालकी लालिमा बहुत अधिक हो, गाँवसे बाहर नदी या पोखरेमें नित्य स्नान करता है, वह पिता और माताके कुलकी सात-सात पीढ़ियोंका उद्धार करके स्वयं देवताओंके समान शरीर धारण कर स्वर्गलोकमें चला जाता है।'

दिलीपने पूछा—ब्रह्मन्! ब्रह्मर्षि भृगुने किस समय मणिपर्वतपर विद्याधरको धर्मोपदेश किया था—बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! प्राचीन कालमें एक समय बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई। इससे सारी प्रजा उद्विग्न और दुर्बल होकर दसों दिशाओंमें चली गयी। उस समय हिमालय और विन्ध्यपर्वतके बीचका प्रदेश खाली हो गया। स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और वेदाध्ययन—सब बंद हो गये। समस्त लोकमें उपद्रव होने लगा। धर्मका तो लोप हो ही गया था, प्रजाका भी अभाव हो गया। भूमण्डलपर फल, मूल, अन्न और पानीकी बिलकुल कमी हो गयी। उन दिनों नाना प्रकारके वृक्षोंसे आच्छादित नर्मदा नदीके रमणीय तटपर महर्षि भृगुका आश्रम था। वे उस आश्रमसे शिष्योंसहित निकलकर हिमालय पर्वतकी शरणमें गये। वहाँ कैलासगिरिके पश्चिममें मणिकूट नामका पर्वत है, जो सोने और रत्नोंका ही बना हुआ है। उस परम रमणीय श्रेष्ठ पर्वतको देखकर अकाल-पीड़ित महर्षि भृगुका मन बहुत प्रसन्न हुआ और उन्होंने वहीं अपना आश्रम बना लिया। उस मनोहर शैलपर वनों और उपवनोंमें रहते हुए सदाचारी भृगुजीने दीर्घकालतक भारी तपस्या की।

इस प्रकार जब ब्रह्मर्षि भृगुजी वहाँ अपने आश्रमपर निवास करते थे, एक समय एक विद्याधर अपनी पत्नीके साथ पर्वतसे नीचे उतरा। वे दोनों मुनिके पास आये और उन्हें प्रणाम करके अत्यन्त दुःखी हो एक ओर खड़े हो गये। उन्हें इस अवस्थामें देख ब्रह्मर्षिने मधुर वाणीसे पूछा—'विद्याधर! प्रसन्नताके साथ बताओ, तुम दोनों इतने दुःखी क्यों हो?'

विद्याधरने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मेरे दुःखका

कारण सुनिये। मैं पुण्यका फल पाकर देवलोकमें गया। वहाँ देवताका शरीर, दिव्य नारीका सुख और दिव्य भोगोंका अनुभव प्राप्त करके भी मेरा मुँह बाघका-सा हो गया। न जाने यह किस दुष्कर्मका फल उपस्थित हुआ है। यहीं सोच-सोचकर मेरे मनको कभी शान्ति नहीं मिलती। ब्रह्मन्! एक और भी कारण है, जिससे मेरा मन व्याकुल हो रहा है। यह मेरी कल्याणमयी पत्नी बड़ी मधुरभाषिणी तथा सुन्दरी है। स्वर्गलोकमें शील, उदारता, गुणसमूह, रूप और यौवनकी सम्पत्तिद्वारा इसकी समानता करनेवाली एक भी स्त्री नहीं है। कहाँ तो यह देवमुखी सुन्दरी रमणी और कहाँ मेरे-जैसा व्याघ्रमुख पुरुष? ब्रह्मन्! मैं इसी बातकी चिन्ता करके मन-ही-मन सदा जलता रहता हूँ।

भृगुजीने कहा—विद्याधरश्रेष्ठ! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा जो अनुचित कर्म हुआ है, वह सुनो। निषिद्ध कर्म कितना ही छोटा क्यों न हो, परिणाममें वह भयङ्कर हो जाता है। तुमने पूर्वजन्ममें माघके महीनेमें एकादशीको उपवास करके द्वादशीके दिन शरीरमें तेल लगा लिया था। इसीसे तुम्हारा मुँह व्याघ्रके समान हो गया। पुण्यमयी एकादशीका व्रत करके द्वादशीको तेलका सेवन करनेसे पूर्वकालमें इलानन्दन पुरूरवाको भी कुरूप शरीरकी प्राप्ति हुई थी। वे अपने शरीरको कुरूप देख उसके दुःखसे बहुत दुःखी हुए और गिरिराज हिमालयपर जाकर गङ्गाजीके किनारे स्नान आदिसे पवित्र हो प्रसन्नतापूर्वक कुशासनपर बैठे। राजाने अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌का ध्यान करना आरम्भ किया। उन्होंने ध्यानमें देखा—भगवान्‌का श्रीविग्रह नूतन नील मेघके समान श्याम है। उनके नेत्र कमलदलके समान विशाल हैं। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। उनका श्रीअङ्ग पीताम्बरसे ढका है। वक्षःस्थलमें कौस्तुभमणि अपना प्रकाश फैला रही है तथा वे गलेमें वनमाला धारण किये हुए हैं। इस प्रकार श्रीहरिका चिन्तन करते हुए राजाने प्राणवायुके मार्गको भीतर ही रोक लिया और नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाये कुण्डलिनीके मुखको ऊपर उठाकर स्वयं सुषुम्णा नाडीमें स्थित हो गये। इस तरह एक मासतक निराहार रहकर उन्होंने दुष्कर तपस्या की।

इस थोड़े दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान् संतुष्ट हो गये। उन्होंने राजाके सात जन्मोंकी आराधनाका स्मरण करके उन्हें स्वयं प्रकट हो प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस दिन माघ शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथि थी, सूर्य मकर-राशिपर स्थित थे। भगवान् वासुदेवने बड़ी प्रसन्नताके साथ चक्रवर्ती नरेश पुरूरवापर शङ्खका जल छोड़ा और उन्हें अत्यन्त सुन्दर एवं कमनीय रूप प्रदान दिया। वह रूप इतना मनोहर था, जिससे देवलोककी नायिका उर्वशी भी आकृष्ट हो गयी और उसने पुरूरवाको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषा की। इस प्रकार राजा पुरूरवा भगवान्‌से वरदान पाकर कृतकृत्य हो अपने नगरमें लौट आये। विद्याधर! कर्मकी गति ऐसी ही है। इसे जानकर भी तुम क्यों खिन्न होते हो? यदि तुम अपने मुखकी कुरूपता दूर करना चाहते हो तो मेरे कहनेसे शीघ्र ही मणिकूट-नदीके जलमें माघस्नान करो। वह प्राचीन पापोंका नाश करनेवाला है। तुम्हारे भाग्यसे माघ बिलकुल निकट है। आजसे पाँच दिनके बाद ही माघमास आरम्भ हो जायगा। तुम पौषके शुक्लपक्षकी एकादशीसे ही नीचे वेदीपर सोया करो और एक महीनेतक निराहार रहकर तीनों समय स्नान करो। भोगोंको त्यागकर जितेन्द्रियभावसे तीनों काल भगवान् विष्णुकी पूजा करते रहो। विद्याधरश्रेष्ठ! जिस दिन माघ शुक्ला एकादशी आयेगी, उस दिनतक तुम्हारे सारे पाप जलकर भस्म हो जायँगे। फिर द्वादशीके पवित्र दिनको मैं मन्त्रपूत कल्याणमय जलसे अभिषेक करके तुम्हारा मुख कामदेवके समान सुन्दर कर दूँगा। फिर देवमुख होकर इस सुन्दरीके साथ तुम सुखपूर्वक क्रीड़ा करते रहना।

विद्याधर! माघके स्नानसे विपत्तिका नाश होता है और माघके स्नानसे पाप नष्ट हो जाते हैं। माघ सब व्रतोंसे बढ़कर है तथा यह सब प्रकारके दानोंका फल प्रदान करनेवाला है। पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथुदक, अविमुक्तक्षेत्र (काशी), प्रयाग तथा गङ्गा-

सागर-संगममें दस वर्षोंतक शौच-सन्तोषादि नियमोंका पालन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह माघके महीनेमें तीन दिनोंतक प्रातःस्नान करनेसे ही मिल जाता है। जिनके मनमें दीर्घकालतक स्वर्गलोकके भोग भोगनेकी अभिलाषा हो, उन्हें सूर्यके मकर-राशिपर रहते समय जहाँ कहीं भी जल मिले, प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। आयु, आरोग्य, रूप, सौभाग्य एवं उत्तम गुणोंमें जिनकी रुचि हो, उन्हें सूर्यके मकर-राशिपर रहनेतक प्रातःकाल अवश्य स्नान करना चाहिये। जो नरकसे डरते हैं और दरिद्रताके महासागरसे जिन्हें त्रास होता है, उन्हें सर्वथा प्रयत्नपूर्वक माघमासमें प्रातःकाल स्नान करना चाहिये। देवश्रेष्ठ ! दरिद्रता, पाप और दुर्भाग्यरूपी कीचड़को धोनेके लिये माघस्नानके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। अन्य कर्मोंको यदि अश्रद्धापूर्वक किया जाय तो वे बहुत थोड़ा फल देते हैं; किन्तु माघस्नान यदि श्रद्धाके बिना भी विधिपूर्वक किया जाय तो वह पूरा-पूरा फल देता है। गाँवसे बाहर नदी या पोखरेके जलमें जहाँ कहीं भी निष्काम या सकामभावसे माघस्नान करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखता। जैसे चन्द्रमा कृष्णपक्षमें क्षीण होता और शुक्लपक्षमें बढ़ता है, उसी प्रकार माघमासमें स्नान करनेपर पाप क्षीण होता और पुण्यराशि बढ़ती है। जैसे समुद्रमें नाना प्रकारके रत्न उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार माघस्नानसे आयु, धन और स्त्री आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोवाञ्छित भोग देती हैं, उसी प्रकार माघस्नान सब मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तपस्याको, त्रेतामें ज्ञानको, द्वापरमें भगवान्‌के पूजनको और कलियुगमें दानको उत्तम माना गया है; परन्तु माघका स्नान सभी युगोंमें श्रेष्ठ समझा गया है।* सबके लिये, समस्त वर्णों और आश्रमोंके लिये माघका स्नान धर्मकी धारावाहिक वृष्टि करता है।

भृगुजीके ये वचन सुनकर वह विद्याधर उसी आश्रमपर ठहर गया और माघमासमें भृगुजीके साथ ही उसने विधिपूर्वक पर्वतीय नदीके कुण्डमें पत्नीसहित स्नान किया। महर्षि भृगुके अनुग्रहसे विद्याधरने अपना मनोरथ प्राप्त कर लिया। फिर वह देवमुख होकर मणिपर्वतपर आनन्दपूर्वक रहने लगा। भृगुजी उसपर कृपा करके बहुत प्रसन्न हुए और पुनः विन्ध्यपर्वतपर अपने आश्रममें चले आये। उस विद्याधरका मणिमय पर्वतकी नदीमें माघस्नान करनेमात्रसे कामदेवके समान मुख हो गया। तथा भृगुजी भी नियम समाप्त करके शिष्योंसहित विन्ध्याचल पर्वतकी घाटीमें उतरकर नर्मदा-तटपर आये।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन् ! महर्षि भृगुके द्वारा विद्याधरके प्रति कहा हुआ यह माघ-माहात्म्य सम्पूर्ण भुवनका सार है तथा नाना प्रकारके फलोंसे विचित्र जान पड़ता है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह देवताकी भाँति समस्त सुन्दर भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

★

मृगशृङ्ग मुनिका भगवान्‌से वरदान प्राप्त करके अपने घर लौटना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन् ! मैं माघ मासका प्रभाव बतलाता हूँ, सुनो। इसे भक्तिपूर्वक सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। प्राचीन रथन्तर कल्पके सत्ययुगमें कुत्स नामके एक ऋषि थे, जो ब्रह्माजीके पुत्र थे। वे बड़े ही तेजस्वी और निष्पाप थे। उन्होंने कर्दम ऋषिकी सुन्दरी कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके गर्भसे मुनिके वत्स नामक पुत्र हुआ, जो वंशको बढ़ानेवाला था। वत्सकी पाँच वर्षकी अवस्था होनेपर पिताने उनका उपनयन-संस्कार करके उन्हें गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। अब वे ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए भृगुकुलमें निवास करने लगे। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल अग्निहोत्र, तीनों समय स्नान और भिक्षाके

* कृते तपः परं ज्ञानं त्रेतायां यजनं तथा। द्वापरे च कलौ दानं माघः सर्वयुगेषु च॥ (२२१।८०)

अन्नका भोजन करते थे। इन्द्रियोंको काबूमें रखते, काला मृगचर्म धारण करते और सदा स्वाध्यायमें संलग्न रहते थे। पैरसे लेकर शिखातक लंबा पलाशका डंडा, जिसमें कोई छेद न हो, लिये रहते थे। उनके कटिभागमें मूँजकी मेखला शोभा पाती थी। हाथमें सदा कमण्डलु धारण करते, स्वच्छ कौपीन पहनते, शुद्ध भावसे रहते और स्वच्छ यज्ञोपवीत धारण करते थे। उनका मस्तक समिधाओंकी भस्मसे सुशोभित था। वे सबके नयनोंको प्रिय जान पड़ते थे। प्रतिदिन माता, पिता, गुरु, आचार्य, अन्यान्य बड़े-बूढ़ों, संन्यासियों तथा ब्रह्मवादियोंको प्रणाम करते थे। बुद्धिमान् वत्स ब्रह्मयज्ञमें तत्पर रहते और सदा शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया करते थे। वे हाथमें पवित्री धारण करके देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करते थे। फूल, चन्दन और गन्ध आदिको कभी हाथसे छूते भी नहीं थे। मौन होकर भोजन करते। मधु, पिण्याक और खारा नमक नहीं खाते थे। खड़ाऊँ नहीं पहनते थे तथा सवारीपर नहीं चढ़ते। शीशेमें मुँह नहीं देखते। दन्तधावन, ताम्बूल और पगड़ी आदिसे परहेज रखते थे। नीला, लाल तथा पीला वस्त्र, खाट, आभूषण तथा और भी जो-जो वस्तुएँ ब्रह्मचर्य-आश्रमके प्रतिकूल बतायी गयी हैं, उन सबका वे स्पर्शतक नहीं करते थे; सदा शान्तभावसे सदाचारमें ही तत्पर रहते थे।

ऐसे आचारवान् और विशेषतः ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले वत्स मुनि सूर्यके मकर-राशिपर रहते माघ मासमें भक्तिपूर्वक प्रातःस्नान करते थे। वे उस समय विशेष रूपसे शरीरकी शुद्धि करते थे। आकाशमें जब इने-गिने तारे रह जाते थे, उस समय—ब्रह्मवेलामें तो वे नित्यस्नान करते थे और फिर जब आधे सूर्य निकल आते, उस समय भी माघका स्नान करते थे। वे मन-ही-मन अपने भाग्यकी सराहना करने लगे—'अहो! इस पश्चिमवाहिनी कावेरी नदीमें स्नानका अवसर मिलना प्रायः मनुष्योंके लिये कठिन है, तो भी मैंने मकरार्कमें यहाँ स्नान किया। वास्तवमें मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ। समुद्रमें मिली हुई जितनी नदियाँ हैं, उन सबका प्रवाह जहाँ पश्चिम या उत्तरकी ओर है, उस स्थानका प्रयागसे भी अधिक महत्त्व बतलाया गया है। मैंने अपने पूर्वपुण्योंके प्रभावसे आज कावेरीका पश्चिमगामी प्रवाह प्राप्त किया है। वास्तवमें मैं कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ, कृतार्थ हूँ।' इस प्रकार सोचते हुए वे प्रसन्न होकर कावेरीके जलमें तीनों काल स्नान करते थे। उन्होंने कावेरीके पश्चिमगामी प्रवाहमें तीन सालतक माघ-स्नान किया। उसके पुण्यसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। वे ममता और कामनासे रहित हो गये। तदनन्तर माता, पिता और गुरुकी आज्ञा लेकर वे सर्वपापनाशक कल्याणतीर्थमें आ गये। उस सरोवरमें भी एक मासतक माघस्नान करके ब्रह्मचारी वत्स मुनि तपस्या करने लगे। राजन्! इस प्रकार उन्हें उत्तम तपस्या करते देख भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर उनके आगे प्रत्यक्ष प्रकट हुए और बोले—'महाप्राज्ञ मृगशृङ्ग! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ।' यों कहकर भगवान् पुरुषोत्तमने उनके ब्रह्मरन्ध्र (मस्तक) का स्पर्श किया।

तब वत्स मुनि समाधिसे विरत हो जाग उठे और उन्होंने अपने सामने ही भगवान् विष्णुको उपस्थित देखा। वे सहस्र सूर्योंके समान तेजस्वी कौस्तुभमणिरूप आभूषणसे अत्यन्त भासमान दिखायी देते थे। तब मुनिने बड़े वेगसे उठकर भगवान्‌को प्रणाम किया और बड़े भावसे सुन्दर स्तुति की।

भगवान् हृषीकेशकी स्तुति और नमस्कार करके वत्स मुनि अपने मस्तकपर हाथ जोड़े चुपचाप भगवान्‌के सामने खड़े हो गये। उस समय उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह रहे थे और सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया था।

तब श्रीभगवान्‌ने कहा—मृगशृङ्ग! तुम्हारी इस स्तुतिसे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। माघ मासमें इस सरोवरके जलमें जो तुमने स्नान और तप किये हैं, इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। मुने! तुम निरन्तर कष्ट सहते-सहते थक गये हो। दक्षिणाओंसहित यज्ञ, दान, अन्यान्य नियम तथा यमोंके पालनसे भी मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना माघके स्नानसे होता है। पहले तुम मुझसे वर माँगो। फिर मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान

करूँगा। मृगशृङ्ग! तुम मेरी प्रसन्नताके लिये मैं जो आज्ञा दूँ, उसका पालन करो। इस समय तुम्हारे ब्रह्मचर्यसे जिस प्रकार ऋषियोंको सन्तोष हुआ है, उसी प्रकार तुम यज्ञ करके देवताओंको और सन्तान उत्पन्न करके पितरोंको संतुष्ट करो। मेरे सन्तोषके लिये ये दोनों कार्य तुम्हें सर्वथा करने चाहिये। अगले जन्ममें तुम ब्रह्माजीके पुत्र महाज्ञानी ऋभुनामक जीवन्मुक्त ब्राह्मण होओगे और निदाघको वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञानका उपदेश करके पुनः परमधामको प्राप्त होओगे।

मृगशृङ्ग बोले—देवदेव! सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित जगन्नाथ! आप यहाँ सदा निवास करें और सबको सब प्रकारके भोग प्रदान करते रहें। आप सदा सब जीवोंको सब तरहकी सम्पत्ति प्रदान करें। भगवन्! यदि मैं आपका कृपापात्र हूँ तो यही एक वर, जिसे निवेदन कर चुका हूँ, देनेकी कृपा करें। कमलनयन! चरणोंमें पड़े हुए भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले अच्युत! आप मुझपर प्रसन्न होइये। शरणागतवत्सल! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।

भगवान् विष्णु बोले—मृगशृङ्ग! एवमस्तु, मैं सदा यहाँ निवास करूँगा। जो लोग यहाँ मेरा पूजन करेंगे, उन्हें सब प्रकारकी सम्पत्ति हाथ लगेगी। विशेषतः जब सूर्य मकर-राशिपर हों, उस समय इस सरोवरमें स्नान करनेवाले मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो मेरे परमपदको प्राप्त होंगे। व्यतीपात योगमें, अयन प्रारम्भ होनेके दिन, संक्रान्तिके समय, विषुव योगमें, पूर्णिमा और अमावास्या तिथिको तथा चन्द्रग्रहण और सूर्य-ग्रहणके अवसरपर यहाँ स्नान करके यथाशक्ति दान देनेसे और तुम्हारे मुखसे निकले हुए इस स्तोत्रका मेरे सामने पाठ करनेसे मनुष्य मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होगा।

भगवान् गोविन्दके यों कहनेपर उन ब्राह्मणकुमारने पुनः प्रणाम किया और भक्तोंके अधीन रहनेवाले श्रीहरिसे फिर एक प्रश्न किया— 'कृपानिधे! देवेश्वर! मैं तो कुत्स मुनिका पुत्र वत्स हूँ; फिर मुझे आपने मृगशृङ्ग कहकर क्यों सम्बोधित किया?'

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! इस कल्याण-सरोवरके तटपर जब तुम तपस्या करनेमें लगे थे, उस समय जो मृग प्रतिदिन यहाँ पानी पीने आते थे, वे निर्भय होकर तुम्हारे शरीरमें अपने सींग रगड़ा करते थे। इसीसे श्रेष्ठ महर्षि तुम्हें मृगशृङ्ग कहते हैं। आजसे सब लोग तुम्हें मृगशृङ्ग ही कहेंगे।

यों कहकर सबको सब कुछ प्रदान करनेवाले भगवान् सर्वेश्वर वहाँ रहने लगे। तदनन्तर मृगशृङ्ग मुनिने भगवान्‌का पूजन किया और उनकी आज्ञा लेकर वे उस पर्वतसे चले गये। संसारका उपकार करनेके लिये उन्होंने गृहस्थ-धर्मको स्वीकर करनेका निश्चय किया और अपने अन्तःकरणमें निरन्तर वे आदिपुरुष कमलनयन भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे। अपनी जन्मभूमि भोजराजनगरमें घर आकर उन्होंने माता और पिताको नमस्कार करके अपना सारा समाचार कह सुनाया। माता-पिताके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगाकर बारंबार उसका मस्तक सूँघा और प्रेमपूर्वक अभिनन्दन किया। वत्स अपने गुरुको प्रणाम करके फिर स्वाध्यायमें लग गये। पिता, माता और गुरु—तीनोंकी प्रतिदिन सेवा करते हुए उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया और गुरुकी आज्ञा ले विधिपूर्वक व्रतस्नान और उत्सर्गका कार्य पूर्ण किया। तत्पश्चात् महामना मृगशृङ्ग अपने पितासे इस प्रकार बोले—'तात! पुत्रकी उत्पत्तिके लिये पिता और माताको जो क्लेश सहने पड़ते हैं, उनका बदला सौ वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता; अतः पुत्रको उचित है कि वह माता-पिता तथा गुरुका भी सदा ही प्रिय करे। इन तीनोंके अत्यन्त सन्तुष्ट होनेपर सब तपस्या पूर्ण हो जाती है। इन तीनोंकी सेवाको ही सबसे बड़ा तप कहा गया है। इनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके जो कुछ भी किया जाता है, वह कभी सिद्ध नहीं होता। विद्वान् पुरुष इन्हीं तीनोंकी आराधना करके तीनों लोकोंपर विजय पाता है। जिससे इन तीनोंको संतोष हो, वही मनुष्योंके लिये चारों पुरुषार्थ कहा गया है; इसके सिवा जो कुछ भी है, वह उपधर्म कहलाता है। मनुष्यको उचित है कि वह अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पितासे क्रमशः

तीन, दो या एक वेदका अध्ययन करनेके पश्चात् गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करे। यदि पत्नी अपने वशमें रहे तो गृहस्थाश्रमसे बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है। पति और पत्नीकी अनुकूलता धर्म, अर्थ और कामकी सिद्धिका प्रधान कारण है। यदि स्त्री अनुकूल हो तो स्वर्गसे क्या लेना है—घर ही स्वर्ग हो जाता है और यदि पत्नी विपरीत स्वभावकी मिल गयी तो नरकमें जानेकी क्या आवश्यकता है—यहीं नरकका दृश्य उपस्थित हो जाता है। सुखके लिये गृहस्थाश्रम स्वीकार किया जाता है; किन्तु वह सुख पत्नीके अधीन है। यदि पत्नी विनयशील हो तो धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति निश्चित है।

जो गृहकार्यमें चतुर, सन्तानवती, पतिव्रता, प्रिय वचन बोलनेवाली और पतिके अधीन रहनेवाली है—ऐसी उपर्युक्त गुणोंसे युक्त नारी स्त्रीके रूपमें साक्षात् लक्ष्मी है। इसलिये अपने समान वर्णकी उत्तम लक्षणोंवाली भार्यासे विवाह करना चाहिये। जो पिताके गोत्र अथवा माताके सपिण्डवर्गमें उत्पन्न न हुई हो, वही स्त्री विवाह करनेयोग्य होती है तथा उसीसे द्विजोंके धर्मकी वृद्धि होती है।

जिसको कोई रोग न हो, जिसके भाई हो, जो अवस्था और कदमें अपनेसे कुछ छोटी हो, जिसका मुख सौम्य हो तथा जो मधुर भाषण करनेवाली हो, ऐसी भार्याके साथ द्विजको विवाह करना चाहिये। जिसका नाम पर्वत, नक्षत्र, वृक्ष, नदी, सर्प, पक्षी तथा नौकरोंके नामपर न रखा गया हो, जिसके नाममें कोमलता हो, ऐसी कन्यासे बुद्धिमान् पुरुषको विवाह करना चाहिये।

इस प्रकार उत्तम लक्षणोंकी परीक्षा करके ही किसी कन्याके साथ विवाह करना उचित है। उत्तम लक्षण और अच्छे आचरणवाली कन्या पतिकी आयु बढ़ाती है, अतः पिताजी! ऐसी भार्या कहाँ मिलेगी?

कुत्सने कहा—परम बुद्धिमान् मृगशृङ्ग! इसके लिये कोई विचार न करो। तुम्हारे-जैसे सदाचारी पुरुषके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। जो सदाचारहीन, आलसी, माघ-स्नान न करनेवाले, अतिथि-पूजासे दूर रहनेवाले, एकादशीको उपवास न करनेवाले, महादेवजीकी भक्तिसे शून्य, माता-पितामें भक्ति न रखनेवाले, गुरुको सन्तोष न देनेवाले, गौओंकी सेवासे विमुख, ब्राह्मणोंका हित न चाहनेवाले, यज्ञ, होम और श्राद्ध न करनेवाले, दूसरोंको न देकर अकेले खानेवाले, दान, धर्म और शीलसे रहित तथा अग्निहोत्र न करके भोजन करनेवाले हैं, ऐसे लोगोंके लिये ही वैसी स्त्रियाँ दुर्लभ हैं। बेटा! प्रातःकाल स्नान करनेपर माघका महीना विद्या, निर्मल कीर्ति, आरोग्य, आयु, अक्षय धन, समस्त पापोंसे मुक्ति तथा इन्द्रलोक प्रदान करता है। बेटा! माघ मास सौभाग्य, सदाचार, सन्तान-वृद्धि, सत्सङ्ग, सत्य, उदारभाव, ख्याति, शूरता और बल— सब कुछ देता है। कहाँतक गिनाऊँ, वह क्या-क्या नहीं देता। पुण्यात्मन्! कमलके समान नेत्रोंवाले भगवान् विष्णु माघस्नान करनेसे तुमपर बहुत प्रसन्न हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! पिताके ये सत्य वचन सुनकर मृगशृङ्ग मुनि मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पिताके चरणोंमें मस्तक झुकाकर पुनः प्रणाम किया और दिन-रात वे अपने हृदयमें श्रीहरिका ही चिन्तन करने लगे।

★

मृगशृङ्ग मुनिके द्वारा माघके पुण्यसे एक हाथीका उद्धार तथा मरी हुई कन्याओंका जीवित होना

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! भोजपुरमें उचथ्य नामक एक श्रेष्ठ मुनि थे। उनके कमलके समान नेत्रोंवाली एक कन्या थी, जिसका नाम सुवृत्ता था। वह माघ मासमें प्रतिदिन सबेरे ही उठकर अपनी कुमारी सखियोंके साथ कावेरी नदीके पश्चिमगामी प्रवाहमें स्नान किया करती थी। स्नानके समय वह इस प्रकार प्रार्थना करती—'देवि! तुम सह्य-पर्वतकी घाटीसे निकलकर श्रीरङ्गक्षेत्रमें प्रवाहित होती हो। श्रीकावेरी! तुम्हें

नमस्कार है। मेरे पापोंका नाश करो। मरुद्वृधे! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। माघ मासमें जो लोग तुम्हारे जलमें स्नान करते हैं, उनके बड़े-बड़े पापोंको हर लेती हो। माता! मुझे मङ्गल प्रदान करो। पश्चिमवाहिनी कावेरी! मुझे पति, धन, पुत्र, सम्पूर्ण मनोरथ और पातिव्रत्य-पालनकी शक्ति दो।' यों कहकर सुवृत्ता कावेरीको प्रणाम करती और जब कुछ-कुछ सूर्यका उदय होने लगता, उसी समय वह नित्यस्नान किया करती थी। इस प्रकार उसने तीन वर्षोंतक माघस्नान किया। उसका उत्तम चरित्र तथा गृहकार्यमें चतुरता देखकर पिताका मन बड़ा प्रसन्न रहता था। वे सोचने लगे—अपनी कन्याका विवाह किससे करूँ? इसी बीचमें कुत्स मुनिने अपने पुत्र ब्रह्मचारी वत्सका विवाह करनेके लिये उचथ्यकी सुमुखी कन्या सुवृत्ताका वरण करनेका विचार किया। सुवृत्ता बड़ी सुन्दरी थी। उसमें अनेक शुभ लक्षण थे। वह बाहर-भीतरसे शुद्ध तथा नीरोग थी। उस समय उसकी कहीं तुलना नहीं थी। वत्स मुनिने उससे विवाह करनेकी अभिलाषा की।

एक दिन सुवृत्ता अपनी तीन सखियोंके साथ माघस्नान करनेके लिये अरुणोदयके समय कावेरीके तटपर आयी। उसी समय एक भयानक जंगली हाथी पानीसे निकला। उसे देखकर सुवृत्ता आदि कन्याएँ भयसे व्याकुल होकर भागीं। हाथी भी बहुत दूरतक उनके पीछे-पीछे गया। चारों कन्याएँ वेगसे दौड़नेके कारण हाँफने लगीं और तिनकोंसे ढँके हुए एक बहुत बड़े जलशून्य कुएँमें गिर पड़ीं। कुएँमें गिरते ही उनके प्राण निकल गये। जब वे घर लौटकर नहीं आयीं, तब माता-पिता उनकी खोज करते हुए इधर-उधर भटकने लगे। उन्होंने वन-वनमें घूमकर झाड़ी-झाड़ी छान डाली। आगे जानेपर उन्हें एक गहरा कुआँ दिखायी दिया, जो तिनकोंसे ढँका होनेके कारण प्रायः दृष्टिमें नहीं आता था। उन्होंने देखा, वे कमललोचना कन्याएँ कुएँके भीतर निर्जीव होकर पड़ी हैं। उनकी माताएँ कन्याओंके पास चली गयीं और शोकग्रस्त हो बारंबार उन्हें छातीसे लगाकर 'विमले! कमले! सुवृत्ते! सुरसे!' आदि नाम ले-लेकर विलाप करने लगीं।

कन्याओंकी माताएँ जब इस प्रकार जोर-जोरसे क्रन्दन कर रही थीं, उसी समय तपस्याके भण्डार, कान्तिमान्, धीर तथा जितेन्द्रिय, श्रीमान् मृगशृङ्ग मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने मन-ही-मन एक उपाय सोचा और सोचकर उन्हें आश्वासन देते हुए कहा— 'जबतक इन कमलनयनी कन्याओंको जीवित न कर दूँ, तबतक आपलोग इनके सुन्दर शरीरकी रक्षा करें।' यों कहकर मुनि परम पावन कावेरीके तटपर गये और कण्ठभर पानीमें खड़े हो, मुख एवं भुजाओंको ऊपर उठाये सूर्यदेवकी ओर देखते हुए मृत्यु देवताकी स्तुति करने लगे। इसी बीचमें एक समय वही हाथी पानीके भीतरसे उठा और उन ब्राह्मण मुनिको मारनेके लिये सूँड़ उठाये बड़े वेगसे उनके समीप आया। हाथीका क्रोध देखकर भी मुनिवर मृगशृङ्ग जलसे विचलित नहीं हुए, अपितु, चित्रलिखित-से चुपचाप खड़े रहे। पास आनेपर एक ही क्षणमें उस गजराजका क्रोध चला गया। वह बिलकुल शान्त हो गया। उसने मुनिको सूँड़से पकड़कर अपनी पीठपर बिठा लिया। मुनि उसके भावको समझ गये। उसके कंधेपर सुखपूर्वक बैठनेसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ और जप समाप्त करके हाथमें जल ले 'मैंने आठ दिनोंके माघस्नानका पुण्य तुम्हें दे दिया।' यों कहकर उन्होंने शीघ्र ही वह जल हाथीके मस्तकपर छोड़ दिया। इससे गजराज पापरहित हो गया और मानो इस बातको स्वयं भी समझते हुए उसने प्रलयकालीन मेघके समान बड़े जोरसे गर्जना की। उसकी इस गर्जनासे भी मुनिके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कृपापूर्वक उस गजराजकी ओर देखकर उसके ऊपर अपना हाथ फेरा। मुनिके हाथका स्पर्श होनेसे उसने हाथीका शरीर त्याग दिया और आकाशमें देवताकी भाँति दिव्यरूप धारण किये दृष्टिगोचर हुआ। उस रूपमें उसे देखकर मुनीश्वरको बड़ा विस्मय हुआ।

तब दिव्यरूपधारी उस जीवने कहा—मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त निन्दित एवं पापमयी पशुयोनिसे मुक्त कर दिया। दयानिधे!

अब मैं अपना सारा वृत्तान्त बतलाता हूँ, सुनिये। पूर्वकालकी बात है, नैषध नगरमें विश्वगुप्त नामसे प्रसिद्ध परम धर्मात्मा तथा स्वधर्मपालनमें तत्पर एक वैश्य रहते थे। मैं उन्हींका पुत्र था। मेरा नाम धर्मगुप्त था। स्वाध्याय, यजन, दान, सूद लेना, पशुपालन, गोरक्षा, खेती और व्यापार—यही सब मेरा काम था। द्विज-श्रेष्ठ! मैं [अनुचित] काम और दम्भसे सदा दूर ही रहा। सत्य बोलता और किसीकी निन्दा नहीं करता था। इन्द्रियोंको काबूमें रखकर अपनी स्त्रीसे ही अनुराग करता था और परायी स्त्रियोंके सम्पर्कसे बचा रहता था। मुझमें राग, भय और क्रोध नहीं थे। लोभ और मत्सरको भी मैंने छोड़ रखा था। दान देता, यज्ञ करता, देवताओंके प्रति भक्ति रखता और गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितमें संलग्न रहता था। सदा धर्म, अर्थ और कामका सेवन करता तथा व्यापारके काममें कभी किसीको धोखा नहीं देता था। ब्राह्मणलोग जब यज्ञ करते, उस समय उन्हें बिना माँगे ही धन देता था। समयपर श्राद्ध तथा सम्पूर्ण देवताओंका पूजन करता था। अनेक प्रकारके सुगन्धित द्रव्य, बहुत-से पशु, दूध-दही, मट्ठा, गोबर, घास, लकड़ी, फल, मूल, नमक, जायफल, पीपल, अन्न, सागके बीज, नाना प्रकारके वस्त्र, धातु, ईखके रससे तैयार होनेवाली वस्तुएँ और अनेक प्रकारके रस बेचा करता था। जो दूसरोंको देता था, वह तौलमें कम नहीं रहता था और जो औरोंसे लेता, वह अधिक नहीं होता था। जिन रसोंके बेचनेसे पाप होता है, उनको छोड़कर अन्य रसोंको बेचा करता था। बेचनेमें छल-कपटसे काम नहीं लेता था। जो मनुष्य साधु पुरुषोंको व्यापारमें ठगता है, वह घोर नरकमें पड़ता है तथा उसका धन भी नष्ट हो जाता है। मैं सब देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओंकी प्रतिदिन सेवा करता और पाखण्डी लोगोंसे दूर रहता था। ब्रह्मन्! किसी भी प्राणीसे मन, वाणी और क्रियाद्वारा ईर्ष्या किये बिना ही जो जीविका चलायी जाती है, वही परम धर्म है। मैं ऐसी ही जीविकासे जीवन-निर्वाह करता था।

इस प्रकार धर्मके मार्गसे चलकर मैंने एक करोड़ स्वर्णमुद्राओंका उपार्जन किया। मेरे एक ही पुत्र था, जो सम्पूर्ण गुणोंमें श्रेष्ठ था। मैंने अपने सारे धनको दो भागोंमें बाँटकर आधा तो पुत्रको दे दिया और आधा अपने लिये रखा। अपने हिस्सेका धन लेकर पोखरा खुदवाया। नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त बगीचा लगवाया। अनेक मण्डपोंसे सुशोभित देवमन्दिर बनवाया। मरुभूमिके मार्गोंमें पौंसले और कुएँ बनवाये तथा ठहरनेके लिये धर्मशालाएँ तैयार करायीं। कन्यादान, गोदान और भूमिदान किये। तिल, चावल, गेहूँ और मूँग आदिका भी दान किया। उड़द, धान, तिल और घी आदिका दान तो मैंने बहुत बार किया।

तदनन्तर रसके चमत्कारोंका वर्णन करनेवाला कोई कापालिक मेरे पास आया और कौतूहल पैदा करनेके लिये कुछ करामात दिखाकर उसने मुझे अपने मायाजालमें फँसाकर ठग लिया। उसकी करतूतें देखकर उसके प्रति मेरा विश्वास बढ़ गया और रसवाद—चाँदी, सोना आदि बनानेके नामपर मेरा सारा धन बरबाद हो गया। उस कापालिकने मुझे भ्रममें डालकर बहुत दिनोंतक भटकाया। उसके लिये धन दे-देकर मैं दरिद्र हो गया। माघका महीना आया और मैंने दस दिनोंतक सूर्योदयके समय महानदीमें स्नान किया; किन्तु बुढ़ापेके कारण इससे अधिक समयतक मैं स्नानका नियम चलानेमें असमर्थ हो गया। इसी बीचमें मेरा पुत्र देशान्तरमें चला गया। घोड़े मर गये। खेती नष्ट हो गयी और बेटेने वेश्या रख ली। फिर भी भाई-बन्धु यह सोचकर कि यह बेचारा बूढ़ा, धर्मात्मा और पुण्यवान् है, धर्मके ही उद्देश्यसे मुझे कुछ सूखा अन्न और भात दे दिया करते थे। अब मैं अपना धर्म बेचकर कुटुम्बका पालन-पोषण करने लगा, केवल माघस्नानके फलको नहीं बेच सका। एक दिन जिह्वाकी लोलुपताके कारण दूसरेके घरपर खूब गलेतक ठूँसकर मिठाई खा ली। इससे अजीर्ण हो गया। अजीर्णसे अतिसारकी बीमारी हुई और उससे मेरी मृत्यु हो गयी। केवल माघस्नानके प्रभावसे मैं एक मन्वन्तरतक स्वर्गमें देवराज इन्द्रके पास रहा और पुण्यकी समाप्ति हो जानेपर हाथीकी योनिमें उत्पन्न हुआ।

जो लोग धर्म बेचते हैं, वे हाथी ही होते हैं। विप्रवर! इस समय आपने हाथीकी योनिसे भी मेरा उद्धार कर दिया। मुझे स्वर्गकी प्राप्ति होनेके लिये आपने पुण्यदान किया है। मुनीश्वर! मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है।

यों कहकर वह स्वर्गको चला गया। सच है, सत्पुरुषोंका सङ्ग उत्तम गति प्रदान करनेवाला होता है। इस प्रकार महानुभाव मृगशृङ्ग वैश्यको हाथीकी योनिसे मुक्त करके स्वयं गलेतक पानीमें खड़े हो सूर्यनन्दन यमराजकी स्तुति करने लगे—

ॐ यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह नामोंसे पुकारे जानेवाले भगवान् यमराजको नमस्कार है।

जिनका मुख दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होता है और टेढ़ी भौंहोंसे युक्त आँखें क्रूरतापूर्ण जान पड़ती हैं, जिनके शरीरमें ऊपरकी ओर उठे हुए बड़े-बड़े रोम हैं तथा ओठ भी बहुत लम्बे दिखायी देते हैं, ऐसे आप यमराजको नमस्कार है।

आपके अनेक भुजाएँ हैं, अनन्त नख हैं तथा कज्जलगिरिके समान काला शरीर और भयङ्कर रूप है। आपको नमस्कार है।

भगवन्! आपका वेष बड़ा भयानक है। आप पापियोंको भय देते, कालदण्डसे धमकाते और सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र धारण करते हैं। बहुत बड़ा भैंसा आपका वाहन है। आपके नेत्र दहकते हुए अँगारोंके समान जान पड़ते हैं। आप महान् हैं। मेरु पर्वतके समान आपका विशाल रूप है। आप लाल माला और वस्त्र धारण करते हैं। आपको नमस्कार है।

कल्पान्तके मेघोंकी भाँति जिनकी गम्भीर गर्जना और प्रलयकालीन वायुके समान प्रचण्ड वेग है, जो समुद्रको भी पी जाते, सम्पूर्ण जगत्को ग्रास बना लेते, पर्वतोंको भी चबा जाते और मुखसे आग उगलते हैं, उन भगवान् यमराजको नमस्कार है।

भगवन्! अत्यन्त घोर और अग्निके समान तेजस्वी कालरूप मृत्यु तथा बहुत-से रोग आपके पास सेवामें उपस्थित रहते हैं। आपको नमस्कार है।

आप भयानक मारी और अत्यन्त भयङ्कर महामारीके साथ रहते हैं। पापिष्ठोंके लिये आपका ऐसा ही स्वरूप है। आपको बारम्बार नमस्कार है।

वास्तवमें तो आपका मुख खिले हुए कमलके समान प्रसन्नतासे पूर्ण है। आपके नेत्रोंमें करुणा भरी है। आप पितृस्वरूप हैं। आपको नमस्कार है। आपके केश अत्यन्त कोमल हैं और नेत्र भौंहोंकी रेखासे सुशोभित हैं। मुखके ऊपर मूँछें बड़ी सुन्दर जान पड़ती हैं। पके हुए बिम्बफलके समान लाल ओठ आपकी शोभा बढ़ाते हैं। आप दो भुजाओंसे युक्त, सुवर्णके समान कान्तिमान् और सदा प्रसन्न रहनेवाले हैं। आपको नमस्कार है।

आप सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण करनेवाले तथा श्वेत छत्रसे सुशोभित हैं। आपके दोनों ओर दो दिव्य नारियाँ खड़ी होकर हाथोंमें सुन्दर चँवर लिये डुला रही हैं। आपको नमस्कार है।

गलेके रत्नमय हारसे आप बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। रत्नमय कुण्डल आपके कानोंकी शोभा बढ़ाते हैं। आपके हार और भुजबंद भी रत्नके ही हैं तथा आपके किरीटमें नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। आपकी कृपादृष्टि सीमाका अतिक्रमण कर जाती है। आप मित्रभावसे सबको देखते हैं। सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ आपको समृद्धिशाली बनाती हैं। आप सौभाग्यके परम आश्रय हैं तथा धर्म और अधर्मके ज्ञानमें निपुण सभासद् आपकी उपासना करते हैं। आपको नमस्कार है।

संयमनीपुरीकी सभामें शुभ्र रूपवाले धर्म, शुभ-लक्षण सत्य, चन्द्रमाके समान मनोहर रूपधारी शम, दूधके समान उज्ज्वल दम तथा वर्णाश्रमजनित विशुद्ध आचार आपके पास मूर्तिमान् होकर सेवामें उपस्थित रहते हैं; आपको नमस्कार है।

आप साधुओंपर सदा स्नेह रखते, वाणीसे उनमें प्राणोंका सञ्चार करते, वचनोंसे सन्तोष देते और गुणोंसे

उन्हें सर्वस्व समर्पण करते हैं। सज्जन पुरुषोंपर सदा सन्तुष्ट रहनेवाले आप धर्मराजको बारम्बार नमस्कार है।

जो सबके काल होते हुए भी शुभकर्म करनेवाले पुरुषोंपर कृपा करते हैं, जो पुण्यात्माओंके हितैषी, सत्पुरुषोंके संगी, संयमनीपुरीके स्वामी, धर्मात्मा तथा धर्मका अनुष्ठान करनेवालोंके प्रिय हैं, उन धर्मराजको नमस्कार है।

जिसकी पीठपर लटके हुए घण्टोंकी ध्वनिसे सारी दिशाएँ गूँज उठती हैं तथा जो ऊँचे-ऊँचे सींगों और फुंकारोंके कारण अत्यन्त भीषण प्रतीत होता है, ऐसे महान् भैंसेपर जो विराजमान रहते हैं तथा जिनकी आठ बड़ी-बड़ी भुजाएँ क्रमशः नाराच, शक्ति, मुसल, खड्ग, गदा, त्रिशूल, पाश और अङ्कुशसे सुशोभित हैं, उन भगवान् यमराजको प्रणाम है।

जो चौदह सत्पुरुषोंके साथ बैठकर जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका भलीभाँति विचार करते हैं, साक्षियों-द्वारा अनुमोदन कराकर उन्हें दण्ड देते हैं तथा सम्पूर्ण विश्वको शान्त रखते हैं, उन दक्षिण दिशाके स्वामी शान्तस्वरूप यमराजको नमस्कार है।

जो कल्याणस्वरूप, भयहारी, शौच-संतोष आदि नियमोंमें स्थित मनुष्योंके नेत्रोंको प्रिय लगनेवाले, सावर्णि, शनैश्चर और वैवस्वत मनु—इन तीनोंकी माताके सौतेले पुत्र, विवस्वान् (सूर्यदेव) के आत्मज तथा सदाचारी मनुष्योंको वर देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

भगवन्! जब आपके दूत पापी जीवोंको दृढ़ता-पूर्वक बाँधकर आपके सामने उपस्थित करते हैं, तब आप उन्हें यह आदेश देते हैं कि 'इन पापियोंको अनेक घोर नरकोंमें गिराकर छेद डालो, टुकड़े-टुकड़े कर दो, जला दो, सुखा डालो, पीस दो।' इस प्रकारकी बातें कहते हुए यमुनाजीके ज्येष्ठ भ्राता आप यमराजको मेरा प्रणाम है।

जब आप अन्तकरूप धारण करते हैं, उस समय आपके गोलाकार नेत्र किनारे-किनारेसे लाल दिखायी देते हैं। आप भीमरूप होकर भय प्रदान करते हैं। टेढ़ी भौंहोंके कारण आपका मुख वक्र जान पड़ता है। आपके शरीरका रंग उस समय नीला हो जाता है तथा आप अपने निर्दयी दूतोंके द्वारा शास्त्रोक्त नियमोंका उल्लङ्घन करनेवाले पापियोंको खूब कड़ाईके साथ धमकाते हैं। आपको सर्वदा नमस्कार है।

जिन्होंने पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान किया है तथा जो सदा ही अपने कर्मोंके पालनमें संलग्न रहे हैं, ऐसे लोगोंको दूरसे ही विमानपर आते देख आप दोनों हाथ जोड़े आगे बढ़कर उनका स्वागत करते हैं। आपके नेत्र कमलके समान विशाल हैं तथा आप माता संज्ञाके सुयोग्य पुत्र हैं। आपको मेरा प्रणाम है।

जो सम्पूर्ण विश्वसे उत्कृष्ट, निर्मल, विद्वान्, जगत्के पालक, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवके प्रिय, सबके शुभाशुभ कर्मोंके उत्तम साक्षी तथा समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको नमस्कार है।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके मृगशृङ्गने उदारता और करुणाके भण्डार तथा दक्षिण दिशाके स्वामी भगवान् यमका ध्यान करते हुए उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इससे भगवान् यमको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे महान् तेजस्वी रूप धारण किये मुनिके सामने प्रकट हुए। उस समय उनका मुखकमल प्रसन्नतासे खिला हुआ था और किरीट, हार, केयूर तथा मणिमय कुण्डल धारण करनेवाले अनेक सेवक चारों ओरसे उनकी सेवामें उपस्थित थे।

यमराजने कहा—मुने! मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ और तुम्हें वर देनेके लिये यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो। मैं तुम्हें अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा।

उनकी बात सुनकर मुनीश्वर मृगशृङ्ग उठकर खड़े हो गये। यमराजको सामने उपस्थित देख उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उनके नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। कृतान्तको पाकर उन्होंने अपनेको सफलमनोरथ समझा और हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! इन कन्याओंको प्राणदान दीजिये। मैं आपसे बारम्बार यही याचना करता हूँ।' मुनिका कथन सुनकर धर्मराजने अदृश्यरूपसे उन

ब्राह्मण-कन्याओंको उनके शरीरमें भेज दिया। फिर तो सोकर उठे हुएकी भाँति वे कन्याएँ उठ खड़ी हुईं। अपनी बालिकाओंको सचेत होते देख माताओंको बड़ा हर्ष हुआ। कन्याएँ पहलेकी ही भाँति अपना-अपना वस्त्र पहनकर माताओंको बुला उनके साथ अपने घर गयीं।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार विप्रवर मृगशृङ्गको वरदान दे यम देवता अपने पार्षदोंके साथ अन्तर्धान हो गये। इधर ब्राह्मण भी यमराजसे वर पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमको लौटे। जो मानव प्रतिदिन यमराजकी इस स्तुतिका पाठ करेगा, उसे कभी यम-यातना नहीं भोगनी पड़ेगी, उसके ऊपर यमराज प्रसन्न होंगे, उसकी सन्ततिका कभी अपमृत्युसे पराभव न होगा, उसे इस लोक और परलोकमें भी लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी तथा उसे कभी रोगोंका शिकार नहीं होना पड़ेगा।

═══★═══

यमलोकसे लौटी हुई कन्याओंके द्वारा वहाँकी अनुभूत बातोंका वर्णन

राजा दिलीपने पूछा—मुने! यमलोकसे लौटकर आयी हुई उन साध्वी कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे वहाँका वृत्तान्त कैसा बतलाया? पापियोंकी यातना और पुण्यात्माओंकी गतिके सम्बन्धमें क्या कहा? मैं पुण्य और पापके शुभ और अशुभ फलोंको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! कन्याओंने अपनी माताओं और बन्धुओंसे पुण्य-पापके शुभाशुभ फलोंके विषयमें जो कुछ कहा था, वह ज्यों-का-त्यों तुम्हें बतलाता हूँ।

कन्याओंने कहा—माताओ! यमलोक बड़ा ही घोर और भय उत्पन्न करनेवाला है। वहाँ सर्वदा चारों प्रकारके जीवोंको विवश होकर जाना पड़ता है। गर्भमें रहनेवाले अथवा जन्म लेनेवाले शिशु, बालक, तरुण, अधेड़, बूढ़े, स्त्री, पुरुष और नपुंसक—सभी तरहके जीवोंको वहाँ जाना होता है। वहाँ चित्रगुप्त आदि समदर्शी एवं मध्यस्थ सत्पुरुष मिलकर देहधारियोंके शुभ और अशुभ फलका विचार करते हैं। इस लोकमें जो शुभ कर्म करनेवाले, कोमलहृदय तथा दयालु पुरुष हैं, वे सौम्य मार्गसे यमलोकमें जाते हैं। नाना प्रकारके दान और व्रतोंमें संलग्न रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंसे सूर्यनन्दन यमकी नगरी भरी है। माघस्नान करनेवाले लोग वहाँ विशेषरूपसे शोभित होते हैं। धर्मराज उनका अधिक सम्मान करते हैं। वहाँ उनके लिये सब प्रकारकी भोगसामग्री सुलभ होती है। माघस्नानमें मन लगानेवाले लोगोंके सैकड़ों, हजारों विचित्र-विचित्र विमान वहाँ शोभा पाते हैं। इन पुण्यात्मा जीवोंको विमानपर बैठकर आते देख सूर्यनन्दन यम अपने आसनसे उठकर खड़े हो जाते हैं और अपने पार्षदोंके साथ जाकर उन सबकी अगवानी करते हैं। फिर स्वागतपूर्वक आसन दे, पाद्य-अर्घ्य आदि निवेदन कर प्रिय वचनोंमें कहते हैं—'आपलोग अपने आत्माका कल्याण करनेवाले महात्मा हैं, अतएव धन्य हैं; क्योंकि आपने दिव्य सुखकी प्राप्तिके लिये पुण्यका उपार्जन किया है। अतः आप इस विमानपर बैठकर स्वर्गको जाइये। स्वर्गलोककी कहीं तुलना नहीं है, वह सब प्रकारके दिव्य भोगोंसे परिपूर्ण है।' इस प्रकार उनकी अनुमति ले पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गलोकमें जाते हैं।

माताओ! तथा बन्धुजन! अब हम वहाँके पापी जीवोंके कष्टका वर्णन करती हैं, आप सब लोग धैर्य धारण करके सुनें। जो क्रूरतापूर्ण कर्म करनेवाले और दान न देनेवाले पापी जीव हैं, वे वहाँ यमराजके घरमें अत्यन्त भयंकर दक्षिणमार्गसे जाते हैं। यमराजका नगर अनेक रूपोंमें स्थित है, उसका विस्तार चारों ओरसे छियासी हजार योजन समझना चाहिये। पुण्यकर्म करनेवाले पुरुषोंको वह बहुत निकट-सा जान पड़ता है, किन्तु भयंकर मार्गसे जानेवाले पापी जीवोंके लिये वह अत्यन्त दूर है। वह मार्ग कहीं तो तीखे काँटोंसे भरा होता है और कहीं रेत एवं कंकड़ोंसे। कहीं पत्थरोंके ऐसे टुकड़े बिछे होते हैं, जिनका किनारा छुरोंकी धारके समान

तीखा होता है। कहीं बहुत दूरतक कीचड़-ही-कीचड़ भरी रहती है। कहीं घातक अङ्कुर उगे होते हैं और कहीं-कहीं लोहेकी सुईके समान नुकीले कुशोंसे सारा मार्ग ढका होता है। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं बीच रास्तेमें वृक्षोंसे भरे हुए पर्वत होते हैं, जो किनारेपर भारी जल-प्रपातके कारण अत्यन्त दुर्गम जान पड़ते हैं। कहीं रास्तेपर दहकते हुए अँगारे बिछे रहते हैं। ऐसे मार्गसे पापी जीवोंको दुःखित होकर जाना पड़ता है। कहीं ऊँचे-नीचे गड्ढे, कहीं फिसला देनेवाले चिकने ढेले, कहीं खूब तपी हुई बालू और कहीं तीखी कीलोंसे वह मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं-कहीं अनेक शाखाओंमें फैले हुए सैकड़ों वन और दुःखदायी अन्धकार हैं, जहाँ कोई सहारा देनेवाला भी नहीं रहता। कहीं तपे हुए लोहेके काँटेदार वृक्ष, कहीं दावानल, कहीं तपी हुई शिला और कहीं हिमसे वह मार्ग आच्छादित रहता है। कहीं ऐसी बालू भरी रहती है, जिसमें चलनेवाला जीव कण्ठतक धँस जाता है और बालू कानके पासतक आ जाती है। कहीं गरम जल और कहीं कंडोंकी आगसे यमलोकका मार्ग व्याप्त रहता है। कहीं धूल मिली हुई प्रचण्ड वायुका बवंडर उठता है और कहीं बड़े-बड़े पत्थरोंकी वर्षा होती है। उन सबकी पीड़ा सहते हुए पापी जीव यमलोकमें जाते हैं। रेतकी भारी वृष्टिसे सारा अङ्ग भर जानेके कारण पापी जीव रोते हैं। महान् मेघोंकी भयङ्कर गर्जनासे वे बारम्बार थर्रा उठते हैं। कहीं तीखे अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा होती है, जिससे उनके सारे शरीरमें घाव हो जाते हैं। तत्पश्चात् उनके ऊपर नमक मिले हुए पानीकी मोटी धाराएँ बरसायी जाती हैं। इस प्रकार कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कहीं अत्यन्त ठंडी, कहीं रूखी और कहीं कठोर वायुका सब ओरसे आघात सहते हुए पापी जीव सूखते और रोते हैं। इस प्रकार वह मार्ग बड़ा ही भयङ्कर है। वहाँ राहखर्च नहीं मिलता। कोई सहारा देनेवाला नहीं रहता। वह सब ओरसे दुर्गम और निर्जन है। वहाँ और कोई मार्ग आकर नहीं मिला है। वह बहुत बड़ा और आश्रयरहित है। वहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार भरा रहता है। वह महान् कष्टप्रद और सब प्रकारके दुःखोंका आश्रय है। ऐसे ही मार्गसे यमकी आज्ञाका पालन करनेवाले अत्यन्त भयङ्कर यमदूतोंद्वारा समस्त पाप-परायण मूढ़ जीव बलपूर्वक लाये जाते हैं।

वे एकाकी, पराधीन तथा मित्र और बन्धु-बान्धवोंसे रहित होते हैं। अपने कर्मोंके लिये बारम्बार शोक करते और रोते हैं। उनका आकार प्रेत-जैसा होता है। उनके शरीरपर वस्त्र नहीं रहता। कण्ठ, ओठ और तालू सूखे होते हैं। वे शरीरसे दुर्बल और भयभीत होते हैं तथा क्षुधाकी आगसे जलते रहते हैं। बलोन्मत्त यमदूत किन्हीं-किन्हीं पापी मनुष्योंको चित सुलाकर उनके पैरोंमें साँकल बाँध देते हैं और उन्हें घसीटते हुए खींचते हैं। कितने ही दूसरे जीव ललाटमें अङ्कुश चुभाये जानेके कारण क्लेश भोगते हैं। कितनोंकी बाँहें पीठकी ओर घुमाकर बाँध दी जाती और उनके हाथोंमें कील ठोंक दी जाती है; साथ ही पैरोंमें बेड़ी भी पड़ी होती है। इस दशामें भूखका कष्ट सहन करते हुए उन्हें जाना पड़ता है। कुछ दूसरे जीवोंके गलेमें रस्सी बाँधकर उन्हें पशुओंकी भाँति घसीटा जाता है और वे अत्यन्त दुःख उठाते रहते हैं। कितने ही दुष्ट मनुष्योंकी जिह्वामें रस्सी बाँधकर उन्हें खींचा जाता है। किन्हींकी कमरमें भी रस्सी बाँधी जाती और उन्हें गरदनियाँ देकर इधर-उधर ढकेला जाता है। यमदूत किन्हींकी नाक बाँधकर खींचते हैं और किन्हींके गाल तथा ओठ छेदकर उनमें रस्सी डाल देते और उन्हें खींचकर ले जाते हैं। तपे हुए सींकचोंसे कितने ही पापियोंके पेट छिदे होते हैं। कुछ लोगोंके कानों और ठोढ़ियोंमें छेद करके उनमें रस्सी डालकर खींचा जाता है। किन्हींके पैरों और हाथोंके अग्रभाग काट लिये जाते हैं। किन्हींके कण्ठ, ओठ और तालुओंमें छेद कर दिया जाता है। किन्हीं-किन्हींके अण्डकोश कट जाते हैं और कुछ लोगोंके समस्त अङ्गोंकी सन्धियाँ काट दी जाती हैं। किन्हींको भालोंसे छेदा जाता है, कुछ बाणोंसे घायल किये जाते हैं और कुछ लोगोंको मुद्गरों तथा लोहेके डंडोंसे बारम्बार पीटा जाता है और वे निराश्रय होकर चीखते-चिल्लाते हुए इधर-उधर भागा करते हैं।

प्रज्वलित अग्निके समान कान्तिवाले भाँति-भाँतिके भयङ्कर आरों और भिन्दिपालोंसे उन्हें विदीर्ण किया जाता है और वे पापी जीव पीब तथा रक्त बहाते हुए घावसे पीड़ित होते और कीड़ोंसे डँसे जाते हैं। इस प्रकार उन्हें विवश करके यमलोकमें ले जाया जाता है। वे भूख-प्याससे पीड़ित होकर अन्न और जल माँगते हैं, धूपसे बचनेको छायाके लिये प्रार्थना करते हैं और शीतसे व्यथित होकर तापनेके लिये अग्नि माँगते हैं। जिन्होंने उक्त वस्तुओंका दान नहीं किया होता, वे उस पाथेयरहित पथपर इसी प्रकार कष्ट सहते हुए यात्रा करते हैं। इस प्रकार अत्यन्त दुःखमय मार्गसे चलकर जब वे प्रेत-लोकमें पहुँचते हैं, तब दूत उन्हें यमराजके आगे उपस्थित करते हैं। उस समय वे पापी जीव यमराजको भयानक रूपमें देखते हैं। वहाँ असंख्यों भयानक यमदूत, जो काजलके समान काले, महान् वीर और अत्यन्त क्रूर होते हैं, हाथोंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये मौजूद रहते हैं। ऐसे ही परिवारके साथ बैठे हुए यमराज तथा चित्रगुप्तको पापी जीव अत्यन्त भयङ्कर रूपमें देखते हैं।

उस समय भगवान् यमराज और चित्रगुप्त उन पापियोंको धर्मयुक्त वाक्योंसे समझाते हुए बड़े जोर-जोरसे फटकारते हैं। वे कहते हैं—ओ खोटे कर्म करनेवाले पापियो! तुमने दूसरोंके धन हड़प लिये हैं और सुन्दर रूपके घमंडमें आकर परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार किया है। मनुष्य अपने-आप जो कुछ कर्म करता है, उसे स्वयं ही भोगता है; फिर तुमने अपने ही भोगनेके लिये पापकर्म क्यों किया? और अब अपने कर्मोंकी आगमें जलकर इस समय तुमलोग संतप्त क्यों हो रहे हो? भोगो अपने उन कर्मोंको। इसमें दूसरे किसीका दोष नहीं है। ये राजालोग भी अपने भयंकर कर्मोंसे प्रेरित हो मेरे पास आये हैं; इन्हें अपनी खोटी बुद्धि और बलका बड़ा घमंड था। अरे, ओ दुराचारी राजाओ! तुमलोग प्रजाका सर्वनाश करनेवाले हो। अरे, थोड़े समयतक रहनेवाले राज्यके लिये तुमने पाप क्यों किया? राज्यके लोभमें पड़कर मोहवश बलपूर्वक अन्यायसे जो तुमने प्रजाजनोंको दण्ड दिया है, इस समय उसका फल भोगो। कहाँ है वह राज्य और कहाँ गयी वह रानी, जिसके लिये तुमने पापकर्म किया था? अब तो सबको छोड़कर तुम अकेले ही यहाँ खड़े हो। यहाँ वह बल नहीं दिखायी देता, जिससे तुमने प्रजाओंका विध्वंस किया। इस समय यमदूतोंकी मार पड़नेपर कैसा लग रहा है?' इस तरह नाना प्रकारके वचनोंद्वारा यमराजके उलाहना देनेपर वे राजा अपने-अपने कर्मोंको सोचते हुए चुपचाप खड़े रह जाते हैं।

इस प्रकार राजाओंसे धर्मकी बात कहकर धर्मराज उनके पापपङ्ककी शुद्धिके लिये अपने दूतोंसे इस प्रकार कहते हैं—'ओ चण्ड! ओ महाचण्ड!! तुम इन राजाओंको पकड़कर ले जाओ और क्रमशः नरककी आगमें डालकर इन्हें पापोंसे शुद्ध करो।' तब वे दूत शीघ्र ही उठकर राजाओंके पैर पकड़ लेते हैं और उन्हें बड़े वेगसे आकाशमें घुमाकर ऊपर फेंकते हैं। तत्पश्चात् उन्हें पूरा बल लगाकर तपायी हुई शिलापर बड़े वेगसे पटकते हैं, मानो किसी महान् वृक्षपर वज्रसे प्रहार करते हों। शिलापर गिरनेसे उनका शरीर चूर-चूर हो जाता है, रक्तके स्रोत बहने लगते हैं और जीव अचेत एवं निश्चेष्ट हो जाता है। तदनन्तर वायुका स्पर्श होनेपर वह धीरे-धीरे फिर साँस लेने लगता है। उसके बाद पापकी शुद्धिके लिये उसे नरकके समुद्रमें डाल दिया जाता है। इस पृथ्वीके नीचे नरककी अट्ठाईस कोटियाँ हैं। वे सातवें तलके अन्तमें भयङ्कर अन्धकारके भीतर स्थित हैं। उनमें पहली कोटिका नाम घोरा है। उसके नीचे सुघोराकी स्थिति है। तीसरी अतिघोरा, चौथी महाघोरा और पाँचवीं कोटि घोररूपा है। छठीका नाम तरलतारा, सातवींका भयानका, आठवींका कालरात्रि और नवींका भयोत्कटा है। उसके नीचे दसवीं कोटि चण्डा है। उसके भी नीचे महाचण्डा है। बारहवींका नाम चण्डकोलाहला है। उसके बाद प्रचण्डा, नरनायिका, कराला, विकराला और वज्रा हैं। [तीन अन्य नरकोंके साथ] वज्राकी बीसवीं संख्या है। इनके सिवा त्रिकोणा, पञ्चकोणा,

सुदीर्घा, परिवर्तुला, सप्तभौमा, अष्टभौमा, दीप्ता और माया—ये आठ और हैं। इस प्रकार नरककी कुल अट्ठाईस कोटियाँ बतायी गयी हैं।

उपर्युक्त कोटियोंमेंसे प्रत्येकके पाँच-पाँच नायक हैं। उनके नाम सुनो। उनमें पहला रौरव है, जहाँ देहधारी जीव रोते हैं। दूसरा महारौरव है, जिसकी पीड़ाओंसे बड़े-बड़े जीव भी रो देते हैं। तीसरा तम, चौथा शीत और पाँचवाँ उष्ण है। ये प्रथम कोटिके पाँच नायक माने गये हैं। इनके सिवा सुघोर, सुतम, तीक्ष्ण, पद्म, सञ्जीवन, शठ, महामाय, अतिलोम, सुभीम, कटङ्कट, तीव्रवेग, कराल, विकराल, प्रकम्पन, महापद्म, सुचक्र, कालसूत्र, प्रतर्दन, सूचीमुख, सुनेमि, खादक, सुप्रदीपक, कुम्भीपाक, सुपाक, अतिदारुणकूप, अङ्गारराशि, भवन, असृक्पूयह्रद, विरामय, तुण्डशकुनि, महासंवर्तक, क्रतु, तप्तजतु, पङ्कलेप, पूतिमांस, द्रव, त्रपु, उच्छ्वास, निरुच्छ्वास, सुदीर्घ, कूटशाल्मलि, दुरिष्ट, सुमहानाद, प्रभाव, सुप्रभावन, ऋक्ष, मेष, वृष, शल्य, सिंहानन, व्याघ्रानन, मृगानन, सूकरानन, श्वानन, महिषानन, वृकानन, मेषवरानन, ग्राह, कुम्भीर, नक्र, सर्प, कूर्म, वायस, गृध्र, उलूक, जलूका, शार्दूल, कपि, कर्कट, गण्ड, पूतिवक्त्र, रक्ताक्ष, पूतिमृत्तिक, कणाधूम, तुषाग्नि, कृमिनिचय, अमेय, अप्रतिष्ठ, रुधिरान्न, श्वभोजन, लालाभक्ष, आत्मभक्ष, सर्वभक्ष, सुदारुण, सङ्कष्ट, सुबिलास, सुकट, संकट, कट, पुरीष, कटाह, कष्टदायिनी वैतरणी नदी, सुतप्त लोहशङ्कु, अयःशङ्कु, प्रपूरण, घोर, असितालवन, अस्थिभङ्ग, प्रपीड़क, नीलयन्त्र, अतसीयन्त्र, इक्षुयन्त्र, कूट, अंशप्रमर्दन, महाचूर्णी, सुचूर्णी, तप्तलोहमयी शिला, क्षुरधाराभपर्वत, मलपर्वत, मूत्रकूप, विष्ठाकूप, अन्धकूप, पूयकूप, शातन, मुसलोलूखल, यन्त्रशिला, शकटलाङ्गल, तालपत्रासिवन, महामशकमण्डप, सम्मोहन, अतिभङ्ग, तप्तशूल, अयोगुड, बहुदुःख, महादुःख, कश्मल, शमल, हालाहल, विरूप, भीमरूप, भीषण, एकपाद, द्विपाद, तीव्र तथा अवीचि। यह अवीचि अन्तिम नरक है। इस प्रकार ये क्रमशः पाँच-पाँचके अट्ठाईस समुदाय माने गये हैं। एक-एक समुदाय एक-एक कोटिका नायक है।

रौरवसे लेकर अवीचितक कुल एक सौ चालीस नरक माने गये हैं। इन सबमें पापी मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार डाले जाते हैं और जबतक भाँति-भाँतिकी यातनाओंद्वारा उनके कर्मोंका भोग समाप्त नहीं हो जाता, तबतक वे उसीमें पड़े रहते हैं। जैसे सुवर्ण आदि धातु जबतक उनकी मैल न जल जाय तबतक आगमें तपाये जाते हैं, उसी प्रकार पापी पुरुष पापक्षय होनेतक नरकोंकी आगमें शुद्ध किये जाते हैं। इस प्रकार क्लेश सहकर जब ये प्रायः शुद्ध हो जाते हैं, तब शेष कर्मोंके अनुसार पुनः इस पृथ्वीपर आकर जन्म ग्रहण करते हैं। तृण और झाड़ी आदिके भेदसे नाना प्रकारके स्थावर होकर वहाँके दुःख भोगनेके पश्चात् पापी जीव कीड़ोंकी योनिमें जन्म लेते हैं। फिर कीटयोनिसे निकलकर क्रमशः पक्षी होते हैं। पक्षीरूपसे कष्ट भोगकर मृगयोनिमें उत्पन्न होते हैं। वहाँके दुःख भोगकर अन्य पशुयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर क्रमशः गोयोनिमें आकर मरनेके पश्चात् मनुष्य होते हैं।

माताओ! हमने यमलोकमें इतना ही देखा है। वहाँ पापीको बड़ी भयानक यातनाएँ होती हैं। वहाँ ऐसे-ऐसे नरक हैं, जो न कभी देखे गये थे और न कभी सुने ही गये थे। वह सब हमलोग न तो जान सकती हैं और न देख ही सकती हैं।

माताएँ बोलीं—बस, बस, इतना ही बहुत हुआ। अब रहने दो। इन नरक-यातनाओंको सुनकर हमारे सारे अङ्ग शिथिल हो गये हैं। हृदयमें भय छा गया है। बारम्बार उनकी याद आ जानेसे हमारा मन सुध-बुध खो बैठता है। आन्तरिक भयके उद्रेकसे हमलोगोंके शरीरमें रोमाञ्च हो आया है।

कन्याओंने कहा—माताओ! इस परम पवित्र भारतवर्षमें जो हमें जन्म मिला है, यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें भी हजार-हजार जन्म लेनेके बाद पुण्यराशिके सञ्चयसे कदाचित् कभी जीव मनुष्ययोनिमें जन्म पाता है; परन्तु जो माघस्नानमें तत्पर रहनेवाले हैं, उनके लिये कुछ

भी दुर्लभ नहीं है। उन्हें यहाँ ही परम मोक्ष मिल जाता है और पर्याप्त भोगसामग्री भी सुलभ होती है। भारतवर्षको कर्मभूमि कहा गया है। अन्य जितनी भूमियाँ हैं, वे भोगभूमि मानी जाती हैं। यहाँ यति तपस्या और याजक यज्ञ करते हैं तथा यहीं पारलौकिक सुखके लिये श्रद्धापूर्वक दान दिये जाते हैं। कितने ही धन्य पुरुष यहीं माघस्नान करते तथा तपस्या करके अपने कर्मोंके अनुसार ब्रह्मा, इन्द्र, देवता और मरुद्गणोंका पद प्राप्त करते हैं। यह भारतवर्ष सभी देशोंसे श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि यहीं मनुष्य धर्म तथा स्वर्ग और मोक्षकी सिद्धि कर सकते हैं। इस पवित्र भारतदेशमें क्षणभङ्गुर मानव-जीवनको पाकर जो अपने आत्माका कल्याण नहीं करता, उसने अपने-आपको ठग लिया। मनुष्योंमें भी अत्यन्त दुर्लभ ब्राह्मणत्वको पाकर जो अपना कल्याण नहीं करता, उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा। कितने ही कालके बाद जीव अत्यन्त दुर्लभ मानवजीवन प्राप्त करता है; इसे पाकर ऐसा करना चाहिये, जिससे कभी नरकमें न जाना पड़े। देवतालोग भी यह अभिलाषा करते हैं कि हमलोग कब भारतवर्षमें जन्म लेकर माघ मासमें प्रातःकाल किसी नदी या सरोवरके जलमें गोते लगायेंगे। देवता यह गीत गाते हैं कि जो लोग देवत्वके पश्चात् स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके मार्गभूत भारतवर्षके भूभागमें मनुष्य-जन्म धारण करते हैं, वे धन्य हैं। हम नहीं जानते कि स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले अपने पुण्यकर्मके क्षीण होनेपर किस देशमें हमें पुनः देह धारण करना पड़ेगा। जो भारतवर्षमें जन्म लेकर सब इन्द्रियोंसे युक्त हैं—किसी भी इन्द्रियसे हीन नहीं हैं, वे ही मनुष्य धन्य हैं; अतः माताओ ! तुम भय मत करो, भय मत करो। आदरपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करो। जिनके पास दानरूपी राहखर्च होता है, वे यमलोकके मार्गपर सुखसे जाते हैं; अन्यथा उस पाथेयरहित पथपर जीवको क्लेश भोगना पड़ता है। ऐसा जानकर मनुष्य पुण्य करे और पाप छोड़ दे। पुण्यसे देवत्वकी प्राप्ति होती है और अधर्मसे नरकमें गिरना पड़ता है। जो किञ्चित् भी देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं, वे भयङ्कर यमलोकका दर्शन नहीं करते।

बान्धवो ! यदि तुमलोग संसार-बन्धनसे छुटकारा पाना चाहते हो तो सच्चिदानन्दस्वरूप परमदेव श्रीनारायणकी आराधना करो। यह चराचर जगत् आपलोगोंकी भावना—संकल्पसे ही निर्मित है, इसे बिजलीकी तरह चञ्चल—क्षणभङ्गुर समझकर श्रीजनार्दनका पूजन करो। अहंकार विद्युत्की रेखाके समान व्यर्थ है, इसे कभी पास न आने दो। शरीर मृत्युसे जुड़ा हुआ है, जीवन भी चञ्चल है, धन राजा आदिसे प्राप्त होनेवाली बाधाओंसे परिपूर्ण है तथा सम्पत्तियाँ क्षणभङ्गुर हैं। माताओ ! क्या तुम नहीं जानतीं, आधी आयु तो नींदमें चली जाती है ? कुछ आयु भोजन आदिमें समाप्त हो जाती है। कुछ बालकपनमें, कुछ बुढ़ापेमें और कुछ विषय-भोगोंके सेवनमें ही बीत जाती है; फिर कितनी आयु लेकर तुम धर्म करोगी। बचपन और बुढ़ापेमें तो भगवान्के पूजनका अवसर नहीं प्राप्त होता; अतः इसी अवस्थामें अहङ्कारशून्य होकर धर्म करो। संसाररूपी भयङ्कर गड्ढेमें गिरकर नष्ट न हो जाओ। यह शरीर मृत्युका घर है तथा आपत्तियोंका सर्वश्रेष्ठ स्थान है; इतना ही नहीं, यह रोगोंका भी निवासस्थान है और मल आदिसे भी अत्यन्त दूषित रहता है। माताओ ! फिर किसलिये इसे स्थिर समझकर तुम पाप करती हो। यह संसार निःसार है और नाना प्रकारके दुःखोंसे भरा है। इसपर विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि एक दिन तुम्हारा निश्चय ही नाश होनेवाला है। बान्धवो ! तुम सब लोग सुनो। हम बिलकुल सच्ची बात बता रही हैं। शरीरका नाश बिलकुल निकट है; अतः श्रीजनार्दनका पूजन अवश्य करना चाहिये। सदा ही श्रीविष्णुकी आराधना करते रहो। यह मानव-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। बन्धुओ ! स्थावर आदि योनियोंमें अरबों-खरबों बार भटकनेके बाद किसी तरह मनुष्यका शरीर प्राप्त होता है। मनुष्य होनेपर भी देवताओंके पूजन और दानमें मन लगना तो और भी कठिन है। माताओ ! योगबुद्धि सबसे दुर्लभ है। जो दुर्लभ मनुष्य-शरीरको पाकर सदा ही श्रीहरिका

पूजन नहीं करता, वह आप ही अपना विनाश करता है। उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? तुमलोग दम्भका आचरण छोड़कर चक्रसुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। हमलोग बारम्बार भुजाएँ उठाकर तुम्हारे हितकी बात कहती हैं। सर्वथा भक्तिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहिये और मनुष्योंके साथ ईर्ष्याका भाव छोड़ देना चाहिये। सबके धारण करनेवाले जगदीश्वर भगवान् अच्युतकी आराधना किये बिना संसार-सागरमें डूबे हुए तुम सब लोग कैस पार जाओगे? माताओ! अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता? हमारी यह बात सुनो—जो प्रतिदिन तन्मय होकर भगवान् गोविन्दके गुणोंका गान तथा नामोंका सङ्कीर्तन सुनते हैं, उन्हें वेदोंसे, तपस्यासे, शास्त्रोक्त दक्षिणावाले यज्ञोंसे, पुत्र और स्त्रियोंसे, संसारके कृत्योंसे तथा घर, खेत और बन्धु-बान्धवोंसे क्या लेना है? इसलिये तुमलोग भय छोड़कर श्रीकेशवकी आराधना करो। शालग्रामशिलाका निर्मल एवं शुद्ध चरणामृत पीओ तथा भगवान् विष्णुके दिन—एकादशीको उपवास किया करो।

जब सूर्य मकर-राशिपर स्थित हों, उस समय प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करो; साथ ही पतिकी सेवामें लगी रहो। नरकका भय तो तुम्हें दूरसे ही छोड़ देना चाहिये; क्योंकि सब पापोंका नाश करनेवाली परम पवित्र एकादशी तिथि प्रत्येक पक्षमें आती है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों हो रहा है? घरसे बाहरके जलमें स्नान करनेसे पुण्य प्रदान करनेवाला माघ मास भी प्रतिवर्ष आया करता है। फिर तुम्हें नरकसे भय क्यों होता है।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! वे कन्याएँ अपनी माताओंसे इस प्रकार कहकर पुनः माघस्नान, उपवास आदि व्रत, धर्म तथा दान करने लगीं।

महात्मा पुष्करके द्वारा नरकमें पड़े हुए जीवोंका उद्धार

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! माघस्नान और उपवास आदि महान् पुण्य करनेवाले मनुष्य इसी प्रकार दिव्य लोकोंमें जाते-आते रहते हैं। पुण्य ही सर्वत्र आने-जानेमें कारण है। पूर्वकालमें विप्रवर पुष्कर भी यमलोकमें गये थे और वहाँ बहुत-से नारकीय जीवोंको नरकसे निकालकर फिर यहीं आ पूर्ववत् अपने घरमें रहने लगे। त्रेतायुगमें जब भगवान् श्रीरामचन्द्रजी राज्य करते थे, तभी एक समय किसी ब्राह्मणका पुत्र मरकर यमलोकमें गया और पुनः वह जी उठा। क्या यह बात तुमने नहीं सुनी है? देवकीनन्दन श्रीकृष्णने अपने गुरु सान्दीपनिके पुत्रको, जिसे बहुत दिन पहले ही ग्राहने अपना ग्रास बना लिया था, पुनः यमलोकसे ले आकर गुरुको अर्पण किया था। इसी प्रकार और भी कई मनुष्य यमलोकसे लौट आये हैं। इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। अच्छा बताओ, अब और क्या सुनना चाहते हो?

दिलीपने पूछा—मुने! पुष्कर नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण कहाँके रहनेवाले थे? वे कैसे यमलोकमें आये और किस प्रकार उन्होंने नरकसे पापियोंका उद्धार किया?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! मैं महात्मा पुष्करके चरित्रका वर्णन करता हूँ। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। तुम सावधान होकर सुनो। बुद्धिमान् पुष्कर नन्दिग्रामके निवासी थे। वे सदा अपने धर्मके अनुष्ठानमें लगे रहनेवाले और सब प्राणियोंके हितैषी थे। सदा माघस्नान और स्वाध्यायमें तत्पर रहते तथा समयपर अनन्य भावसे श्रीविष्णुकी आराधना किया करते थे। महायोगी पुष्कर अपने कुटुम्बके साथ रहते और नित्य अग्निहोत्र करते थे। राजन्, वे अप्रमेय! हरे! विष्णो! कृष्ण! दामोदर! अच्युत! गोविन्द! अनन्त! देवेश्वर! इत्यादि रूपसे केवल भगवन्नामोंका कीर्तन करते थे। महामते! देवताका आराधन छोड़कर और किसी काममें उन ब्राह्मण देवताका मन स्वप्नमें भी नहीं लगता था। एक दिन सूर्यनन्दन यमराजने अपने

भयङ्कर दूतोंको आज्ञा दी—'जाओ, नन्दिग्राम-निवासी पुष्कर नामक ब्राह्मणको यहाँ पकड़ ले आओ।' यह आदेश सुनकर और यमराजके बताये हुए पुष्करको न पहचानकर वे इन महात्मा पुष्करको ही यमलोकमें पकड़ लाये। ब्राह्मण पुष्करको आते देख यमराज मन-ही-मन भयभीत हो गये और आसनसे उठकर खड़े हो गये। फिर मुनिको आसनपर बिठाकर उन्होंने दूतोंको फटकारा—'तुमलोगोंने यह क्या किया ? मैंने तो दूसरे पुष्करको लानेके लिये कहा था। तुमलोगोंके कितने पापपूर्ण विचार हैं। भला, इन सब धर्मोंके ज्ञाता, विशेषतः भगवान् विष्णुके भक्त, सदा माघस्नान करनेवाले और उपवास-परायण महात्मा पुरुषको यहाँ मेरे समीप क्यों ले आये ?'

दूतोंको इस प्रकार डाँट बताकर प्रेतराज यमने पुष्करसे कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पुत्र और स्त्री आदि सब बान्धव बहुत व्याकुल होकर रो रहे हैं; अतः तुम भी अभी जाओ।' तब पुष्करने यमसे कहा—'भगवन्! जहाँ पापी पुरुष यातनामय शरीर धारण करके कष्ट भोगते हैं, उन सब नरकोंको मैं देखना चाहता हूँ। यह सुनकर सूर्यकुमार यमने पुष्करको सैकड़ों और हजारों नरक दिखलाये। पुष्करने देखा, पापी जीव नरकोंमें पड़कर बड़ा कष्ट भोगते हैं। कोई शूलीपर चढ़े हैं, किन्हींको व्याघ्र खा रहा है, जिससे वे अत्यन्त दुःखित हैं। कोई तपी हुई बालूपर जल रहे हैं। किन्हींको कीड़े खा रहे हैं। कोई जलते हुए घड़ेमें डाल दिये गये हैं। कोई कीड़ोंसे पीड़ित हैं। कोई असिपत्रवनमें दौड़ रहे हैं, जिससे उनके अङ्ग छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। किन्हींको आरोंसे चीरा जा रहा है। कोई कुल्हाड़ोंसे काटे जाते हैं। किन्हींको खारी कीचड़में कष्ट भोगना पड़ता है। किन्हींको सूई चुभो-चुभोकर गिराया जाता है और कोई सर्दीसे पीड़ित हो रहे हैं। उनको तथा अन्य जीवोंको नरकमें पड़कर यातना भोगते देख पुष्करको बड़ा दुःख हुआ। वे उनसे बोले—'क्या आपलोगोंने पूर्वजन्ममें कोई पुण्य नहीं किया था, जिससे यहाँ यातनामें पड़कर आप सदा दुःख भोगते हैं ?'

नरकके जीवोंने कहा—विप्रवर! हमने पृथ्वीपर कोई पुण्य नहीं किया था। इसीसे इस यातनामें पड़कर जलते और बहुत कष्ट उठाते हैं। हमने परायी स्त्रियोंसे अनुराग किया, दूसरोंके धन चुराये, अन्य जीवोंकी हिंसा की, बिना अपराध ही दूसरोंपर लाञ्छन लगाये, ब्राह्मणोंकी निन्दा की और जिनके भरण-पोषणका भार अपने ऊपर था, उनके भोजन किये बिना ही हम सबसे पहले भोजन कर लेते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण हमलोग इस नरकाग्निमें दग्ध हो रहे हैं। प्यासी गौएँ जब जलकी ओर दौड़ती हुई जातीं, तो हम सदा उनके पानी पीनेमें विघ्न डाल दिया करते थे। गौओंको कभी खिलाते-पिलाते नहीं थे, तो भी उनका दूध दुहकर पेट पालनेमें लगे रहते थे। याचकोंको दान देनेमें लगे हुए धार्मिक पुरुषोंके कार्यमें रोड़े अटकाया करते थे। अपनी स्त्रियोंको त्याग दिया था। व्रतसे भ्रष्ट हो गये थे। दूसरेके अन्नमें ही सदा रुचि रखते थे। पर्वोंपर भी स्त्रियोंके साथ रमण करते थे। ब्राह्मणोंको देनेकी प्रतिज्ञा करके भी लोभवश उन्हें दान नहीं दिया। हम धरोहर हड़प लेते थे, मित्रोंसे द्रोह करते तथा झूठी गवाही देते रहते थे। इन्हीं सब पापोंके कारण आज हम दग्ध हो रहे हैं।

पुष्करने कहा—क्या आपलोगोंने भगवान् जनार्दनका एक बार भी पूजन नहीं किया ? इसीसे आप ऐसी भयानक दशाको पहुँचे हैं। जिन्होंने समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तमका पूजन किया है, उन मनुष्योंका मोक्षतक हो सकता है; फिर पापक्षयकी तो बात ही क्या है ? प्रायः आपलोगोंने श्रीपुरुषोत्तमके चरणोंमें मस्तक नहीं झुकाया है। इसीसे आपको इस अत्यन्त भयङ्कर नरककी प्राप्ति हुई है। अब यहाँ हाहाकार करनेसे क्या लाभ ? निरन्तर भगवान् श्रीहरिका स्मरण कीजिये। वे श्रीविष्णु समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। मैं भी यहाँ जगदीश्वरके नामोंका कीर्तन करता हूँ। वे नाम निश्चय ही आपका कल्याण करेंगे।

नरकके जीवोंने कहा—ब्रह्मन्! हमारा अन्तःकरण अपवित्र है। हम अपने पापसे सन्तप्त हैं।

ऐसे समयमें आपके शरीरको छूकर बहनेवाली वायु हमें परम आनन्द प्रदान करती है। धर्मात्मन्! आप कुछ देरतक यहाँ ठहरिये, जिससे हम दुःखी जीवोंको क्षणभर भी तो सुख मिल सके। ब्रह्मन्! आपके दर्शनसे भी हमें बड़ा सन्तोष होता है। अहो! हम पापी जीवोंपर भी आपकी कितनी दया है।

यमराजने कहा—धर्मके ज्ञाता पुष्कर! तुमने नरक देख लिये। अब जाओ। तुम्हारी पत्नी दुःख और शोकमें डूबकर रो रही है।

पुष्कर बोले—भगवन्! जबतक इन दुःखी जीवोंकी आवाज कानोंमें पड़ती है, तबतक कैसे जाऊँ। जानेपर भी वहाँ मुझे क्या सुख मिलेगा? आपके किंकरोंकी मार खाकर जो आगके ढेरमें गिर रहे हैं, उन नारकीय जीवोंकी यह दिन-रातकी पुकार सुनिये। कितने ही जीवोंके मुखसे निकली हुई यह ध्वनि सुनायी देती है—'हाय! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' समस्त भूतोंके आत्मा और सबके ईश्वर सर्वव्यापी श्रीहरिकी मैं नित्य आराधना करता हूँ। इस सत्यके प्रभावसे नारकीय जीव तत्काल मुक्त हो जायँ। भगवान् विष्णु सबमें स्थित हैं और सब कुछ भगवान् विष्णुमें स्थित है। इस सत्यसे नारकीय जीवोंका तुरंत क्लेशसे छुटकारा हो जाय। हे कृष्ण! हे अच्युत! हे जगन्नाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे जनार्दन! यहाँ नरकके भीतर यातनामें पड़े हुए इन सब जीवोंकी रक्षा कीजिये।

पुष्करके द्वारा उच्चारित भगवान्‌के नाम सुनकर वहाँ नरकमें पड़े हुए सभी पापी तत्काल उससे छुटकारा पा गये। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पुष्करसे बोले—'ब्रह्मन्! हम नरकसे मुक्त हो गये। इससे संसारमें आपकी अनुपम कीर्तिका विस्तार हो।' यमराजको भी इस घटनासे बड़ा विस्मय हुआ। वे पुष्करके पास जा प्रसन्नचित्त होकर वरदानके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। वे बोले—'धर्मात्मन्! तुम पृथ्वीपर जाकर सदा वहीं रहो। तुम्हें और तुम्हारे सुहृदोंको भी मुझसे कोई भय नहीं है। जो मनुष्य तुम्हारे माहात्म्यका प्रतिदिन स्मरण करेगा, उसे मेरी कृपासे अपमृत्युका भय नहीं होगा।'

वसिष्ठजी कहते हैं—यमराजके यों कहनेपर पुष्कर पृथ्वीपर लौट आये और यहाँ पूर्ववत् स्वस्थ हो भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए रहने लगे। राजन्! मेरेद्वारा कहे हुए महात्मा पुष्करके इस माहात्म्यको जो सुनता है, उसके सारे पापोंका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुका नाम-कीर्तन करनेसे जिस प्रकार नरकसे भी छुटकारा मिल जाता है, वह प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। आदिपुरुष परमात्माके नामोंकी थोड़ी-सी भी स्मृति सञ्चित पापोंकी राशिका तत्काल नाश कर देती है, यह बात प्रत्यक्ष देखी गयी है। फिर उन जनार्दनके नामोंका भलीभाँति कीर्तन करनेपर उत्तम फलकी प्राप्ति होगी, इसके लिये तो कहना ही क्या है।*

मृगशृङ्गका विवाह, विवाहके भेद तथा गृहस्थ-आश्रमका धर्म

राजा दिलीप बोले—मुने! मेरे प्रश्नोंके उत्तरमें आपने बड़ी विचित्र बात सुनायी। अब संसारके हितके लिये महात्मा मृगशृङ्गके शेष चरित्रका वर्णन कीजिये; क्योंकि उनके समान संतपुरुष स्पर्श, बातचीत और दर्शन करनेसे तथा शरणमें जानेसे सारे पापोंका नाश कर डालते हैं।

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्मचारी मृगशृङ्गने गुरुकुलमें रहकर सम्पूर्ण वेदों और दर्शनोंका यथावत् अध्ययन किया। फिर गुरुकी बतायी हुई दक्षिणा दे, समावर्तनकी विधि पूरी करके शुद्ध चित्त होनेपर उन्हें गुरुने घर जानेकी आज्ञा दी। घर आनेपर कुत्स मुनिके उस पुत्रको उचथ्यने अपनी पुत्री देनेका विचार किया

* स्वल्पापि नामस्मृतिरादिपुंसः क्षयं करोत्याहितपापराशेः। प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र दृष्टं संकीर्तिते नाम्नि जनार्दनस्य॥ (२२९। ८३)

तथा मुनीश्वर मृगशृङ्गने भी पहले जिसे मन-ही-मन वरण किया था, उस उचथ्य-पुत्री सुवृत्ताके साथ विवाह करनेकी इच्छा की। इसके बाद उन्होंने महर्षि वेदव्यासजीकी आज्ञासे सुवृत्ता तथा उसकी तीनों सखियों—कमला, विमला और सुरसाका पाणिग्रहण किया।

श्रुति कहती है—'ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्म विवाह सबसे उत्तम है।' इसलिये मुनिने उन चारों कन्याओंको ब्राह्म विवाहकी ही रीतिसे ग्रहण किया। इस प्रकार विवाह हो जानेपर मुनिवर वत्सने समस्त ऋषियोंको मस्तक झुकाया तथा वे मुनीश्वर भी वर-वधूको आशीर्वाद दे उनसे पूछकर अपनी-अपनी कुटीमें चले गये।

राजा दिलीपने पूछा—गुरुदेव वसिष्ठजी! चारों वर्णोंके विवाह कितने प्रकारके माने गये हैं? यह बात यदि गोपनीय न हो तो मुझे भी बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! सुनो, मैं क्रमशः तुमसे सभी विवाहोंका वर्णन करता हूँ। विवाह आठ प्रकारके हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। जहाँ वरको बुलाकर वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित कन्याका [विधिपूर्वक] दान किया जाता है, वह ब्राह्म विवाह कहलाता है। ऐसे विवाहसे उत्पन्न होनेवाला पुत्र इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करता है। यज्ञ करनेके लिये ऋत्विजको जो कन्या दी जाती है, वह दैव विवाह है। उससे उत्पन्न होनेवाला पुत्र चौदह पीढ़ियोंका उद्धार करता है। वरसे दो बैल लेकर जो कन्याका दान किया जाता है, वह आर्ष विवाह है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र छः पीढ़ियोंका उद्धार करता है। 'दोनों एक साथ रहकर धर्मका आचरण करें' यों कहकर जो किसी माँगनेवाले पुरुषको कन्या दी जाती है, वह प्राजापत्य विवाह कहलाता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र भी छः पीढ़ियोंका उद्धार करता है। ये चार विवाह ब्राह्मणोंके लिये धर्मानुकूल माने गये हैं। जहाँ धनसे कन्याको खरीदकर विवाह किया जाता है, वह आसुर विवाह है। वर और कन्यामें परस्पर मैत्रीके कारण जो विवाह-सम्बन्ध स्थापित होता है, उसका नाम गान्धर्व है। बलपूर्वक कन्याको हर लाना राक्षस विवाह है। सत्पुरुषोंने इसकी निन्दा की है। छलपूर्वक कन्याका अपहरण करके किये जानेवाले विवाहको पैशाच कहते हैं। यह बहुत ही घृणित है। समान वर्णकी कन्याओंके साथ विवाहकालमें उनका हाथ अपने हाथमें लेना चाहिये, यही विधि है। धर्मानुकूल विवाहोंसे सौ वर्षतक जीवित रहनेवाली धार्मिक सन्तान उत्पन्न होती है तथा अधर्ममय विवाहोंसे जिनकी उत्पत्ति होती है, वे भाग्यहीन, निर्धन और थोड़ी आयुवाले होते हैं; अतः ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्म विवाह ही श्रेष्ठ है।

इस प्रकार मुनीश्वर मृगशृङ्ग विधिपूर्वक विवाह करके वेदोक्त मार्गसे भलीभाँति गार्हस्थ्य-धर्मका पालन करने लगे। उनकी गृहस्थीके समान दूसरे किसीकी गृहस्थी न कभी हुई है, न होगी। सुवृत्ता, कमला, विमला और सुरसा—ये चारों पत्नियाँ पातिव्रत्य धर्ममें तत्पर हो सदा पतिकी सेवामें लगी रहती थीं। उनके सतीत्वकी कहीं तुलना नहीं थी। इस प्रकार वे धर्मात्मा मुनि उन धर्मपत्नियोंके साथ रहकर भलीभाँति धर्मका अनुष्ठान करने लगे।

राजा दिलीपने पूछा—मुनिवर! पतिव्रताका क्या लक्षण है? तथा गृहस्थ-आश्रमका भी क्या लक्षण है? मैं इस बातको जानना चाहता हूँ। कृपया बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! सुनो, मैं गृहस्थाश्रमका लक्षण बतलाता हूँ। सदाचारका पालन करनेवाला पुरुष दोनों लोक जीत लेता है। ब्राह्म मुहूर्तमें शयनसे उठकर पहले धर्म और अर्थका चिन्तन करे। फिर अर्थोपार्जनमें होनेवाले शारीरिक क्लेशपर विचार करके मन-ही-मन परमेश्वरका स्मरण करे। धनुषसे छूटनेपर एक बाण जितनी दूततक जाता है, उतनी दूरकी भूमि लाँघकर घरसे दूर नैर्ऋत्य कोणकी ओर जाय और वहाँ मल-मूत्रका त्याग करे। दिनको और सन्ध्याके समय कानपर जनेऊ चढ़ाकर उत्तरकी ओर मुँह करके शौचके लिये बैठना चाहिये और रात्रिमें दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। मलत्यागके समय भूमिको तिनकेसे ढँक दे और अपने

मस्तकपर वस्त्र डालकर यत्नपूर्वक मौन रहे। न तो थूके और न ऊपरको साँस ही खींचे। शौचके स्थानपर अधिक देरतक न रुके। मलकी ओर दृष्टिपात न करे। अपने शिश्नको हाथसे पकड़े हुए उठे और अन्यत्र जाकर आलस्यरहित हो गुदा और लिङ्गको अच्छी तरह धो डाले। किनारेकी मिट्टी लेकर उससे इस प्रकार अङ्गोंकी शुद्धि करे, जिससे मलकी दुर्गन्ध और लेप दूर हो जाय। किसी पवित्र तीर्थमें शौचकी क्रिया (गुदा आदि धोना) न करे; यदि करना हो तो किसी पात्रमें जल निकालकर उससे अलग जाकर शौच-कर्म करे। लिङ्गमें एक बार, गुदामें पाँच बार तथा बायें हाथमें दस बार मिट्टी लगाये। दोनों पैरोंमें पाँच-पाँच बार मिट्टी लगाकर धोये। इस प्रकार शौच करके मिट्टी और जलसे हाथ-पैर धोकर चोटी बाँध ले और दो बार आचमन करे। आचमनके समय हाथ घुटनोंके भीतर होना चाहिये। पवित्र स्थानमें उत्तर या पूरबकी ओर मुँह करके हाथमें पवित्री धारण किये आचमन करना चाहिये। इससे पवित्री जूठी नहीं होती। यदि पवित्री पहने हुए ही भोजन कर ले तो वह अवश्य जूठी हो जाती है। उसको त्याग देना चाहिये।

तदनन्तर उठकर दोनों नेत्र धो डाले और दन्तधावन (दातुन) करे। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वं नो देहि वनस्पते॥

(२३३। १७)

वनस्पते! आप हमें आयु, बल, यश, तेज, सन्तान, पशु, धन, वेदाध्ययनकी बुद्धि तथा धारणाशक्ति प्रदान करें।'

इस मन्त्रका पाठ करके दातुन करे। दातुन काँटेदार या दूधवाले वृक्षकी होनी चाहिये। उसकी लंबाई बारह अंगुलकी हो और उसमें कोई छेद न हो। मोटाई भी कनिष्ठिका अँगुलीके बराबर होनी चाहिये। रविवारको दातुन निषिद्ध है, उस दिन बारह कुल्लोंसे मुखकी शुद्धि होती है। तत्पश्चात् आचमन करके शुद्ध हो विधिपूर्वक प्रातःस्नान करे। स्नानके बाद देवता और पितरोंका तर्पण करे। फिर उठकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे। विज्ञ ब्राह्मणको उत्तरीय वस्त्र (चादर) सदा ही धारण किये रहना चाहिये। आचमनके बाद भस्मके द्वारा ललाटमें त्रिपुण्ड्र धारण करे अथवा गोपीचन्दन घिसकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये। तदनन्तर सन्ध्यावन्दन आरम्भ करके प्राणायाम करे। **'आपो हि ष्ठा०'** आदि तीन ऋचाओंसे कुशोदकद्वारा मार्जन करे। पूर्वोक्त ऋचाओंमेंसे एक-एकका प्रणवसहित उच्चारण करके जल सींचे। फिर **'सूर्यश्च०'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा अभिमन्त्रित जलका आचमन करे। तत्पश्चात् दोनों हाथोंमें जल लेकर उसे गायत्रीसे अभिमन्त्रित करे और सूर्यकी ओर मुँह करके खड़ा हो तीन बार ऊपरको वह जल फेंके। इस प्रकार सूर्यको अर्घ्यदान करना चाहिये। प्रातःकालकी सन्ध्या जब तारे दिखायी देते हों, उसी समय विधिपूर्वक आरम्भ करे और जबतक सूर्यका दर्शन न हो जाय, तबतक गायत्री-मन्त्रका जप करता रहे। इसके बाद सविता-देवता-सम्बन्धी पापहारी मन्त्रोंद्वारा हाथ जोड़कर सूर्योपस्थान करे। सन्ध्याकालमें गुरुके चरणोंको तथा भूमिदेवीको प्रणाम करे। जो द्विज श्रद्धा और विधिके साथ प्रतिदिन सन्ध्योपासन करता है, उसे तीनों लोकोंमें कुछ भी अप्राप्य नहीं। सन्ध्या समाप्त होनेपर आलस्य छोड़कर होम करे। कोई भी दिन खाली न जाने दे। प्रतिदिन कुछ-न-कुछ दान करे।

यह दिनके प्रथम भागका कृत्य बतलाया गया। दूसरे भागमें वेदोंका स्वाध्याय किया जाता है। समिधा, फूल और कुश आदिके संग्रहका भी यही समय है। दिनके तीसरे भागमें न्यायपूर्वक कुछ धनका उपार्जन करे। शरीरको क्लेश दिये बिना दैवेच्छासे जो उपलब्ध हो सके, उतनेका ही अर्जन करे। ब्राह्मणके छः कर्मोंमेंसे तीन कर्म उसकी जीविकाके साधन हैं। यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और शुद्ध आचरणवाले यजमानसे दान लेना—ये ही उसकी आजीविकाके तीन कर्म हैं। दिनके चौथे भागमें पुनः स्नान करे। [प्रातःकाल सन्ध्या-वन्दनके पश्चात्] कुशके आसनपर बैठे और दोनों हाथोंमें कुश ले अञ्जलि बाँधकर ब्रह्मयज्ञकी पूर्तिके लिये यथाशक्ति

स्वाध्याय करे। उस समय ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेदके मन्त्रोंका जप करना चाहिये। फिर देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण करे। देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर रखे, ऋषि-तर्पणके समय उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और पितृ-तर्पणमें जनेऊको दायें कंधेपर रखे। उन्हें क्रमशः देवतीर्थ, प्रजापतितीर्थ और पितृतीर्थसे ही जल देना चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण भूतोंको जल दे। [मध्याह्नकालमें] **'आपो हि ष्ठा०'** इस मन्त्रसे अपने मस्तकको सींचकर **'आपः पुनन्तु'** इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए जलका आचमन करे। तत्पश्चात् दोनों हाथोंसे जल लेकर गायत्री-मन्त्र पढ़ते हुए सूर्यको एक बार अर्घ्य दे। उसके बाद गायत्रीका जप करे। गायत्री-मन्त्रद्वारा यथाशक्ति सूर्यका उपस्थान करके उनकी प्रदक्षिणा और नमस्कारके पश्चात् आसनपर बैठे और जलके देवताओंको नमस्कार करके एकाग्रचित्त हो घरको जाय।

इस प्रकार जप-यज्ञके अनन्तर देवताओंकी पूजा करे। ब्राह्मणको सूर्य, दुर्गा, श्रीविष्णु, गणेश तथा शिव—इन पाँच देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। उसके बाद पञ्चमहायज्ञोंका अनुष्ठान करे। फिर भूतबलि, काकबलि और कुक्कुरबलि आदि देते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे—

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाश्च यक्षोरगदैत्यसङ्घाः।
प्रेताः पिशाचा उरगाः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मयात्र दत्तम्॥
(२३३।४३)

'देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, नाग, दैत्य, प्रेत, पिशाच और सब प्रकारके सर्प जो मुझसे अन्न लेनेकी इच्छा रखते हों, वे यहाँ आकर मेरे दिये हुए अन्नको ग्रहण करें।'

यों कहकर सब प्राणियोंके लिये पृथक्-पृथक् बलि दे। तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके प्रसन्नचित्त होकर द्वारपर बैठे और बड़ी श्रद्धाके साथ किसी अतिथिके आनेकी प्रतीक्षा करे। गोदोहनकालतक प्रतीक्षा करनेके बाद यदि भाग्यवश कोई अतिथि आ जाय तो यथाशक्ति अन्न और जल देकर देवताकी भाँति उसकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। संन्यासी और ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक सब व्यञ्जनोंसे युक्त रसोईमेंसे, जो अभी उपयोगमें न लायी गयी हो, अन्न निकालकर भिक्षा दे। संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों ही बनी हुई रसोईके स्वामी—प्रधान अधिकारी हैं। संन्यासीके हाथमें पहले जल दे, फिर अन्न दे; उसके बाद पुनः जल दे। ऐसा करनेसे वह भिक्षाका अन्न, मेरुके समान और जल समुद्रके तुल्य फल देनेवाला होता है। जो मनुष्य संन्यासीको सत्कारपूर्वक भिक्षा देता है, उसे गोदानके समान पुण्य होता है—ऐसा भगवान् यमका कथन है। माता, पिता, गुरु, बन्धु, गर्भिणी स्त्री, वृद्ध, बालक और आये हुए अतिथि जब भोजन कर लें, उसके बाद घरका मालिक गृहस्थ पुरुष लिपे-पुते पवित्र स्थानमें हाथ-पैर धोकर बैठे और पूर्वाभिमुख होकर भोजन करे। भोजन करते समय वाणीको संयममें रखकर मौन रहे। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचोंको धोकर ही भोजन करना चाहिये। भोजनका पात्र उत्तम और शुद्ध होना चाहिये। अन्नकी निन्दा न करते हुए भोजन करना उचित है। एक वस्त्र धारण करके अथवा फूटे हुए पात्रमें भोजन न करे। जो शुद्ध काँसेके बरतनमें अकेला ही भोजन करता है, उसकी आयु, बुद्धि, यश और बल—इन चारोंकी वृद्धि होती है। घी, अन्न तथा सभी प्रकारके व्यञ्जन करछुलसे ही परोसने चाहिये—हाथसे नहीं। भोजनमेंसे पहले कुछ अन्न निकालकर धर्मराज तथा चित्रगुप्तको बलि दे। फिर सम्पूर्ण भूतोंके लिये अन्न देते हुए इस मन्त्रका उच्चारण करे—

यत्र क्वचनसंस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम्।
भूतानां तृप्तयेऽक्षय्यमिदमस्तु यथासुखम्॥
(२३३।५६)

'जहाँ कहीं भी रहकर भूख-प्याससे पीड़ित हुए प्राणियोंकी तृप्तिके लिये यह अन्न और जल प्रस्तुत है; यह उनके लिये सुखपूर्वक अक्षय तृप्तिका साधन हो।'

भोजनमें मन लगाकर पहले मधुर रस ग्रहण करे, बीचमें नमकीन और खट्टी वस्तुएँ खाय। उसके बाद कड़वे और तिक्त पदार्थोंको ग्रहण करे। पहले रसदार चीजें खाय, बीचमें गरिष्ठ अन्न भोजन करे और अन्तमें पुनः द्रव पदार्थ ग्रहण करे। इससे मनुष्य कभी बल और आरोग्यसे हीन नहीं होता। संन्यासीको आठ ग्रास, वनवासीको सोलह ग्रास और गृहस्थको बत्तीस ग्रास भोजन करने चाहिये। ब्रह्मचारीके लिये ग्रासोंकी कोई नियत संख्या नहीं है। द्विजको उचित है कि वह शास्त्र-विरुद्ध भक्ष्य-भोज्यादि पदार्थोंका सेवन न करे। सूखे और बासी अन्नको भोजन करनेके योग्य नहीं बतलाया गया है। भोजनके पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे आचमन करके एकाग्रचित्त हो हाथ और मुँहकी शुद्धि करे। मिट्टी और जलसे खूब मल-मलकर धोये। तदनन्तर कुल्ला करके दाँतोंके भीतरी भागका— उनकी सन्धियोंका [तिनके आदिकी सहायतासे] शोधन करे। फिर आचमन करके पात्रको हटा दे और कुछ भीगे हुए हाथसे मुख तथा नासिकाका स्पर्श करे। हथेलीसे नाभिका स्पर्श करे। तत्पश्चात् शुद्ध एवं शान्तचित्त होकर आसनपर बैठे और अपने इष्टदेवका स्मरण करे। उसके बाद पुनः आचमन करके ताम्बूल भक्षण करे। भोजन करके बैठा हुआ पुरुष विश्रामके बाद कुछ देरतक ब्रह्मका चिन्तन करे। दिनके छठे और सातवें भागको सन्मार्ग आदिके अविरुद्ध उत्तम शास्त्र आदिके द्वारा मनोरञ्जन और इतिहास-पुराणोंका पाठ करके व्यतीत करे। आठवें भागमें जीविकाके कार्यमें संलग्न रहे। उसके बाद पुनः बाह्य-सन्ध्या—सायं-सन्ध्याका समय हो जाता है।

जब सूर्य अस्ताचलके शिखरपर पहुँच जायँ, तब हाथ-पैर धोकर हाथमें कुश ले एकाग्रचित्त हो सायंकालीन सन्ध्योपासना करे। सूर्यके रहते-रहते ही पश्चिम सन्ध्या प्रारम्भ करे। उस समय सूर्यका आधा मण्डल ही अस्त होना चाहिये। प्राणायाम करके जल-देवता-सम्बन्धी मन्त्रोंसे मार्जन करे। सायंकालमें **'अग्निश्च मा मन्युश्च'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा और सबेरे **'सूर्यश्च मा मन्युश्च'** इत्यादि मन्त्रके द्वारा आचमन करे। सायंसन्ध्यामें पश्चिमाभिमुख बैठकर मौन तथा एकाग्र-चित्त हो रुद्राक्षकी माला ले तारोंके उदय होनेतक प्रणव और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्रका जप करे। फिर वरुण-देवतासम्बन्धिनी ऋचाओंसे सूर्योपस्थान करके प्रदक्षिणा करते हुए प्रत्येक दिशा और दिक्पालको पृथक्-पृथक् नमस्कार करे। इस प्रकार सायंकालकी सन्ध्योपासना करके अग्निहोत्र करनेके पश्चात् कुटुम्बके अन्य लोगोंके साथ भोजन करे। भोजनकी मात्रा अधिक नहीं होनी चाहिये। भोजनके कुछ काल बाद शयन करे। सायंकाल और प्रातःकालमें भी बलिवैश्वदेव करना चाहिये। स्वयं भोजन न करना हो तो भी बलिवैश्वदेवका अनुष्ठान सदा ही करे; अन्यथा पापका भागी होना पड़ता है। यदि घरपर कोई अतिथि आ जाय तो गृहस्थ पुरुष अपनी शक्तिके अनुसार उसका यथोचित सत्कार करे। रातमें भोजनके पश्चात् हाथ-पैर आदि धोकर गृहस्थ मनुष्य कोमल शय्यापर सोनेके लिये जाय। शय्यापर तकियेका होना आवश्यक है। अपने घरमें सोना हो तो पूर्व दिशाकी ओर सिरहाना करे और ससुरालमें सोना हो तो दक्षिण दिशाकी ओर। परदेशमें गया हुआ मनुष्य पश्चिम दिशाकी ओर सिर करके सोये। उत्तरकी ओर सिरहाना करके कभी नहीं सोना चाहिये। सोनेके पहले रात्रिसूक्तका जप और सुखपूर्वक शयन करनेवाले देवताओंका स्मरण करे। फिर एकाग्रचित्त होकर अविनाशी भगवान् विष्णुको नमस्कार करके रात्रिमें शयन करे। अगस्त्य, माधव, महाबली मुचुकुन्द, कपिल तथा आस्तीक मुनि—ये पाँचों सुखपूर्वक शयन करनेवाले हैं। माङ्गलिक वस्तुओंसे भरे हुए जलपूर्ण कलशको सिरहानेकी ओर रखकर वरुण-देवता-सम्बन्धी वैदिक मन्त्रोंसे अपनी रक्षा करके सोये। ऋतुकालमें पत्नीके साथ समागम करे। सदा अपनी स्त्रीसे ही अनुराग रखे। पत्नीके स्वीकार करनेपर रतिकी इच्छासे उसके पास जाय। पर्वके दिन उसका स्पर्श न करे। रात्रिके पहले और पिछले प्रहरको वेदाभ्यासमें व्यतीत करे और बीचके दोनों प्रहरोंमें शयन करे। ऐसा

करनेवाला पुरुष ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। ऊपर जो कुछ बतलाया गया, वह सारा कर्म गृहस्थको प्रतिदिन करना चाहिये। यही गृहस्थाश्रमका लक्षण है। सम्पूर्ण वेदोक्त सदाचारसे युक्त यह गृहस्थ-आश्रमका लक्षण मैंने तुम्हें संक्षेपसे बताया है। अब पतिव्रताओंके लक्षण सुनो।

पतिव्रता स्त्रियोंके लक्षण एवं सदाचारका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! मैं सतियोंके उत्तम व्रतका वर्णन करता हूँ, सुनो। पति कुरूप हो या दुराचारी, अच्छे स्वभावका हो या बुरे स्वभावका, रोगी, पिशाच, क्रोधी, बूढ़ा, चालाक, अंधा, बहरा, भयंकर स्वभावका, दरिद्र, कंजूस, घृणित, कायर, धूर्त अथवा परस्त्रीलम्पट ही क्यों न हो, सती-साध्वी स्त्रीके लिये वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा देवताकी भाँति पूजनीय है। स्त्रीको कभी किसी प्रकार भी अपने स्वामीके साथ अनुचित बर्ताव नहीं करना चाहिये। स्त्री बालिका हो या युवती अथवा वृद्धा ही क्यों न हो, उसे अपने घरपर भी कोई काम स्वतन्त्रतासे नहीं करना चाहिये। अहंकार और काम-क्रोधका सदा ही परित्याग करके केवल अपने पतिका ही मनोरञ्जन करना उचित है, दूसरे पुरुषका नहीं। परपुरुषोंके कामभावसे देखनेपर, प्रिय लगनेवाले वचनोंद्वारा प्रलोभनमें डालनेपर अथवा जनसमूहमें दूसरोंके शरीरसे छू जानेपर भी जिसके मनमें कोई विकार नहीं होता तथा जो परपुरुषद्वारा धनका लोभ दिखाकर लुभायी जानेपर भी मन, वाणी, शरीर और क्रियासे कभी पराये पुरुषका सेवन नहीं करती, वही सती है। वह सम्पूर्ण लोकोंकी शोभा है। सती स्त्री दूतके मुखसे प्रार्थना करनेपर, बलपूर्वक पकड़ी जानेपर भी दूसरे पुरुषका सेवन नहीं करती। जो पराये पुरुषोंके देखनेपर भी स्वयं उनकी ओर नहीं देखती, हँसनेपर भी नहीं हँसती तथा औरोंके बोलनेपर भी स्वयं उनसे नहीं बोलती, वह उत्तम लक्षणोंवाली स्त्री साध्वी— पतिव्रता है। रूप और यौवनसे सम्पन्न तथा संगीतकी कलामें निपुण सती-साध्वी स्त्री अपने-ही-जैसे योग्य पुरुषको देखकर भी कभी मनमें विकार नहीं लाती। जो सुन्दर, तरुण, रमणीय और कामिनियोंको प्रिय लगनेवाले परपुरुषकी भी कभी इच्छा नहीं करती, उसे महासती जानना चाहिये। पराया पुरुष देवता, मनुष्य अथवा गन्धर्व कोई भी क्यों न हो, वह सती स्त्रियोंको प्रिय नहीं होता। पत्नीको कभी भी ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये, जो पतिको अप्रिय जान पड़े। जो पतिके भोजन कर लेनेपर भोजन करती, उनके दुःखी होनेपर दुःखित होती, पतिके आनन्दमें ही आनन्द मानती, उनके परदेश चले जानेपर मलिन वस्त्र धारण करती, पतिके सो जानेपर सोती और पहले ही जग जाती, पतिकी मृत्यु हो जानेपर उनके शरीरके साथ ही चितामें जल जाती और दूसरे पुरुषको कभी भी अपने मनमें स्थान नहीं देती, उस स्त्रीको पतिव्रता जानना चाहिये।

पतिव्रता स्त्रीको अपने सास-ससुर तथा पतिमें विशेष भक्ति रखनी चाहिये; वह धर्मके कार्यमें सदा पतिके अनुकूल रहे, धन खर्च करनेमें संयमसे काम ले, सम्भोगकालमें संकोच न रखे और अपने शरीरको सदा पवित्र बनाये रखे। पतिकी मङ्गल-कामना करे, उनसे सदा प्रिय वचन बोले, माङ्गलिक कार्यमें संलग्न रहे, घरको सजाती रहे और घरकी प्रत्येक वस्तुको प्रतिदिन साफ-सुथरी रखनेकी चेष्टा करे। खेतसे, वनसे अथवा गाँवसे लौटकर जब पतिदेव घरपर आवें तो उठकर उनका स्वागत करे। आसन और जल देकर अभिनन्दन करे। बर्तन और अन्न साफ रखे। समयपर भोजन बनाकर दे। संयमसे रहे। अनाजको छिपाकर रखे। घरको झाड़-बुहारकर स्वच्छ बनाये रखे। गुरुजन, पुत्र, मित्र, भाई-बन्धु, काम करनेवाले सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाले भृत्य, दास-दासी, अतिथि-अभ्यागत, संन्यासी तथा ब्रह्मचारी लोगोंको आसन और भोजन देने, सम्मान करने और प्रिय वचन बोलनेमें तत्पर

रहे। मुख्य गृहिणीको सदा ही समय-समयपर उपर्युक्त व्यक्तियोंकी यथोचित सेवाके कार्यमें दक्ष होना चाहिये। पति घरका खर्च चलानेके लिये अपनी पत्नीके हाथमें जो द्रव्य दे, उससे घरकी सारी आवश्यकता पूर्ण करके पत्नी अपनी बुद्धिके द्वारा उसमेंसे कुछ बचा ले। पतिने दान करनेके लिये जो धन दिया हो, उसमेंसे लोभवश कुछ बचाकर न रखे। स्वामीकी आज्ञा लिये बिना अपने बन्धुओंको धन न दे। दूसरे पुरुषसे वार्तालाप, असन्तोष, पराये कार्योंकी चर्चा, अधिक हँसी, अधिक रोष और क्रोध उत्पन्न होनेके अवसरका सर्वथा त्याग करे। पतिदेव जो-जो पदार्थ न खायें, न पीयें और न मुँहमें डालें, वह सब पतिव्रता स्त्रीको भी छोड़ देना चाहिये। स्वामी परदेशमें हों तो स्त्रीके लिये तेल लगाकर नहाना, शरीरमें उबटन लगाना, दाँतोंमें मंजन लगाकर धोना, केशोंको सँवारना, उत्तम पदार्थ भोजन करना, अधिक समयतक कहीं बैठना, नये-नये वस्त्रोंको पहनना और शृङ्गार करना निषिद्ध है। राजन्! त्रेतासे लेकर प्रत्येक युगमें स्त्रियोंको प्रतिमास ऋतुधर्म होता है। उस समय पहले दिन चाण्डाल जातिकी स्त्रीके समान पत्नीका स्पर्श वर्जित है। दूसरे दिन वह ब्राह्मणकी हत्या करनेवाली स्त्रीके तुल्य अपवित्र मानी गयी है। तीसरे दिन उसे धोबिनके तुल्य बताया गया है। चौथे दिन स्नान करके वह शुद्ध होती है। रजस्वला स्त्री स्नान, शौच—जलसे होनेवाली शुद्धि, गाना, रोना, हँसना, यात्रा करना, अङ्गराग लगाना, उबटन लगाना, दिनमें सोना, दाँतन करना, मन या वाणीके द्वारा भी मैथुन करना तथा देवताओंका पूजन और नमस्कार करना छोड़ दे। पुरुषको भी चाहिये कि वह रजस्वला स्त्रीसे स्पर्श और वार्तालाप न करे तथा पूर्ण प्रयत्न करके उसके वस्त्रोंका भी संयोग न होने दे।

रजस्वला स्त्री स्नान करनेके पश्चात् पराये पुरुषकी ओर दृष्टि न डाले। सर्वप्रथम वह सूर्यदेवका दर्शन करे। उसके बाद अपने अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये ब्रह्मकूर्च—पञ्चगव्यका अथवा केवल दूधका पान करे। साध्वी स्त्री नियमपूर्वक शास्त्रोक्त विधिके अनुसार जीवन व्यतीत करे। आभूषणोंसे विभूषित होकर परम पवित्र भावसे स्वामीके प्रिय तथा हित-साधनमें संलग्न रहे। यदि स्त्री गर्भवती हो तो उसे नीचे लिखे हुए नियमोंसे रहना चाहिये। वह आत्मरक्षापूर्वक सुन्दर आभूषण धारण करके वास्तुपूजनमें तत्पर रहे। उसके मुखपर प्रसन्नता छायी रहे। बुरे आचार-विचारकी स्त्रियोंसे बातचीत न करे। सूपकी हवासे बचकर रहे। जिसके बच्चे हो-होकर मर जाते हों अथवा जो वन्ध्या हो, ऐसी स्त्रीके साथ संसर्ग न करे। गर्भिणी स्त्री दूसरेके घरका भोजन न करे। मनमें घृणा पैदा करनेवाली कोई वस्तु न देखे। डरावनी कथा न सुने। भारी और अत्यन्त गरम भोजन न करे। पहलेका किया हुआ भोजन जबतक अच्छी तरह पच न जाय, दुबारा भोजन न करे। इस विधिसे रहनेपर साध्वी स्त्री उत्तम पुत्र प्राप्त करती है; अन्यथा या तो गर्भ गिर जाता है, या उसका निरोध हो जाता है। पतिदेव जब किसी कार्यवश घरके भीतर प्रवेश करें, तो पतिव्रता स्त्री अङ्गराग आदिसे युक्त हो शुद्ध हृदयसे उनके पास जाय। तरुणी, सुन्दरी, पुत्रवती, ज्येष्ठा अथवा कनिष्ठा—कोई भी क्यों न हो, परोक्षमें या सामने अपनी किसी सौतकी गुणहीन होनेपर भी निन्दा न करे। मनमें राग-द्वेषजनित मत्सरता रहनेपर भी सौतोंको परस्पर एक दूसरीका अप्रिय नहीं करना चाहिये। स्त्री पराये पुरुषके नामोंका गान और पराये पुरुषके गुणोंका वर्णन न करे। पतिसे दूर न रहे। सदा अपने स्वामीके समीप ही निवास करे। निर्दिष्ट भूभागमें बैठकर सदा प्रियतमकी ओर ही मुख किये रहे। स्वच्छन्दतापूर्वक चारों दिशाओंकी ओर दृष्टि न डाले। पराये पुरुषका अवलोकन न करे। केवल पतिके मुखकमलको ही हाव-भावसे देखे। पतिदेव यदि कोई कथा करते हों तो स्त्री उसे बड़े आदरके साथ सुने। पति बातचीत करते हों तो स्वयं दूसरेसे बात न करे। यदि स्वामी बुलायें तो शीघ्र ही उनके पास चली जाय। पतिदेव उत्साहपूर्वक गीत गाते हों तो प्रसन्नचित्त होकर सुने। अपने प्रियतमके नृत्य करते समय उन्हें हर्षभरे नेत्रोंसे देखे। पतिको शास्त्र आदिमें चतुरता, विद्या और

कलामें प्रवीणता दिखलाते देख पत्नी आनन्दमें निमग्न हो जाय। पतिके समीप उद्वेग और व्यग्रतापूर्ण हृदय लेकर न ठहरे। उनके साथ प्रेमशून्य कलह न करे। स्वामी कलह करनेके योग्य नहीं हैं—ऐसा जानकर स्त्री कभी अपने लिये, अपने भाईके लिये या अपनी सौतके लिये क्रोधमें आकर उनसे कलह न करे। फटकारने, निन्दा करने और अत्यन्त ताड़ना देनेके कारण व्यथित होनेपर भी पत्नी अपने प्रियतमको भय छोड़कर गले लगाये। स्त्री जोर-जोरसे विलाप न करे, दूसरे लोगोंको न पुकारे और अपने घरसे बाहर न भागे। पतिसे कोई विरक्ति-सूचक वचन न कहे। सती स्त्री उत्सव आदिके समय यदि भाई-बन्धुओंके घर जाना चाहे, तो पतिकी आज्ञा लेकर किसी अध्यक्षके संरक्षणमें रहकर जाय। वहाँ अधिक कालतक निवास न करे। शीघ्र ही अपने घर लौट आये। यदि पति कहींकी यात्रा करते हों तो उस समय मङ्गलसूचक वचन बोले। 'न जाइये' कहकर पतिको न तो रोके और न यात्राके समय रोये ही।

पतिके परदेश जानेपर स्त्री कभी अङ्गराग न लगाये। केवल जीवन-निर्वाहके लिये प्रतिदिन कोई उत्तम कार्य करे। यदि स्वामी जीविकाका प्रबन्ध करके परदेशमें जायँ तो उनकी निश्चित की हुई जीविकासे ही गृहिणीको जीवन-निर्वाह करना चाहिये। पतिके न रहनेपर स्त्री सास-ससुरके समीप ही शयन करे, और किसीके नहीं। वह प्रतिदिन प्रयत्न करके पतिके कुशल-समाचारका पता लगाती रहे। स्वामीकी कुशल जाननेके लिये दूत भेजे तथा प्रसिद्ध देवताओंसे याचना करे। इस प्रकार जिसके पति परदेश गये हों, उस पतिव्रता स्त्रीको ऐसे ही नियमोंका पालन करना चाहिये। वह अपने अङ्गोंको न धोये। मैले कपड़े पहनकर रहे। बेंदी और अंजन न लगाये। गन्ध और मालाका भी त्याग करे। नख और केशोंका शृङ्गार न करे। दाँतोंको न धोये। प्रोषितभर्तृका स्त्रीके लिये पान चबाना और आलस्यके वशीभूत होना बड़ी निन्दाकी बात है। अधिक आलस्य करना, सदा नींद लेना, सर्वदा कलहमें रुचि रखना, जोर-जोरसे हँसना, दूसरोंसे हँसी-परिहास करना, पराये पुरुषोंकी चेष्टाका चिन्तन करना, इच्छानुसार घूमना, पर-पुरुषके शरीरको दबाना, एक वस्त्र पहनकर बाहर घूमना, निर्लज्जताका बर्ताव करना और बिना किसी आवश्यकताके व्यर्थ ही दूसरेके घर जाना—ये सब युवती स्त्रीके लिये पाप बताये गये हैं, जो पतिको दुःख देनेवाले होते हैं।

सती स्त्री घरके सब कार्य पूर्ण करके शरीरमें हल्दीकी उबटन लगाये। फिर शुद्ध जलसे सब अङ्गोंको धोकर सुन्दर शृङ्गार करे। उसके बाद अपने मुखकमलको प्रसन्न करके प्रियतमके समीप जाय। मन, वाणी और शरीरको संयममें रखनेवाली नारी ऐसे बर्तावसे इस लोकमें उत्तम कीर्ति पाती और परलोकमें पतिका सायुज्य प्राप्त करती है। देवताओंसहित सम्पूर्ण लोकोंमें पतिके समान दूसरा कोई देवता नहीं है। जब पतिदेवता सन्तुष्ट होते हैं, तो इच्छानुसार सम्पूर्ण भोगोंकी प्राप्ति कराते हैं और कुपित होनेपर सब कुछ हर लेते हैं। सन्तान, नाना प्रकारके भोग, शय्या, आसन, अद्भुत वस्त्र, माला, गन्ध, स्वर्गलोक तथा भाँति-भाँतिकी कीर्ति—ये सब पतिसे ही प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार मुनिवर मृगशृङ्ग धर्म, नय, नीति एवं गुणोंमें सबसे श्रेष्ठ सुवृत्ता आदि चारों पत्नियोंके साथ चिरकालतक अतिरात्र और वाजपेय आदि यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहे। वे नियमपूर्वक संसारी सुख भोगते थे, तथापि उनका अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल था।

मृगशृङ्गके पुत्र मृकण्डु मुनिकी काशी-यात्रा, काशी-माहात्म्य तथा माताओंकी मुक्ति

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार गृहस्थाश्रममें निवास करते हुए महामुनि मृगशृङ्गकी पत्नी सुवृत्ताने समयानुसार एक पुत्रको जन्म दिया। इसके द्वारा पितृ-ऋणसे छुटकारा पाकर मुनिश्रेष्ठ मृगशृङ्गने अपनेको कृतार्थ माना और विधिपूर्वक नवजात शिशुका जातकर्म-संस्कार किया। वे परम बुद्धिमान् मुनि तीनों कालकी बातें जानते थे; अतः उन्होंने पुत्रके भावी कर्मके अनुसार उसका मृकण्डु नाम रखा। उसके शरीरमें मृगगण निर्भय होकर कण्डूयन करते थे— अपना शरीर खुजलाते या रगड़ते थे। इसीलिये पिताने उसका नाम मृकण्डु रख दिया। मृकण्डु मुनि उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर समस्त गुणोंके भंडार बन गये थे। उनका शरीर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी था। पिताके द्वारा उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे ब्रह्मचर्यका पालन करने लगे। उन्होंने पिताके पास रहकर सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया। तत्पश्चात् गुरु (पिता) की आज्ञा ले द्वितीय आश्रमको स्वीकार किया। मुद्गल मुनिकी कन्या मरुद्वतीके साथ मृकण्डु मुनिका विवाह हुआ। तदनन्तर मृगशृङ्ग मुनिकी दूसरी पत्नी कमलाने भी एक उत्तम पुत्र उत्पन्न किया। वह सदाचार, वेदाध्ययन, विद्या और विनयमें सबसे उत्तम निकला; इसलिये उसका नाम उत्तम रखा गया। पिताके उपनयन-संस्कार कर देनेपर उत्तम मुनिने भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके विधिपूर्वक विवाह किया। कमनीय केशकलाप और मनोहर रूपसे युक्त, कमलके समान विशाल नेत्र तथा कल्याणमय स्वभाववाली कण्व मुनिकी कन्या कुशाको उन्होंने पत्नीरूपमें ग्रहण किया। विमलाने भी सुमति नामसे विख्यात पुत्रको जन्म दिया। सुमति भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन करके गृहस्थ हुए। उनकी स्त्रीका नाम सत्या था। तत्पश्चात् सुरसाके गर्भसे भी एक पुत्रका जन्म हुआ, जिसका नाम सुव्रत था। सुरसाकुमार सुव्रतने भी सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन समाप्त करके द्वितीय आश्रममें प्रवेश किया। पृथुकी पुत्री प्रियंवदा सुव्रतकी धर्मपत्नी हुई। पिताने अपने सभी पुत्रोंसे पर्याप्त दक्षिणावाले यज्ञोंका अनुष्ठान करवाया। वे सभी पुत्र सेवा-शुश्रूषामें संलग्न हो प्रतिदिन पिताका प्रिय करते थे। उत्तम लक्षणोंवाली पुत्रवधुओं, वेदोंके पारगामी कल्याणमय पुत्रों तथा उत्तम गुणोंवाली धर्मपत्नियोंसे सेवित हो मृगशृङ्ग मुनि गृहस्थधर्मका पालन करने लगे। सुमति, उत्तम तथा महात्मा सुव्रतको भी पृथक्-पृथक् अनेक पुत्र हुए, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। माघ मास आनेपर मुनिवर मृगशृङ्ग अपनी धर्मपत्नियों, पुत्रवधुओं, पुत्रों तथा पौत्रोंके साथ प्रातःकाल स्नान करते थे। वे एक माघ भी कभी व्यर्थ नहीं जाने देते थे। माघ आनेपर स्नान, दान, शिवकी पूजा, व्रत और नियम—ये गृहस्थ-आश्रमके भूषण हैं। यह सोचकर वे द्विजश्रेष्ठ प्रत्येक माघमें प्रातःस्नान किया करते थे। इस प्रकार सांसारिक सुख-सौभाग्यका अनुभव करके उन महामुनिने अपनी धर्मपत्नियोंका भार पुत्रोंको सौंप दिया और गार्हपत्य अग्निको अपने आत्मामें स्थापित कर लिया। फिर पुत्रके पुत्रका मुख देख और अपने शरीरको अत्यन्त जराग्रस्त जानकर तपोनिधि मृगशृङ्गने तपस्या करनेके लिये तपोवनको प्रस्थान किया। वहाँ पत्ते चबाने, छोटे-छोटे तालाबोंमें जल पीने, संसारसे उद्विग्न होने तथा रेतीली भूमिमें निवास करनेके कारण वे मृगोंके समान धर्मका पालन करने लगे। मृगोंके झुंडमें चिरकालतक विचरण करनेके पश्चात् उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त कर लिया। वहाँ चार मुखोंवाले ब्रह्माजीने उनका अभिनन्दन किया। मुनिवर मृगशृङ्ग दिव्य सिंहासनपर विराजमान हुए और अपने द्वारा उपार्जित उपमारहित अक्षय लोकोंका सुख भोगने लगे। तदनन्तर एक समय प्रलयकालके बाद श्वेतवाराहकल्पमें वे पुनः ब्रह्माजीके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए। उस समय उनका नाम ऋभु हुआ और उन्होंने निदाघको कल्याणका उपदेश दिया।

शील और सदाचारसे सम्पन्न उनकी चारों पत्नियाँ पुत्रोंके आश्रयमें रहकर कुछ दिनोंतक कठोर व्रतका

पालन करती रहीं। तत्पश्चात् जीवनके अन्तिम भागमें बुढ़ापेके कारण उनके बाल सफेद हो गये। उनकी कमर झुक गयी। मुँहमें एक-ही-दो दाँत रह गये तथा इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ प्रायः नष्ट हो गयीं। मुनिश्रेष्ठ मृकण्डुके मरुद्वतीसे कोई सन्तान नहीं हुई। उन्होंने माताओंकी वैसी अवस्था देख मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया—'मैं माताओंको साथ ले स्त्रीसहित भगवान् शङ्करकी राजधानीमें जाऊँगा, जहाँ वे मुमूर्षु पुरुषोंके कानोंमें तारक-मन्त्रका उपदेश दिया करते हैं।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने काशीपुरीकी ओर प्रस्थान किया। वे मार्गमें काशीकी महिमाका इस प्रकार बखान करने लगे।

मृकण्डु बोले—जो माता, पिता और अपने बन्धुओं द्वारा त्याग दिये गये हैं, जिनकी संसारमें कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये काशीपुरी ही उत्तम गति है। जो जरावस्थासे ग्रस्त और नाना प्रकारके रोगोंसे व्याकुल हैं, जिनके ऊपर दिन-रात पग-पगपर विपत्तियोंका आक्रमण होता है, जो कर्मोंके बन्धनमें आबद्ध और संसारसे तिरस्कृत हैं, जिन्हें राशि-राशि पापोंने दबा रखा है, जो दरिद्रतासे परास्त, योगसे भ्रष्ट तथा तपस्या और दानसे वर्जित हैं, जिनके लिये कहीं भी गति नहीं है, उनके लिये काशीपुरी ही उत्तम गति है। जिन्हें भाई-बन्धुओंके बीच पग-पगपर मानहानि उठानी पड़ती हो, उनको एकमात्र भगवान् शिवका आनन्दकानन—काशीपुरी ही आनन्द प्रदान करनेवाला है। आनन्दकानन काशीमें निवास करनेवाले दुष्ट पुरुषोंको भी भगवान् शङ्करके अनुग्रहसे आनन्दजनित सुखकी प्राप्ति होती है। काशीमें विश्वनाथरूपी आगकी आँचसे सारे कर्ममय बीज भुन जाते हैं; अतः वह काशीतीर्थ जिनकी कहीं भी गति नहीं है, ऐसे पुरुषोंको भी उत्तम गति प्रदान करनेवाला है। वहाँ संसाररूपी सर्पसे डँसे हुए जीवोंको अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर भगवान् शङ्कर उनके कानोंमें तारक ब्रह्मका उपदेश देते हैं। कपिलदेवजीके बताये हुए योगानुष्ठानसे, सांख्यसे तथा व्रतोंके द्वारा भी मनुष्योंको जिस गतिकी प्राप्ति नहीं होती, उसे यह मोक्षभूमि काशीपुरी अनायास ही प्रदान करती है। यह काशीकी प्राप्ति ही योग है, यह काशीकी प्राप्ति ही तप है, यह काशीकी प्राप्ति ही दान है और यह काशीकी प्राप्ति ही शिवकी पूजा है। यह काशीकी प्राप्ति ही यज्ञ, यह काशीकी प्राप्ति ही कर्म, यह काशीकी प्राप्ति ही स्वर्ग और यह काशीकी प्राप्ति ही सुख है। काशीमें निवास करनेवाले मनुष्योंके लिये काम, क्रोध, मद, लोभ, अहङ्कार, मात्सर्य, अज्ञान, कर्म, जडता, भय, काल, बुढ़ापा, रजोगुण और विघ्न-बाधा क्या चीज हैं? ये उनका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

अपनी माताओंका मार्गजनित कष्ट दूर करनेके लिये इस प्रकारकी बातें करते हुए मृकण्डु मुनि धीरे-धीरे चलकर माताओंसहित काशीपुरीमें जा पहुँचे। वहाँ उन मुनिने बिना विलम्ब किये सबसे पहले मणिकर्णिकाके जलमें विधिपूर्वक वस्त्रसहित स्नान किया। तत्पश्चात् सन्ध्या आदि शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करके पवित्र हो उन्होंने चन्दन और कुशमिश्रित जलसे सम्पूर्ण देवताओं और ऋषियोंका तर्पण किया। फिर अमृतके समान स्वादिष्ट पकवान, शक्कर मिली हुई खीर तथा गोरससे सम्पूर्ण तीर्थ-निवासियोंको पृथक्-पृथक् तृप्त करके अन्नदान, धान्यदान, गन्ध, चन्दन, कपूर, पान और सुन्दर वस्त्र आदिके द्वारा दीनों एवं अनाथोंका सत्कार किया। उसके बाद भक्तिपूर्वक ढुण्ढिराज गणेशके शरीरमें घी और सिन्दूरका लेप किया और पाँच लड्डू चढ़ाकर आत्मीयजनोंको विघ्न-बाधाओंके आक्रमणसे बचाते हुए अन्तःक्षेत्रमें प्रवेश किया। वहाँ समस्त आवरण-देवताओंकी यथाशक्ति पूजा की। तदनन्तर महामना मृकण्डुने भगवान् विश्वनाथको नमस्कार और उनकी स्तुति करके माताओंके साथ विधिपूर्वक क्षेत्रोपवास किया। विश्वनाथजीके समीप उन्होंने जागकर रात बितायी और निर्मल प्रभात होनेपर एकाग्रचित्त हो मणिकर्णिकाके जलमें स्नान किया। सारा अनुष्ठान पूरा करके नियमोंका पालन करते हुए पवित्र हो वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंके साथ अपने नामसे एक शिवलिङ्गकी स्थापना की, जो सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाला है। उनकी चारों माताओंने भी

अपने-अपने नामसे एक-एक शिवलिङ्ग स्थापित किया। वे सभी लिङ्ग दर्शनमात्रसे मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। ढुण्ढिराज गणेशके आगे मृकण्ड्वीश्वर शिवका दर्शन करनेसे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध होते हैं और काशीका निवास भी सफल होता है। उस शिवलिङ्गके आगे सुवृत्ताद्वारा स्थापित सुवृत्तेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। उसके दर्शनसे मनुष्य कभी विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता तथा वह सदाचारी होता है। सुवृत्तेश्वरसे पूर्वदिशाकी ओर कमलाद्वारा स्थापित उत्तम शिवलिङ्ग है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। ढुण्ढिराज गणेशकी देहलीके पास विमलाद्वारा स्थापित विमलेश्वरका स्थान है। उस लिङ्गके दर्शनसे निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होती है। विमलेश्वरसे ईशानकोणमें सुरसाद्वारा स्थापित सुरसेश्वर नामक शिवलिङ्ग है। उसके दर्शनसे मनुष्य देवताओंका साम्राज्य प्राप्त करके काशीमें आकर मुक्त होगा। मणिकर्णिकासे पश्चिम मरुद्वतीद्वारा पूजित शिवलिङ्ग है, जिसके दर्शनमात्रसे मनुष्य फिर जन्म नहीं लेता।

इस प्रकार शिवलिङ्गोंकी स्थापना करके वे सब लोग एक वर्षतक काशीमें ठहरे रहे। बारम्बार उस विचित्र एवं पवित्र क्षेत्रका दर्शन करनेसे उन्हें तृप्ति नहीं होती थी। मृकण्डु मुनि एक वर्षतक प्रतिदिन तीर्थयात्रा करते रहे, किन्तु वहाँके सम्पूर्ण तीर्थोंका पार न पा सके; क्योंकि काशीपुरीमें पग-पगपर तीर्थ हैं। एक दिन मृकण्डु मुनिकी माताएँ, जो पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न थीं, मणिकर्णिकाके जलमें दोपहरको स्नान करके शिवमन्दिरकी प्रदक्षिणा करने लगीं। इससे परिश्रमके कारण उन्हें थकावट आ गयी और वे सब-की-सब मरणासन्न होकर वहीं गिर पड़ीं। उस समय परम दयालु काशीपति भगवान् शिव बड़े वेगसे वहाँ आये और अपने हाथोंसे स्नेहपूर्वक उन सबके मस्तक पकड़कर एक ही साथ कानोंमें प्रणव-मन्त्रका उच्चारण किया।

★

मार्कण्डेयजीका जन्म, भगवान् शिवकी आराधनासे अमरत्व-प्राप्ति तथा मृत्युञ्जय-स्तोत्रका वर्णन

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! महामना मृकण्डु मुनिने विधिपूर्वक माताओंके और्ध्वदैहिक संस्कार करके दीर्घकालतक काशीमें ही निवास किया। भगवान् शङ्करके प्रसादसे उनकी धर्मपत्नी मरुद्वतीके गर्भसे एक महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसकी मार्कण्डेयके नामसे प्रसिद्धि हुई। श्रीमान् मार्कण्डेय मुनिने तपस्यासे भगवान् शिवकी आराधना करके उनसे दीर्घायु पाकर अपनी आँखोंसे अनेकों बार प्रलयका दृश्य देखा।

दिलीपने पूछा—मुनिवर! आपने पहले यह बात बतायी थी कि मृकण्डु मुनिके मरुद्वतीसे कोई सन्तान नहीं हुई, फिर भगवान् शिवके प्रसादसे उन्होंने किस प्रकार पुत्र प्राप्त किया? तथा वह पुत्र शङ्करजीके प्रसादसे कैसे दीर्घायु हुआ? इन सब बातोंको मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! सुनो, मैं मार्कण्डेयजीके जन्मका वृत्तान्त बतलाता हूँ। महामुनि मृकण्डुके कोई सन्तान नहीं थी; अतः उन्होंने अपनी पत्नीके साथ तपस्या और नियमोंका पालन करते हुए भगवान् शङ्करको सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट होनेपर पिनाकधारी शिवने पत्नीसहित मुनिसे कहा—'मुने! मुझसे कोई वर माँगो' तब मुनिने यह वर माँगा—'परमेश्वर! आप मेरे स्तवनसे सन्तुष्ट हैं; इसलिये मैं आपसे एक पुत्र चाहता हूँ। महेश्वर! मुझे अबतक कोई सन्तान नहीं हुई।'

भगवान् शङ्कर बोले—मुने! क्या तुम उत्तम गुणोंसे हीन चिरञ्जीवी पुत्र चाहते हो या केवल सोलह वर्षकी आयुवाला एक ही गुणवान् एवं सर्वज्ञ पुत्र पानेकी इच्छा रखते हो?

उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मृकण्डुने

कहा—'जगदीश्वर ! मैं गुणहीन पुत्र नहीं चाहता। उसकी आयु छोटी ही क्यों न हो, वह सर्वज्ञ होना चाहिये।'

भगवान् शङ्कर बोले—अच्छा, तो तुम्हें सोलह वर्षकी आयुवाला एक पुत्र प्राप्त होगा, जो परम धार्मिक, सर्वज्ञ, गुणवान्, लोकमें यशस्वी और ज्ञानका समुद्र होगा।

ऐसा कहकर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गये और मुनिवर मृकण्डु इच्छानुसार वरदान पाकर प्रसन्न हो अपने आश्रममें लौट आये। उनकी पत्नी मरुद्वती बहुत दिनोंके बाद गर्भवती हुई। मुनिने विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार किया था। तदनन्तर गर्भस्थ बालकमें चेष्टा उत्पन्न होनेसे पहले पुरुषकी वृद्धिके लिये उन्होंने किसी शुभ दिनको गृह्यसूत्रोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार अच्छे ढंगसे पुंसवन-संस्कार किया। जब आठवाँ मास आया, तब संस्कार-कर्मोंके ज्ञाता उन मुनीश्वरने गर्भके रूपकी समृद्धि और सुखपूर्वक सन्तानकी उत्पत्ति होनेके लिये सीमन्तोन्नयन-संस्कार किया। समय आनेपर मरुद्वतीके गर्भसे सूर्यके समान तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ। उस समय देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं, सम्पूर्ण दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं और सब ओरसे प्राणियोंको तृप्त करनेवाली कल्याणमयी वाणी सुनायी देने लगी। बालककी शान्तिके लिये वेदव्यास आदि मुनि भी मृकण्डुके आश्रमपर पधारे। साक्षात् महामुनि वेदव्यासने बालकका जातकर्म-संस्कार कराया। तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन मुनिने नामकरण-संस्कार किया। उसके बाद नाना प्रकारके वेदोक्त मन्त्रों और आशीर्वादोंसे अभिनन्दन करके मुनियोंने बालककी रक्षाका शास्त्रीय उपाय किया। फिर मृकण्डु मुनिके द्वारा पूजित हो वे सब लोग लौट गये।

उस समय नगर और प्रान्तके लोग हर्षमें भरकर आपसमें कहते थे—'अहो ! इस बालकका अद्भुत रूप है ! अद्भुत तेज है ! और समस्त अङ्गोंका लक्षण भी अद्भुत है। मरुद्वतीके सौभाग्यसे साक्षात् भगवान् शङ्कर ही इस बालकके रूपमें प्रकट हुए हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है। चौथे महीनेमें पिताने पुत्रको घरसे बाहर निकाला। छठे महीनेमें उसका अन्नप्राशन कराया। फिर ढाई वर्षकी अवस्थामें चूडाकर्म करके श्रवण नक्षत्रमें कर्णवेध किया। तदनन्तर कर्मोंके ज्ञाता मृकण्डु मुनिने बालकके ब्रह्मतेजकी वृद्धिके लिये पाँचवें वर्षकी अवस्थामें उसे यज्ञोपवीत दे दिया। फिर उपाकर्म करके विद्वान् मुनिने बालकको वेद पढ़ाया। उसने अङ्ग, उपाङ्ग, पद तथा क्रमसहित सम्पूर्ण वेदोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया। वह बालक बड़ा शक्तिशाली था। गुरु तो उसके साक्षीमात्र थे। उसने विनय आदि गुणोंको प्रकट करते हुए गुरुमुखसे समस्त विद्याओंको ग्रहण किया। वह भिक्षाके अन्नसे जीवन-निर्वाह करता हुआ प्रतिदिन माता-पिताकी सेवामें संलग्न रहता था, बुद्धिमान् मार्कण्डेयकी आयुका सोलहवाँ वर्ष प्रारम्भ होनेपर मृकण्डु मुनिका हृदय शोकसे कातर हो उठा। उनकी सम्पूर्ण इन्द्रियोंमें व्याकुलता छा गयी। वे दीनतापूर्वक विलाप करने लगे। मार्कण्डेयने पिताको अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करते देख पूछा—'तात ! आपके शोक-मोहका क्या कारण है ?' मार्कण्डेयके मधुर वचन सुनकर मृकण्डुने अपने शोकका युक्तियुक्त कारण बताया।

मृकण्डु बोले—बेटा ! पिनाकधारी भगवान् शङ्करने तुम्हें सोलह वर्षकी ही आयु दी है। उसकी समाप्तिका समय अब आ पहुँचा है; इसीलिये मुझे शोक हो रहा है।

पिताका यह कथन सुनकर मार्कण्डेयने कहा—'पिताजी ! आप मेरे लिये कदापि शोक न कीजिये। मैं ऐसा यत्न करूँगा, जिससे अमर हो जाऊँ। महादेवजी सबको मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाले और कल्याणस्वरूप हैं। वे मृत्युको जीतनेवाले, विकराल नेत्रधारी, सर्वज्ञ, सत्पुरुषोंको सब कुछ देनेवाले, कालके भी काल, महाकालरूप और कालकूट विषको भक्षण करनेवाले हैं। मैं उन्हींकी आराधना करके अमरत्व प्राप्त करूँगा।' पुत्रकी यह बात सुनकर माता-पिताको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने सारा शोक छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बेटा ! तुमने हम दोनोंका शोक नष्ट करनेके लिये भगवान् मृत्युञ्जयकी आराधनारूप महान् उपायका

प्रतिपादन किया है। तात ! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। उनसे बढ़कर दूसरा कोई भी हितैषी नहीं है। जो बात मनकी कल्पनामें भी नहीं आ सकती, उसे भी भगवान् शङ्कर सिद्ध कर देते हैं। वे कालका भी संहार करनेवाले हैं। बेटा ! क्या तुमने नहीं सुना है, पूर्वकालमें कालपाशसे बँधे हुए श्वेतकेतुकी महादेवजीने किस प्रकार रक्षा की ? उन्होंने ही समुद्रमन्थनसे प्रकट हुए प्रलयकालीन अग्निके समान भयङ्कर हालाहल विषका पान करके तीनों लोकोंको बचाया था। जिसने तीनों लोकोंकी सम्पत्ति हड़प ली थी, उस महान् अभिमानी जलंधरको अपने चरणोंकी अङ्गुष्ठरेखासे प्रकट हुए चक्रद्वारा मौतके घाट उतार दिया था। ये वही भगवान् धूर्जटि हैं, जिन्होंने श्रीविष्णुको बाण बनाकर एक ही बाणके प्रहारसे उत्पन्न हुई आगकी लपटोंसे दैत्योंके तीनों पुरोंको फूँक डाला था। अन्धकासुर तीनों लोकोंका ऐश्वर्य पाकर विवेकशून्य हो गया था, किन्तु उसे भी महादेवजीने अपने त्रिशूलकी नोकपर रखकर दस हजार वर्षोंतक सूर्यकी किरणोंमें सुखाया। केवल दृष्टि डालनेमात्रसे तीनों लोकोंको जीत लेनेवाले प्रबल कामदेवको उन्होंने ब्रह्मा आदि देवताओंके देखते-देखते जलाकर भस्म कर डाला—अनङ्गकी पदवीको पहुँचा दिया। भगवान् शिव ब्रह्मा आदि देवताओंके एकमात्र कर्ता, मेघरूपी वृषभपर सवारी करनेवाले, अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले, सम्पूर्ण विश्वके आश्रय और जगत्की रक्षाके लिये दिव्य मणि हैं। बेटा ! तुम उन्हींकी शरणमें जाओ।'

इस प्रकार माता-पिताकी आज्ञा पाकर मार्कण्डेयजी दक्षिण-समुद्रके तटपर चले गये और वहाँ विधिपूर्वक अपने ही नामसे एक शिवलिङ्ग स्थापित किया। तीनों समय स्नान करके वे भगवान् शिवकी पूजा करते और पूजाके अन्तमें स्तोत्र पढ़कर नृत्य करते थे। उस स्तोत्रसे एक ही दिनमें भगवान् शङ्कर सन्तुष्ट हो गये। मार्कण्डेयजीने बड़ी भक्तिके साथ उनका पूजन किया। जिस दिन उनकी आयु समाप्त होनेवाली थी, उस दिन शिवजीकी पूजामें संलग्न हो वे ज्यों ही स्तुति करनेको उद्यत हुए, उसी समय मृत्युको साथ लिये काल उन्हें लेनेके लिये आ पहुँचा। उसके गोलाकार नेत्र किनारेकी ओरसे लाल-लाल दिखायी दे रहे थे। साँप और बिच्छू ही उसके रोम थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ोंके कारण उसका मुख अत्यन्त विकराल जान पड़ता था। वह काजलके समान काला था। समीप आकर कालने उनके गलेमें फंदा डाल दिया। गलेमें बहुत बड़ा फंदा लग जानेपर मार्कण्डेयजीने कहा—'महामते काल ! मैं जबतक जगदीश्वर शिवके मृत्युञ्जय नामक महास्तोत्रका पाठ पूरा न कर लूँ, तबतक मेरी प्रतीक्षा करो। मैं शिवजीकी स्तुति किये बिना कहीं नहीं जाता। भोजन और शयनतक नहीं करता। यह मेरा निश्चित व्रत है। संसारमें जीवन, स्त्री, राज्य तथा सुख भी मुझे उतना प्रिय नहीं है, जितना कि यह शिवजीका स्तोत्र है। यदि मैंने इस विषयमें कोई असत्य बात न कही हो तो इस सत्यके प्रभावसे भगवान् महेश्वर सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

यह सुनकर कालने मार्कण्डेयजीसे हँसते-हँसते कहा—'ब्रह्मन् ! मालूम होता है तुमने पूर्वकालसे निश्चित की हुई बड़े-बूढ़ोंकी यह बात नहीं सुनी है—जो मूढ़बुद्धि मानव आयुके प्रथम भागमें ही धर्मका अनुष्ठान नहीं करता, वह वृद्ध होनेपर साथियोंसे बिछुड़े हुए राहीकी भाँति पश्चात्ताप करता है। आठ महीनोंमें ऐसा उपाय कर लेना चाहिये, जिससे वर्षाकालके चार महीने सुखसे बीतें। दिनमें ही वह काम पूरा कर ले, जिससे रातमें सुखसे रहे। पहली अवस्थामें ही ऐसा कार्य कर ले, जिससे बुढ़ापेमें सुखसे रहे। जीवनभर ऐसा कार्य करता रहे, जिससे मरनेके बाद सुख हो। जो कार्य कल करना हो, उसे आज ही कर ले। जिसे अपराह्णमें करना हो, उसे पूर्वाह्णमें ही कर डाले। काल इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करता कि इस पुरुषका काम पूरा हुआ है या नहीं। यह कार्य कर लिया, यह करना है और इस कार्यका कुछ अंश हो गया है तथा कुछ बाकी है—इस प्रकारकी इच्छाएँ करते हुए पुरुषको काल सहसा आकर दबोच लेता है। जिसका काल नहीं आया है, वह सैकड़ों बाणोंसे बिंध जानेपर भी नहीं मरता तथा जिसका काल

आ पहुँचा है, वह कुशके अग्रभागसे छू जानेपर भी जीवित नहीं रहता। मैं हजारों चक्रवर्ती राजाओं और सैकड़ों इन्द्रोंको भी अपना ग्रास बना चुका हूँ। अतः इस विषयमें तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये।'

जिसका प्रयास कभी विफल नहीं होता, उस कालके उपर्युक्त वचन सुनकर शिवजीकी स्तुतिमें तत्पर रहनेवाले मार्कण्डेयजीने कहा—'काल! भगवान् शिवकी स्तुतिमें लगे रहनेवाले पुरुषोंके कार्यमें जो लोग विघ्न डालते हैं, वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं; इसीलिये मैं तुम्हें मना करता हूँ। जैसे राजाके सिपाहियोंपर राजा ही शासन कर सकता है, दूसरा कोई नहीं, उसी प्रकार शिवजीके भक्तोंका परमेश्वर शिव ही शासन कर सकते हैं। भगवान् शङ्करके सेवक पर्वतोंको भी विदीर्ण कर डालते हैं, समुद्रोंको भी पी जाते हैं तथा पृथ्वी और अन्तरिक्षको भी हिला देते हैं। इतना ही नहीं, वे ब्रह्मा और इन्द्रको भी तिनकेके समान समझते हैं। भला उनके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है! भगवान् शिवके भक्तोंपर मृत्यु, ब्रह्मा, यमराज, यमदूत तथा दूसरे कोई भी अपना प्रभुत्व नहीं स्थापित कर सकते। काल! क्या तुमने मनीषी पुरुषोंका यह वचन नहीं सुना है कि शिवभक्त मनुष्योंपर कहीं भी आपत्ति नहीं आती। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता क्रुद्ध हो जायँ, तो भी वे उन्हें मारनेकी शक्ति नहीं रखते।'

मार्कण्डेयजीके इस प्रकार फटकारनेपर भगवान् काल आँखें फाड़-फाड़कर उनकी ओर देखने लगे, मानो तीनों लोकोंको निगल जायँगे। वे क्रोधमें भरकर बोले—'ओ दुर्बुद्धि ब्राह्मण! गङ्गाजीमें जितने बालूके कण हैं, उतने ब्रह्माओंका इस कालने संहार कर डाला है। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता। मेरा बल और पराक्रम देखो, मैं तुम्हें अपना ग्रास बनाता हूँ; तुम इस समय जिनके दास बने बैठे हो, वे महादेव मुझसे तुम्हारी रक्षा करें तो सही।'

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! जैसे राहु चन्द्रमाको ग्रस लेता है, उसी प्रकार गर्जना करते हुए कालने महामुनि मार्कण्डेयको हठपूर्वक ग्रसना आरम्भ किया। उसी समय परमेश्वर शिव उस लिङ्गसे सहसा प्रकट हो गये। उनकी अवस्था, उनका रूप—सब कुछ अवर्णनीय था। मस्तकपर अर्धचन्द्राकार मुकुट शोभा पा रहा था। हुंकार भरकर मेघके समान प्रचण्ड गर्जना करते हुए उन्होंने तुरंत ही मृत्युकी छातीमें लात मारी। मृत्युदेव उनके चरण-प्रहारसे भयभीत हो दूर जा पड़े। भयंकर आकारवाले कालको दूर पड़ा देख मार्कण्डेयजीने पुनः उस स्तोत्रसे भगवान् शङ्करका स्तवन किया—

कैलासके शिखरपर जिनका निवासगृह है, जिन्होंने मेरुगिरिका धनुष, नागराज वासुकिकी प्रत्यञ्चा और भगवान् विष्णुको अग्निमय बाण बनाकर तत्काल ही दैत्योंके तीनों पुरोंको दग्ध कर डाला था, सम्पूर्ण देवता जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

मन्दार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन—इन पाँच दिव्य वृक्षोंके पुष्पोंसे सुगन्धित युगल चरण-कमल जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जिन्होंने अपने ललाटवर्ती नेत्रसे प्रकट हुई आगकी ज्वालामें कामदेवके शरीरको भस्म कर डाला था, जिनका श्रीविग्रह सदा भस्मसे विभूषित रहता है, जो भव—सबकी उत्पत्तिके कारण होते हुए भी भव—संसारके नाशक हैं तथा जिनका कभी विनाश नहीं होता, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

जो मतवाले गजराजके मुख्य चर्मकी चादर ओढ़े परम मनोहर जान पड़ते हैं, ब्रह्मा और विष्णु भी जिनके चरण-कमलोंकी पूजा करते हैं तथा जो देवताओं और सिद्धोंकी नदी गङ्गाकी तरङ्गोंसे भीगी हुई शीतल जटा धारण करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा?

गेंडुल मारे हुए सर्पराज जिनके कानोंमें कुण्डलका काम देते हैं, जो वृषभपर सवारी करते हैं, नारद आदि मुनीश्वर जिनके वैभवकी स्तुति करते हैं, जो समस्त भुवनोंके स्वामी, अन्धकासुरका नाश करनेवाले, आश्रितजनोंके लिये कल्पवृक्षके समान और यमराजको

भी शान्त करनेवाले हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो यक्षराज कुबेरके सखा, भग देवताकी आँख फोड़नेवाले और सर्पोंके आभूषण धारण करनेवाले हैं, जिनके श्रीविग्रहके सुन्दर वामभागको गिरिराजकिशोरी उमाने सुशोभित कर रखा है, कालकूट विष पीनेके कारण जिनका कण्ठभाग नीले रंगका दिखायी देता है, जो एक हाथमें फरसा और दूसरेमें मृग लिये रहते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो जन्म-मरणके रोगसे ग्रस्त पुरुषोंके लिये औषधरूप हैं, समस्त आपत्तियोंका निवारण और दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले हैं, सत्त्व आदि तीनों गुण जिनके स्वरूप हैं, जो तीन नेत्र धारण करते, भोग और मोक्षरूपी फल देते तथा सम्पूर्ण पापराशिका संहार करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो भक्तोंपर दया करनेवाले हैं, अपनी पूजा करनेवाले मनुष्योंके लिये अक्षय निधि होते हुए भी जो स्वयं दिगम्बर रहते हैं, जो सब भूतोंके स्वामी, परात्पर, अप्रमेय और उपमारहित हैं, पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और चन्द्रमाके द्वारा जिनका श्रीविग्रह सुरक्षित है, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

जो ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण विश्वकी सृष्टि करते, फिर विष्णुरूपसे सबके पालनमें संलग्न रहते और अन्तमें सारे प्रपञ्चका संहार करते हैं, सम्पूर्ण लोकोंमें जिनका निवास है तथा जो गणेशजीके पार्षदोंसे घिरकर दिन-रात भाँति-भाँतिके खेल किया करते हैं, उन भगवान् चन्द्रशेखरकी मैं शरण लेता हूँ। यमराज मेरा क्या करेगा ?

रु अर्थात् दुःखको दूर करनेके कारण जिन्हें रुद्र कहते हैं, जो जीवरूपी पशुओंका पालन करनेसे पशुपति, स्थिर होनेसे स्थाणु, गलेमें नीला चिह्न धारण करनेसे नीलकण्ठ और भगवती उमाके स्वामी होनेसे उमापति नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जिनके गलेमें काला दाग है, जो कलामूर्ति, कालाग्निस्वरूप और कालके नाशक हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जिनका कण्ठ नील और नेत्र विकराल होते हुए भी जो अत्यन्त निर्मल और उपद्रवरहित हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो वामदेव, महादेव, विश्वनाथ और जगद्गुरु नाम धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो देवताओंके भी आराध्यदेव, जगत्के स्वामी और देवताओंपर भी शासन करनेवाले हैं, जिनकी ध्वजापर वृषभका चिह्न बना हुआ है, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो अनन्त, अविकारी, शान्त, रुद्राक्षमालाधारी और सबके दुःखोंका हरण करनेवाले हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो परमानन्दस्वरूप, नित्य एवं कैवल्यपद—मोक्षकी प्राप्तिके कारण हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

जो स्वर्ग और मोक्षके दाता तथा सृष्टि, पालन और संहारके कर्ता हैं, उन भगवान् शिवको मैं मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मृत्यु मेरा क्या कर लेगी ?

वसिष्ठजी कहते हैं—मार्कण्डेयजीके द्वारा किये हुए इस स्तोत्रका जो भगवान् शङ्करके समीप पाठ करेगा, उसे मृत्युसे भय नहीं होगा—यह मैं सत्य-सत्य कहता हूँ। बुद्धिमान् मार्कण्डेयके इस प्रकार स्तुति करनेपर महादेवजीने उन्हें अनेक कल्पोंतककी असीम आयु प्रदान की। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवजीके प्रसादसे अमरत्व पाकर महातेजस्वी मार्कण्डेयने बहुत-से प्रलयके

दृश्य देखे हैं। वरदान पानेके अनन्तर महामुनि मार्कण्डेयने पुनः अपने आश्रममें लौटकर माता-पिताको प्रणाम किया। फिर उन्होंने भी पुत्रका अभिनन्दन किया। उसके बाद मार्कण्डेयजी तीर्थयात्रामें प्रवृत्त होकर सदा इस पृथ्वीपर विचरने लगे। यमराज भी भगवान् शङ्करकी स्तुति करके अपने लोकमें चले गये। राजन्! मृगशृङ्ग मुनि सदा माघस्नान किया करते थे। उसीके माहात्म्यसे उनकी सन्तान इस प्रकार सौभाग्यशालिनी हुई।

माघ-स्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थ और नियम

राजा दिलीपने पूछा—मुने! आप इक्ष्वाकुवंशके गुरु और महात्मा हैं। आपको नमस्कार है। माघस्नानमें संलग्न रहनेवाले पुरुषोंके लिये कौन-कौनसे मुख्य तीर्थ हैं? उनका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। मैं सुनना चाहता हूँ।

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! माघ मास आनेपर बस्तीसे बाहर जहाँ-कहीं भी जल हो, उसे सब ऋषियोंने गङ्गाजलके समान बतलाया है; तथापि मैं तुमसे विशेषतः माघस्नानके लिये मुख्य-मुख्य तीर्थोंका वर्णन करता हूँ। पहला है—तीर्थराज प्रयाग। वह बहुत विख्यात तीर्थ है। प्रयाग सब तीर्थोंमें कामनाकी पूर्ति करनेवाला तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। उसके सिवा नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, उज्जैन, सरयू, यमुना, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्रका सङ्गम, गङ्गा-सागर-संगम, काञ्ची, त्र्यम्बक तीर्थ, सप्त-गोदावरीका तट, कालञ्जर, प्रभास, बदरिकाश्रम, महालय, ओंकारक्षेत्र, पुरुषोत्तम क्षेत्र—जगन्नाथपुरी, गोकर्ण, भृगुकर्ण, भृगुतुङ्ग, पुष्कर, तुङ्गभद्रा, कावेरी, कृष्णा-वेणी, नर्मदा, सुवर्णमुखरी तथा वेगवती नदी—ये सभी माघ मासमें स्नान करनेवालोंके लिये मुख्य तीर्थ हैं। गया नामक जो तीर्थ है, वह पितरोंके लिये तृप्तिदायक और हितकर है। ये भूमिपर विराजमान तीर्थ हैं, जिनका मैंने तुमसे वर्णन किया है। राजन्! अब मानस तीर्थ बतलाता हूँ, सुनो। उनमें भलीभाँति स्नान करनेसे मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है। सत्यतीर्थ, क्षमातीर्थ, इन्द्रिय-निग्रहतीर्थ, सर्वभूतदयातीर्थ, आर्जव (सरलता)-तीर्थ, दानतीर्थ, दम (मनोनिग्रह)-तीर्थ, सन्तोषतीर्थ, ब्रह्मचर्यतीर्थ, नियमतीर्थ, मन्त्र-जपतीर्थ, प्रियभाषणतीर्थ, ज्ञानतीर्थ, धैर्यतीर्थ, अहिंसातीर्थ, आत्मतीर्थ, ध्यानतीर्थ और शिवस्मरण-तीर्थ—ये सभी मानस तीर्थ हैं। मनकी शुद्धि सब तीर्थोंसे उत्तम तीर्थ है। शरीरसे जलमें डुबकी लगा लेना ही स्नान नहीं कहलाता। जिसने मन और इन्द्रियोंके संयममें स्नान किया है, वास्तवमें उसीका स्नान सफल है; क्योंकि वह पवित्र एवं स्नेहयुक्त चित्तवाला माना गया है।*

जो लोभी, चुगलखोर, क्रूर, दम्भी और विषय-लोलुप है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके भी पापी और मलिन ही बना रहता है; केवल शरीरकी मैल छुड़ानेसे मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनकी मैल धुलनेपर ही वह अत्यन्त निर्मल होता है। जलचर जीव जलमें ही जन्म लेते और उसीमें मर जाते हैं; किन्तु इससे वे स्वर्गमें नहीं

---

* सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः॥
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च। दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमेव च॥
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं नियमस्तीर्थमुच्यते। मन्त्राणां तु जपस्तीर्थं तीर्थं तु प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थमहिंसा तीर्थमेव च। आत्मतीर्थं ध्यानतीर्थं पुनस्तीर्थं शिवस्मृतिः॥
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं विशुद्धिर्मनसः पुनः। न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते॥
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिस्निग्धमना मतः।
(२३७। १२—१७)

जाते, क्योंकि उनके मनकी मैल नहीं धुली रहती। विषयोंमें जो अत्यन्त आसक्ति होती है, उसीको मानसिक मल कहते हैं। विषयोंकी ओरसे वैराग्य हो जाना ही मनकी निर्मलता है। दान, यज्ञ, तपस्या, बाहर-भीतरकी शुद्धि और शास्त्र-ज्ञान भी तीर्थ ही हैं। यदि अन्तःकरणका भाव निर्मल हो तो ये सब-के-सब तीर्थ ही हैं। जिसने इन्द्रिय-समुदायको काबूमें कर लिया है, वह मनुष्य जहाँ-जहाँ निवास करता है, वहीं-वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्कर आदि तीर्थ प्रस्तुत हैं। जो ज्ञानसे पवित्र, ध्यानरूपी जलसे परिपूर्ण और राग-द्वेषरूपी मलको धो देनेवाला है, ऐसे मानस तीर्थमें जो स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। राजन्! यह मैंने तुम्हें मानस तीर्थका लक्षण बतलाया है।

अब भूतलके तीर्थोंकी पवित्रताका कारण सुनो। जैसे शरीरके कुछ भाग परम पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वीके भी कुछ स्थान अत्यन्त पुण्यमय माने जाते हैं। भूमिके अद्भुत प्रभाव, जलकी शक्ति और मुनियोंके अनुग्रहपूर्वक निवाससे तीर्थोंको पवित्र बताया गया है; इसलिये भौम और मानस सभी तीर्थोंमें जो नित्य स्नान करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है। प्रचुर दक्षिणावाले अग्निष्टोम आदि यज्ञोंसे यजन करके भी मनुष्य उस फलको नहीं पाता, जो उसे तीर्थोंमें जानेसे प्राप्त होता है। जिसके दोनों हाथ, दोनों पैर और मन भलीभाँति काबूमें हों तथा जो विद्या, तप और कीर्तिसे सम्पन्न हो, वह तीर्थके फलका भागी होता है। जो प्रतिग्रहसे निवृत्त, जिस-किसी वस्तुसे भी संतुष्ट रहनेवाला और अहङ्कारसे मुक्त है, वह तीर्थके फलका भागी होता है। श्रद्धापूर्वक एकाग्रचित्त हो तीर्थोंकी यात्रा करनेवाला धीर पुरुष कृतघ्न हो तो भी शुद्ध हो जाता है; फिर जो शुद्ध कर्म करता है, उसकी तो बात ही क्या है? वह मनुष्य पशु-पक्षियोंकी योनिमें नहीं पड़ता, बुरे देशमें जन्म नहीं लेता, दुःखका भागी नहीं होता, स्वर्गलोकमें जाता और मोक्षका उपाय भी प्राप्त कर लेता है। अश्रद्धालु, पापात्मा, नास्तिक, संशयात्मा और केवल युक्तिवादका सहारा लेनेवाला—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थफलके भागी नहीं होते। जो शास्त्रोक्त तीर्थोंमें विधिपूर्वक विचरते और सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहन करते हैं, वे धीर मनुष्य स्वर्गलोकमें जाते हैं। तीर्थमें अर्घ्य और आवाहनके बिना ही श्राद्ध करना चाहिये। वह श्राद्धके योग्य काल हो या न हो, तीर्थमें बिना विलम्ब किये श्राद्ध और तर्पण करना उचित है; उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। अन्य कार्यके प्रसङ्गसे भी तीर्थमें पहुँच जानेपर स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे तीर्थयात्राका नहीं, परन्तु तीर्थस्नानका फल अवश्य प्राप्त होता है। तीर्थमें नहानेसे पापी मनुष्योंके पापकी शान्ति होती है। जिनका हृदय शुद्ध है, उन मनुष्योंको तीर्थ शास्त्रोक्त फल प्रदान करनेवाला होता है। जो दूसरेके लिये तीर्थयात्रा करता है, वह भी उसके पुण्यका सोलहवाँ अंश प्राप्त कर लेता है। कुशकी प्रतिमा बनाकर तीर्थके जलमें उसे स्नान करावे। जिसके उद्देश्यसे उस प्रतिमाको स्नान कराया जाता है, वह पुरुष तीर्थस्नानके पुण्यका आठवाँ भाग प्राप्त करता है। तीर्थमें जाकर उपवास करना और सिरके बालोंका मुण्डन कराना चाहिये। मुण्डनसे मस्तकके पाप नष्ट हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थमें पहुँचे, उसके पहले दिन उपवास करे और दूसरे दिन श्राद्ध एवं दान करे। तीर्थके प्रसङ्गमें मैंने श्राद्धको भी तीर्थ बतलाया है। यह स्वर्गका साधन तो है ही, मोक्षप्राप्तिका भी उपाय है।

इस प्रकार नियमका आश्रय ले माघ मासमें व्रत ग्रहण करना चाहिये और उस समय ऐसी ही तीर्थयात्रा करनी चाहिये। माघ मासमें स्नान करनेवाला पुरुष सब जगह कुछ-न-कुछ दान अवश्य करे। बेर, केला और आँवलेका फल, सेरभर घी, सेरभर तिल, पान, एक आढक (सोलह सेर) चावल, कुम्हड़ा और खिचड़ी—ये नौ वस्तुएँ प्रतिदिन ब्राह्मणोंको दान करनी चाहिये। जिस किसी प्रकार हो सके, माघ मासको व्यर्थ नहीं जाने देना चाहिये। किञ्चित् सूर्योदय होते-होते माघस्नान करना चाहिये। तथा माघ-स्नान करनेवाले पुरुषको यथाशक्ति शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करना चाहिये। विशेषतः ब्राह्मणों और साधु-संन्यासियोंको पकवान

भोजन कराना चाहिये। जाड़ेका कष्ट दूर करनेके लिये बोझ-के-बोझ सूखे काठ दान करे। रूईभरा अंगा, शय्या, गद्दा, यज्ञोपवीत, लाल वस्त्र, रूईदार रजाई, जायफल, लरौंग, बहुत-से पान, विचित्र-विचित्र कम्बल, हवासे बचानेवाले गृह, मुलायम जूते और सुगन्धित उबटन दान करे। माघस्नानपूर्वक घी, कम्बल, पूजनसामग्री, काला अगर, धूप, मोटी बत्तीवाले दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्यसे माघस्नानजनित फलकी प्राप्तिके लिये भगवान् माधवकी पूजा करे। माघ मासमें डुबकी लगानेसे सारे दोष नष्ट हो जाते हैं और अनेकों जन्मोंके उपार्जित सम्पूर्ण महापाप तत्काल विलीन हो जाते हैं। यह माघस्नान ही मङ्गलका साधन है, यही वास्तवमें धनका उपार्जन है तथा यही इस जीवनका फल है। भला, माघस्नान, मनुष्योंका कौन-कौन-सा कार्य नहीं सिद्ध करता ? वह पुत्र, मित्र, कलत्र, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्षका भी देनेवाला है।

★

माघ मासके स्नानसे सुव्रतको दिव्यलोककी प्राप्ति

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! सुनो, मैं तुमसे सुव्रतके चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह शुभ प्रसङ्ग श्रोताओंके समस्त पापोंको तत्काल हर लेनेवाला है। नर्मदाके रमणीय तटपर एक बहुत बड़ा अग्रहार—ब्राह्मणोंको दानमें मिला हुआ गाँव था। वह लोगोंमें अकलङ्क नामसे विख्यात था, उसमें वेदोंके ज्ञाता और धर्मात्मा ब्राह्मण निवास करते थे। वह धन-धान्यसे भरा था और वेदोंके गम्भीर घोषसे सम्पूर्ण दिशाओंको मुखरित किये रहता था। उस गाँवमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, जो सुव्रतके नामसे विख्यात थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था। वेदार्थके वे अच्छे ज्ञाता थे, धर्मशास्त्रोंके अर्थका भी पूर्ण ज्ञान रखते थे, पुराणोंकी व्याख्या करनेमें वे बड़े कुशल थे। वेदाङ्गोंका अभ्यास करके उन्होंने तर्कशास्त्र, ज्यौतिषशास्त्र, गजविद्या, अश्वविद्या, चौसठ कलाएँ, मन्त्रशास्त्र, सांख्यशास्त्र तथा योगशास्त्रका भी अध्ययन किया था। वे अनेक देशोंकी लिपियाँ और नाना प्रकारकी भाषाएँ जानते थे। यह सब कुछ उन्होंने धन कमानेके लिये ही सीखा था तथा लोभसे मोहित होनेके कारण अपने भिन्न-भिन्न गुरुओंको गुरुदक्षिणा भी नहीं दी थी। उपायोंके जानकार तो थे ही, उन्होंने उक्त उपायोंसे बहुत-कुछ धनका उपार्जन किया। उनके मनमें बड़ा लोभ था; इसलिये वे अन्यायसे भी धन कमाया करते थे। जो वस्तु बेचनेके योग्य नहीं है, उसको भी बेचते और जंगलकी वस्तुओंका भी विक्रय किया करते थे; उन्होंने चाण्डाल आदिसे भी दान लिया, कन्या बेची तथा गौ, तिल, चावल, रस और तेलका भी विक्रय किया। वे दूसरोंके लिये तीर्थमें जाते, दक्षिणा लेकर देवताकी पूजा करते, वेतन लेकर पढ़ाते और दूसरोंके घर खाते थे; इतना ही नहीं, वे नमक, पानी, दूध, दही और पक्वान्न भी बेचा करते थे। इस तरह अनेक उपायोंसे उन्होंने यत्नपूर्वक धन कमाया। धनके पीछे उन्होंने नित्य-नैमित्तिक कर्मतक छोड़ दिया था। न खाते थे, न दान करते थे। हमेशा अपना धन गिनते रहते थे कि कब कितना जमा हुआ। इस प्रकार उन्होंने एक लाख स्वर्णमुद्राएँ उपार्जित कर लीं। धनोपार्जनमें लगे-लगे ही वृद्धावस्था आ गयी और सारा शरीर जर्जर हो गया। कालके प्रभावसे समस्त इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। अब वे उठने और कहीं आने-जानेमें असमर्थ हो गये। धनोपार्जनका काम बंद हो जानेसे स्त्रीसहित ब्राह्मण देवता बहुत दुःखी हुए। इस प्रकार चिन्ता करते-करते जब उनका चित्त बहुत व्याकुल हो गया, तब उनके मनमें सहसा विवेकका प्रादुर्भाव हुआ।

सुव्रत अपने-आप कहने लगे—मैंने नीच प्रतिग्रहसे, नहीं बेचने योग्य वस्तुओंके बेचनेसे तथा तपस्या आदिका भी विक्रय करनेसे यह धन जमा किया है; फिर भी मुझे शान्ति नहीं मिली। मेरी तृष्णा अत्यन्त दुस्सह है। यह मेरु पर्वतके समान असंख्य सुवर्ण पानेकी अभिलाषा रखती है। अहो! मेरा मन महान्

कष्टदायक और सम्पूर्ण क्लेशोंका कारण है। सब कामनाओंको पाकर भी यह फिर दूसरी-दूसरी नवीन कामनाओंको प्राप्त करना चाहता है। बूढ़े होनेपर सिरके बाल पक जाते हैं, दाँत टूट जाते हैं, आँख और कानोंकी शक्ति भी क्षीण हो जाती है; किन्तु एक तृष्णा ही ऐसी है, जो उस समय भी नित्य तरुण होती जाती है। जिसके मनमें कष्टदायिनी आशा मौजूद है, वह विद्वान् होकर भी अज्ञानी है, अशान्त है, क्रोधी है और बुद्धिमान् होकर भी अत्यन्त मूर्ख है। आशा मनुष्योंको नष्ट करनेवाली है, उसे अग्निके समान जानना चाहिये; अतः जो विद्वान् सनातन पदको प्राप्त करना चाहता हो, वह आशाका परित्याग कर दे। बल, तेज, यश, विद्या, सम्मान, शास्त्रज्ञान तथा उत्तम कुलमें जन्म—इन सबको आशा शीघ्र ही नष्ट कर देती है। मैंने भी इसी प्रकार बहुत क्लेश उठाकर यह धन कमाया है। वृद्धावस्थाने मेरे शरीरको भी गला दिया और सारा बल भी हर लिया। अबसे मैं श्रद्धापूर्वक परलोक सुधारनेके लिये प्रयत्न करूँगा।

ऐसा निश्चय करके ब्राह्मण देवता जब धर्मके मार्गपर चलनेके लिये उत्सुक हुए, उसी दिन रातमें कुछ चोर उनके घरमें घुस आये। आधी रातका समय था; आततायी चोरोंने ब्राह्मणको खूब कसकर बाँध दिया और सारा धन लेकर चंपत हुए। चोरोंके द्वारा धन छिन जानेपर ब्राह्मण अत्यन्त दारुण विलाप करने लगा—'हाय! मेरा धन कमाना धर्म, भोग अथवा मोक्ष—किसी भी काममें नहीं आया। न तो मैंने उसे भोगा और न दान ही किया। फिर किसलिये धनका उपार्जन किया? हाय! हाय! मैंने अपने आत्माको धोखेमें डालकर यह क्या किया? सब जगहसे दान लिया और मदिरातकका विक्रय किया। पहले तो एक ही गौका प्रतिग्रह नहीं लेना चाहिये। यदि एकको ले लिया तो दूसरीका प्रतिग्रह लेना कदापि उचित नहीं है। उस गौको भी यदि बेच दिया जाय तो वह सात पीढ़ियोंको दग्ध कर देती है। इस बातको जानते हुए भी मैंने लोभवश ऐसे-ऐसे पाप किये हैं। धन कमानेके जोशमें मैंने एक दिन भी एकाग्रचित्त होकर अच्छी तरह सन्ध्योपासना नहीं की। अगर्भ (ध्यानरहित) या सगर्भ (ध्यानसहित) प्राणायाम भी नहीं किया। तीन बार जल पीकर और दो बार ओठ पोंछकर भलीभाँति आचमन नहीं किया। उतावली छोड़कर और हाथमें कुशकी पवित्री लेकर मैंने कभी गायत्रीमन्त्रका वाचिक, उपांशु अथवा मानस जप भी नहीं किया। जीवोंका बन्धन छुड़ानेवाले महादेवजीकी आराधना नहीं की। जो मन्त्र पढ़कर अथवा बिना मन्त्रके ही शिवलिङ्गके ऊपर एक पत्ता या फूल डाल देता है, उसकी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है; किन्तु मैंने कभी ऐसा नहीं किया। सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले भगवान् विष्णुको कभी सन्तुष्ट नहीं किया। पाँच प्रकारकी हत्याओंके पाप शान्त करनेवाले पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान नहीं किया। स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाले अतिथिके सत्कारसे भी वञ्चित रहा। संन्यासीका सत्कार करके उसे अन्नकी भिक्षा नहीं दी। ब्रह्मचारीको विधिपूर्वक अतिथिके योग्य भोजन नहीं दिया।

'मैंने ब्राह्मणोंको भाँति-भाँतिके सुन्दर एवं महीन वस्त्र नहीं अर्पण किये। सब पापोंका नाश करनेके लिये प्रज्वलित अग्निमें घीसे भीगे हुए मन्त्रपूत तिलोंका हवन नहीं किया। श्रीसूक्त, पावमानी ऋचा, मण्डल ब्राह्मण, पुरुषसूक्त और परमपवित्र शतरुद्रिय मन्त्रका जप नहीं किया। पीपलके वृक्षका सेवन नहीं किया। अर्क-त्रयोदशीका व्रत त्याग दिया। वह भी यदि रातको अथवा शुक्रवारके दिन पड़े, तो तत्काल सब पापोंको हरनेवाली है; किन्तु मैंने उसकी भी उपेक्षा कर दी। ठंढी छायावाले सघन वृक्षका पौधा नहीं लगाया। सुन्दर शय्या और मुलायम गद्देका दान नहीं किया। पंखा, छतरी, पान तथा मुखको सुगन्धित करनेवाली और कोई वस्तु भी ब्राह्मणको दान नहीं दी। नित्य श्राद्ध, भूतबलि तथा अतिथि-पूजा भी नहीं की। उपर्युक्त उत्तम वस्तुओंका जो लोग दान करते हैं, वे पुण्यके भागी मनुष्य यमलोकमें यमराजको, यमदूतोंको और यमलोककी यातनाओंको नहीं देखते; किन्तु मैंने यह भी नहीं किया। गौओंको ग्रास नहीं दिया। उनके शरीरको

कभी नहीं खुजलाया, कीचड़में फँसी हुई गौको, जो गोलोकमें सुख देनेवाली होती है, मैंने कभी नहीं निकाला। याचकोंको उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर कभी सन्तुष्ट नहीं किया। भगवान् विष्णुकी पूजाके लिये कभी तुलसीका वृक्ष नहीं लगाया। शालग्रामशिलाके तीर्थभूत चरणामृतको न तो कभी पीया और न मस्तकपर ही चढ़ाया। एक भी पुण्यमयी एकादशी तिथिको उपवास नहीं किया। शिवलोक प्रदान करनेवाली शिवरात्रिका भी व्रत नहीं किया। वेद, शास्त्र, धन, स्त्री, पुत्र, खेत और अटारी आदि वस्तुएँ इस लोकसे जाते समय मेरे साथ नहीं जायँगी। अब तो मैं बिलकुल असमर्थ हो गया; अतः कोई उद्योग भी नहीं कर सकूँगा। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ। हाय! मुझपर बड़ा भारी कष्ट आ पड़ा। मेरे पास परलोकका राहखर्च भी नहीं है।'

इस प्रकार व्याकुलचित्त होकर सुव्रतने मन-ही-मन विचार किया—'अहो! मेरी समझमें आ गया, आ गया, आ गया। मैं धन कमानेके लिये उत्तम देश काश्मीरको जा रहा था। मार्गमें भागीरथी गङ्गाके तटपर मुझे कुछ ब्राह्मण दिखायी दिये, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। वे प्रातःकाल माघस्नान करके बैठे थे। वहाँ किसी पौराणिक विद्वान्ने उस समय यह आधा श्लोक कहा था—

माघे निमग्नाः सलिले सुशीते
विमुक्तपापास्त्रिदिवं प्रयान्ति॥
(२३८।७८)

'माघ मासमें शीतल जलके भीतर डुबकी लगानेवाले मनुष्य पापमुक्त हो स्वर्गलोकमें जाते हैं।'

पुराणमेंसे मैंने इस श्लोकको सुना है। यह बहुत ही प्रामाणिक है; अतः इसके अनुसार मुझे माघका स्नान करना ही चाहिये।

मन-ही-मन ऐसा निश्चय करके सुव्रतने अपने मनको सुस्थिर किया और नौ दिनोंतक नर्मदाके जलमें माघ मासका स्नान किया। उसके बाद स्नान करनेकी भी शक्ति नहीं रह गयी। वे दसवें दिन किसी तरह नर्मदाजीमें गये और विधिपूर्वक स्नान करके तटपर आये। उस समय शीतसे पीड़ित होकर उन्होंने प्राण त्याग दिया। उसी समय मेरुगिरिके समान तेजस्वी विमान आया और माघस्नानके प्रभावसे सुव्रत उसपर आरूढ़ हो स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ एक मन्वन्तरतक निवास करके वे पुनः इस पृथ्वीपर ब्राह्मण हुए। फिर प्रयागमें माघस्नान करके उन्होंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया।

★

सनातन मोक्षमार्ग और मन्त्रदीक्षाका वर्णन

राजा दिलीपने पूछा—भगवन्! आपने वर्णाश्रमधर्म तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंसहित सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया। अब मैं सनातन मोक्ष-मार्गका वर्णन सुनना चाहता हूँ। आप उसे सुनानेकी कृपा करें। सम्पूर्ण मन्त्रोंमें कौन-सा ऐसा मन्त्र है, जो संसाररूपी रोगकी एकमात्र औषध हो? सब देवताओंमें कौन मोक्ष प्रदान करनेवाला श्रेष्ठ देवता है? यह सब बताइये।

वसिष्ठजी बोले—राजन्! प्राचीन कालकी बात है—यज्ञ और दानमें लगे रहनेवाले सम्पूर्ण महर्षियोंने ब्रह्माजीके पुत्र मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे प्रश्न किया—'भगवन्! हम किस मन्त्रसे परमपदको प्राप्त होंगे? महाभाग! यह हमें बताइये, हमारे ऊपर कृपा कीजिये।'

नारदजीने कहा—महर्षियो! पूर्वकालमें सनकादि योगियोंने एकान्तमें बैठे हुए ब्रह्माजीसे परम दुर्लभ मोक्ष-मार्गके विषयमें प्रश्न किया।

तब ब्रह्माजीने कहा—सम्पूर्ण योगीजन परम उत्तम मोक्ष-मार्गका वर्णन सुनें। बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मैं इस अद्भुत रहस्यका वर्णन करूँगा। समस्त देवता और तपस्वी ऋषि भी इस रहस्यको नहीं जानते। सृष्टिके आदिमें अविनाशी भगवान् नारायण मुझपर प्रसन्न हुए। उस समय मैंने उन पुराणपुरुषोत्तमसे पूछा—'भगवन्! किस मन्त्रसे मनुष्योंका इस संसारसे

उद्धार होगा ? इसको यथार्थरूपसे बतलाइये। इससे सब लोगोंका हित होगा। कौन-सा ऐसा मन्त्र है, जो बिना पुरश्चरणके ही एक बार उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्योंको परमपद प्रदान करता है।'

श्रीभगवान् बोले—महाभाग ! तुम सब लोकोंके हितैषी हो। तुमने यह बहुत उत्तम बात पूछी है। अतः मैं तुम्हें वह रहस्य बतलाता हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य मुझे प्राप्त कर सकते हैं। लक्ष्मी और नारायण—ये दो मन्त्ररत्न शरणागतजनोंकी रक्षा करते हैं। सब मन्त्रोंकी अपेक्षा ये शुभकारक हैं। एक बार स्मरण करनेमात्रसे ये परमपद प्रदान करते हैं। लक्ष्मीनारायण मन्त्र सब फलोंको देनेवाला है। जो मेरा भक्त नहीं है, वह इस मन्त्रको पानेका अधिकारी नहीं है। उसे यत्नपूर्वक दूर रखना चाहिये। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र तथा इतर जातिके मनुष्य भी यदि मेरे भक्त हों तो वे सभी इस मन्त्रको पानेके अधिकारी हैं। जो शरणमें आये हों, मेरे सिवा दूसरेका सेवन न करते हों तथा अन्य किसी साधनका आश्रय न लेते हों—ऐसे लोगोंको इस उत्तम मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। यह सबको शरण देनेवाला मन्त्र है। एक बार उच्चारण करनेपर भी यह आर्त्त प्राणियोंको शीघ्र फल प्रदान करनेवाला है। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी अथवा ज्ञानी—जो कोई भी एक बार मेरी शरणमें आ जाता है, उसे उक्त मन्त्रका पूरा फल मिलता है। जो भक्तिहीन, अभिमानी, नास्तिक, कृतघ्न एवं श्रद्धारहित हो, सुननेकी इच्छा न रखता हो तथा एक वर्षतक साथ न रह चुका हो—ऐसे मनुष्यको इस मन्त्रका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो काम-क्रोधसे मुक्त और दम्भ-लोभसे रहित हो तथा अनन्य भक्तियोगके द्वारा मेरी सेवा करता हो, उसे विधिपूर्वक इस उत्तम मन्त्र-रत्नका उपदेश करना उचित है।

मेरी आराधना करना, मुझमें समस्त कर्मोंका अर्पण करना, अनन्यभावसे मेरी शरणमें आना, मुझे सब कर्मोंका फल अत्यन्त विश्वासपूर्वक समर्पित कर देना, मेरे सिवा और किसी साधनपर भरोसा न रखना तथा अपने लिये किसी वस्तुका संग्रह न करना—ये सब शरणागत भक्तके नियम हैं। ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको इस उत्तम मन्त्रका उपदेश देना चाहिये। उक्त मन्त्रका मैं सर्वव्यापी सनातन नारायण ही ऋषि हूँ। लक्ष्मीके साथ मैं ही इसका देवता भी हूँ अर्थात् वात्सल्य रसके समुद्र, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर, श्रीमान्, सुशील, सुभग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, निरन्तर पूर्णकाम, सर्वव्यापक, सबके बन्धु और कृपामयी सुधाके सागर लक्ष्मीसहित मैं नारायण ही इसका देवता हूँ। अतः मेरी अनुगामिनी लक्ष्मीदेवीके साथ मुझ विश्वरूपी भगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र हो उक्त मन्त्ररत्नद्वारा गन्ध-पुष्प आदि निवेदन करके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले दिव्यरूपधारी मुझ विष्णुका मेरे वामाङ्कमें विराजमान लक्ष्मीसहित पूजन करे। प्रजापते ! इस प्रकार एक बार पूजा करनेपर भी मैं सन्तुष्ट हो जाता हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—नाथ ! आपने इस उत्तम रहस्यका भलीभाँति वर्णन किया तथा मन्त्ररत्नके प्रभावको भी बतलाया, जो मनुष्योंको सब प्रकारकी सिद्धिका प्रदान करनेवाला है। आप सम्पूर्ण लोकोंके पिता, माता, गुरु, स्वामी, सखा, भ्राता, गति, शरण और सुहृद् हैं। देवेश्वर ! मैं तो आपका दास, शिष्य तथा सुहृद् हूँ। अतः दयासिन्धो ! मुझे अपनेसे अभिन्न बना लीजिये। सर्वज्ञ ! अब आप इस समय सब लोगोंके हितकी इच्छासे उत्तम विधिके साथ मन्त्ररत्नकी दीक्षाका तत्त्वतः वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—वत्स ! सुनो—मैं मन्त्र-दीक्षाकी उत्तम विधि बतलाता हूँ। मेरे आश्रयकी सिद्धिके लिये पहले आचार्यकी शरण ले। आचार्य ऐसे होने चाहिये—जो वैदिक ज्ञानसे सम्पन्न, मेरे भक्त, द्वेषरहित, मन्त्रके ज्ञाता, मन्त्रके भक्त, मन्त्रकी शरण लेनेवाले, पवित्र, ब्रह्मविद्याके विशेषज्ञ, मेरे भजनके सिवा और किसी साधनका सहारा न लेनेवाले, अन्य किसीके नियन्त्रणमें न रहनेवाले, ब्राह्मण, वीतराग, क्रोध-लोभसे शून्य, सदाचारकी शिक्षा देनेवाले, मुमुक्षु

तथा परमार्थवेत्ता हों। ऐसे गुणोंसे युक्त पुरुषको ही आचार्य कहा गया है। जो आचारकी शिक्षा दे, उसीका नाम आचार्य है। जो आचार्यके अधीन हो, उनके अनुशासनमें मन लगाये और आज्ञापालनमें स्थिरचित्त हो, उसे ही साधु पुरुषोंने शिष्य कहा है। ऐसे लक्षणोंसे युक्त सर्वगुणसम्पन्न शिष्यको विधिपूर्वक उत्तम मन्त्ररत्नका उपदेश करे। द्वादशीको, श्रवण नक्षत्रमें या वैष्णवके बताये हुए किसी भी समयमें उत्तम आचार्यकी प्राप्ति होनेपर दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

वसिष्ठजी कहते हैं—इस प्रकार मन्त्ररत्नका उपदेश पाकर तीनों लोकोंके सामने ब्रह्माजीने मुझको और नारदजीको भी उक्त मन्त्रका उपदेश दिया। तत्पश्चात् नैमिषारण्यवासी शौनकादि महर्षियोंको नारदजीने इस मन्त्रका उपदेश दिया, जो शरणागतोंकी रक्षा करता है। राजन्! महर्षि भी इस गुह्यतम मन्त्रको नहीं जानते। लक्ष्मी और नारायण—ये दोनों मन्त्र परम रहस्यमय हैं। इन दोनोंसे श्रेष्ठ दूसरा कोई मन्त्र नहीं है। इन दोनोंसे श्रेष्ठ धर्म सम्पूर्ण लोकोंमें कोई नहीं है। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें तीन बार सत्यकी प्रतिज्ञा करके कहा था—'मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेके लिये भगवान् नारायणसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। उनकी सेवा ही सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंका मूलोच्छेद करनेवाला मोक्ष है।'

═══ ★ ═══

भगवान् विष्णुकी महिमा, उनकी भक्तिके भेद तथा अष्टाक्षर मन्त्रके स्वरूप एवं अर्थका निरूपण

राजा दिलीपने कहा—भगवन्! हरिभक्तिमयी सुधासे पूर्ण आपके वचनोंको सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं होती—अधिकाधिक सुननेकी इच्छा बढ़ती जाती है। अतः इस विषयमें जितनी बातें हों, सब बताइये। मुनिश्रेष्ठ! इस भयानक संसाररूपी वनमें आध्यात्मिक आदि तीनों तापोंके दावानलकी महाज्वालासे सन्तप्त हुए मनुष्योंके लिये श्रीहरिभक्तिमयी सुधाके समुद्रको छोड़कर दूसरा कौन-सा आश्रय हो सकता है? महामुने! मुनिजन जिनकी सदा उपासना करते हैं, परमात्माकी भक्तिके उन विभिन्न रूपोंको इस समय विस्तारके साथ बतलाइये।

वसिष्ठजीने कहा—राजेन्द्र! तुम्हारा प्रश्न बहुत उत्तम है। यह मनुष्योंको संसार-सागरके पार उतारनेवाला है। भगवान् विष्णुकी भक्ति नित्य सुख देनेवाली है। प्राचीन कालमें कैलास पर्वतके शिखरपर भगवती पार्वतीजीने लोकपूजित भगवान् शङ्करसे इसी महान् प्रश्नको पूछा था।

पार्वतीजी बोलीं—देवदेव! त्रिपुरासुरको मारनेवाले महादेव! सुरेश्वर! मुझे विष्णुभक्तिका उपदेश कीजिये, जो सब प्राणियोंको मुक्ति देनेवाली है।

श्रीमहादेवजीने कहा—सब लोकोंका हित चाहनेवाली महादेवी! तुम्हें साधुवाद। तुम जो भगवान् लक्ष्मीपतिके उत्तम माहात्म्यके विषयमें प्रश्न करती हो, यह बहुत ही उत्तम है। पार्वती! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो और भगवान् विष्णुकी भक्त हो। तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारे शील, रूप और गुणोंसे सदा ही सन्तुष्ट रहता हूँ। गिरिजे! मैं उत्तम भगवद्भक्ति, भगवान् विष्णुके स्वरूप तथा उनके मन्त्रोंके विधानका वर्णन करता हूँ; सुनो। भगवान् नारायण ही परमार्थतत्त्व हैं। वे ही विष्णु, वासुदेव, सनातन, परमात्मा, परब्रह्म, परम ज्योति, परात्पर, अच्युत, पुरुष, कृष्ण, शाश्वत, शिव, ईश्वर, नित्य, सर्वगत, स्थाणु, रुद्र, साक्षी, प्रजापति, यज्ञ, साक्षात्, यज्ञपति, ब्रह्मणस्पति, हिरण्यगर्भ, सविता, लोककर्ता, लोकपालक और विभु आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। वे भगवान् विष्णु 'अ' अक्षरके वाच्य, लक्ष्मीसे सम्पन्न, लीलाके स्वामी तथा सबके प्रभु हैं। अन्नसे जिसकी उत्पत्ति होती है, उस जीव-समुदायके तथा अमृतत्व (मोक्ष) के भी स्वामी हैं। वे विश्वात्मा सहस्रों मस्तकवाले, सहस्रों नेत्रवाले और सहस्रों पैरवाले हैं। उनका कभी अन्त नहीं होता। इसलिये वे

अनन्त कहलाते हैं। लक्ष्मीके पति होनेसे श्रीपति नाम धारण करते हैं। योगिजन उनमें रमण करते हैं, इसलिये उनका नाम राम है। वे समस्त गुणोंको धारण करते हैं, तथापि निर्गुण हैं। महान् हैं। वे समस्त लोकोंके ईश्वर, श्रीमान्, सर्वज्ञ तथा सब ओर मुखवाले हैं। पार्वती ! उन लोकप्रधान जगदीश्वर भगवान् वासुदेवके माहात्म्यका जितना मुझसे हो सकेगा, वर्णन करता हूँ। वास्तवमें तो मैं, ब्रह्माजी तथा सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उसका पूरा वर्णन नहीं कर सकते। सम्पूर्ण उपनिषदोंमें भगवान्की महिमाका ही प्रतिपादन है तथा वेदान्तमें उन्हींको परमार्थ-तत्त्व निश्चित किया गया है।

अब मैं भगवान्की उपासनाके पृथक्-पृथक् भेद बतलाता हूँ, सुनो। भगवान्का अर्चन, उनके मन्त्रोंका जप, स्वरूपका ध्यान, नामोंका स्मरण, कीर्तन, श्रवण, वन्दन, चरण-सेवन, चरणोदक-सेवन, उनका प्रसाद ग्रहण करना, भगवद्भक्तोंकी सेवा, द्वादशीव्रतका पालन तथा तुलसीका वृक्ष लगाना—यह सब देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी भक्ति है, जो भव-बन्धनसे छुटकारा दिलानेवाली है। सम्पूर्ण देवताओंके तथा मेरे लिये भी पुरुषोत्तम श्रीहरि ही पूजनीय हैं। ब्राह्मणोंके लिये तो वे विशेषरूपसे पूज्य हैं। अतः ब्राह्मणोंको उचित है कि वे प्रतिदिन विधिपूर्वक श्रीहरिका पूजन करें।

श्रेष्ठ द्विजको अष्टाक्षर मन्त्रका अभ्यास करना चाहिये। प्रणवको मिलाकर ही वह मन्त्र अष्टाक्षर कहा गया है। मन्त्र है—**'ॐ नमो नारायणाय'**। इस प्रकार इस मन्त्रको अष्टाक्षर जानना चाहिये। यह सब मनोरथोंकी सिद्धि और सब दुःखोंका नाश करनेवाला है। इसे सर्वमन्त्रस्वरूप और शुभकारक माना गया है। इस मन्त्रके 'ऋषि' और 'देवता' लक्ष्मीपति भगवान् नारायण ही हैं। 'छन्द' दैवी[1] गायत्री है। प्रणवको इसका 'बीज' कहा गया है। भगवान्से कभी विलग न होनेवाली भगवती लक्ष्मीको ही विद्वान् पुरुष इस मन्त्रकी 'शक्ति' कहते हैं। इस मन्त्रका पहला पद **'ॐ'**, दूसरा पद **'नमः'**और तीसरा पद **'नारायणाय'** है। इस प्रकार यह तीन पदोंका मन्त्र बतलाया गया है। प्रणवमें तीन अक्षर हैं—अकार, उकार तथा मकार। प्रणवको तीनों वेदोंका स्वरूप बतलाया गया है। यह ब्रह्मका निवास-स्थान है। अकारसे भगवान् विष्णुका और उकारसे भगवती लक्ष्मीका प्रतिपादन होता है। मकारसे उन दोनोंके दासभूत जीवात्माका कथन है, जो पचीसवाँ[2] तत्त्व है।

किसी-किसीके मतमें उकार अवधारणवाची है। इस पक्षमें भी श्रीतत्त्वका प्रतिपादन उकारके ही द्वारा किया जाता है। जैसे सूर्यकी प्रभा सूर्यसे कभी अलग नहीं होती, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी श्रीविष्णुसे नित्य संयुक्त रहती हैं। अकारसे जिनका बोध कराया जाता है, वे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु कारणके भी कारण हैं। सम्पूर्ण जीवात्माओंके प्रधान अङ्गी हैं। जगत्के बीज हैं और परमपुरुष हैं। वे ही जगत्के कर्ता, पालक, ईश्वर और लोकके बन्धु-बान्धव हैं। तथा उनकी मनोरमा पत्नी लक्ष्मी सम्पूर्ण जगत्की माता, अधीश्वरी और आधार-शक्ति हैं। वे नित्य हैं और श्रीविष्णुसे कभी विलग नहीं होतीं। उकारसे उन्हींके तत्त्वका बोध कराया जाता है। मकारसे इन दोनोंके दास जीवात्माका कथन है, जिसे विद्वान् पुरुष क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यह ज्ञानका आश्रय और ज्ञानरूपी गुणसे युक्त है। इसे चित्त और प्रकृतिसे परे माना गया है। यह अजन्मा, निर्विकार, एकरूप, स्वरूपका भागी, अणु, नित्य, अव्यापक, चिदानन्द-स्वरूप **'अहं'**

१-'दैव्येकम्' इस पिङ्गल-सूत्रके अनुसार एक अक्षरका अथवा आठ अक्षरोंके एक पदका छन्द 'दैवी गायत्री' है। पहली व्याख्याके अनुसार 'प्रणव' को और दूसरी व्याख्याके अनुसार अष्टाक्षर मन्त्रको 'दैवी गायत्री' छन्दके अन्तर्गत माना गया है। इस 'दैवी गायत्री' को 'एकाक्षरा' या 'एकपदा' गायत्री भी कहते हैं। चौबीस अक्षरोंकी तो जो प्रसिद्ध गायत्री है, वह आठ-आठ अक्षरोंके तीन पादोंसे युक्त होनेके कारण 'त्रिपदा गायत्री' कहलाती है।

२-दस इन्द्रियाँ, पाँच भूत, पाँच इन्द्रियोंके विषय, मन, अहंकार, महत्तत्त्व और प्रकृति—ये चौबीस तत्त्व हैं; इनका साक्षी चेतन पचीसवाँ तत्त्व है।

पदका अर्थ, अविनाशी, क्षेत्र (शरीर) का अधिष्ठाता, भिन्न-भिन्न रूप धारण करनेवाला, सनातन, जलाने, काटने, गलाने और सुखानेमें न आनेवाला तथा अविनाशी है। ऐसे गुणोंसे युक्त जो जीवात्मा है, वह सदा परमात्माका अङ्गभूत है। वह केवल श्रीहरिका ही दास है और किसीका नहीं। इस प्रकार मध्यम अक्षर उकारके द्वारा जीवके दासभावका ही अवधारण (निश्चय) किया जाता है। इस तरह प्रणवका अर्थ जानना चाहिये। प्रणवका अर्थ स्पष्ट हो जानेपर शेष मन्त्रके द्वारा परमात्माके दासभूत जीवकी परतन्त्रता ही सिद्ध होती है। वह कभी स्वतन्त्र नहीं होता। अतः अपनी स्वतन्त्रताके महान् अहङ्कारको मनसे दूर कर देना चाहिये। अहङ्कार-बुद्धिसे जो कर्म किया जाता है, उसका भी निषेध है।

'मनस्'—मन शब्दमें जो मकार है, वह अहङ्कारका वाचक है और नकार उसका निषेध करनेवाला है। अतः मनसे ही जीवके लिये अहङ्कार-त्यागकी प्रेरणा मिलती है। अहङ्कारसे युक्त मनुष्यको तनिक भी सुख नहीं मिलता। जिसका चित्त अहङ्कारसे मोहित है, वह घोर अन्धकारसे पूर्ण नरकमें गिरता है। इसलिये मनके द्वारा क्षेत्रज्ञकी स्वतन्त्रताका निषेध किया गया है। वह भगवान्के अधीन है। भगवान्के अधीन ही उसका जीवन है। अतः चेतन जीवात्मा किसी साधनका स्वतन्त्र कर्ता नहीं है। ईश्वरके संकल्पसे ही सम्पूर्ण चराचर जगत् अपने-अपने व्यापारमें लगा है। अतः जीव अपने सामर्थ्यपर निर्भर रहना छोड़ दे। ईश्वरके सामर्थ्यसे उसके लिये कुछ भी अलभ्य नहीं है। अपना सारा भार भगवान् लक्ष्मीपतिको सौंपकर उनकी आराधनाके ही कर्म करे। 'श्रीहरि परमात्मा हैं। मैं सदा उनका दास बना रहूँ।' इस भावसे स्वेच्छापूर्वक अपने आत्माको ईश्वरकी सेवामें लगाना चाहिये। इस प्रकार मनके द्वारा अहंता, ममताका त्याग करना उचित है। देहमें जो अहंबुद्धि होती है, वही संसार-बन्धनका मूल कारण है। वही कर्मोंके बन्धनमें डालती है। अतः विद्वान् पुरुष अहङ्कारको त्याग दे।*

पार्वती! अब मैं 'नारायण' शब्दकी व्याख्या करता हूँ। शुभे! नर अर्थात् जीवोंके समुदायको नार कहते हैं। उन 'नार' शब्दवाच्य जीवोंके अयन—गति अर्थात् आश्रय परम पुरुष श्रीविष्णु हैं। अतः वे नारायण कहलाते हैं। अथवा नार यानी जीव उन भगवान्के अयन—निवासस्थान हैं। इसलिये भी उन्हें नारायण कहा जाता है। जड-चेतनरूप जितना भी जगत् देखा या सुना जाता है, उसको पूर्णरूपसे व्याप्त करके भगवान् नित्य विराजमान हैं। इसलिये उनका नाम नारायण है। जो कल्पके अन्तमें सम्पूर्ण जगत्को अपना ग्रास बनाकर अपने ही भीतर धारण करते हैं और सृष्टिके आरम्भकालमें पुनः सबकी सृष्टि करते हैं, वे भगवान् नारायण कहे गये हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत् नार कहलाता है। उसको जिनका संग नित्य प्राप्त है अथवा उसे जिनके द्वारा उत्तम गति प्राप्त होती है, उन्हें नारायण कहते हैं। जलसे फेनकी भाँति जिनसे सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होते और पुनः जिनमें लीन हो जाते हैं, उन भगवान्को नारायण कहा गया है। जो अविनाशी पद, नित्यस्वरूप तथा नित्यप्राप्त भोगोंसे सम्पन्न हैं, साथ ही जो सम्पूर्ण जगत्का शासन करनेवाले हैं, उन भगवान्का नाम नारायण है। दिव्य, एक, सनातन और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि ही नारायण कहलाते हैं। द्रष्टा और दृश्य, श्रोता और श्रोतव्य, स्पर्श

---

* यहाँ मूलमें 'मनस्' शब्दका पाठ होनेसे मनका ही उल्लेख किया गया है; किन्तु प्रकरण देखनेसे मालूम होता है, 'मनस्' की जगह 'नमस्' पाठ होना चाहिये। यहाँ अष्टाक्षर मन्त्रकी व्याख्या चल रही है; मन्त्रका स्वरूप है—'ॐ नमो नारायणाय।' इसमें ॐकारकी व्याख्या विस्तारके साथ की गयी है; इसके बाद 'नमस्' की व्याख्याका प्रसङ्ग है, जिसे शायद भूलसे 'मनस्' लिखा गया है। इसके आगे 'नारायणाय' पदकी व्याख्या मिलती है। अतः यहाँ 'मनस्'के मकार-नकारसे जो भाव लिया गया है, वह 'नमः' के नकार-मकारका भाव है—ऐसा समझना चाहिये।

करनेवाला और स्पृश्य, ध्याता और ध्येय, वक्ता और वाच्य तथा ज्ञाता और ज्ञेय—जो कुछ भी जड-चेतनमय जगत् है, वह सब लक्ष्मीपति श्रीहरि हैं, जिन्हें नारायण कहा गया है। वे सहस्रों मस्तकवाले, अन्तर्यामी पुरुष, सहस्रों नेत्रोंसे युक्त तथा सहस्रों चरणोंवाले हैं। भूत और वर्तमान—सब कुछ नारायण श्रीहरि ही हैं। अन्नसे जिसकी उत्पत्ति होती है, उस प्राणिसमुदाय तथा अमृतत्व—मोक्षके भी स्वामी वे ही हैं। वे ही विराट् पुरुष हैं। वे अन्तर्यामी पुरुष ही श्रीविष्णु, वासुदेव, अच्युत, हरि, हिरण्मय, भगवान्, अमृत, शाश्वत तथा शिव आदि नामोंसे पुकारे जाते हैं। वे ही सम्पूर्ण जगत्के पालक और सब लोकोंपर शासन करनेवाले ईश्वर हैं। वे हिरण्मय अण्डको उत्पन्न करनेके कारण हिरण्यगर्भ और सबको जन्म देनेके कारण सविता हैं। उनकी महिमाका अन्त नहीं है, इसलिये वे अनन्त कहलाते हैं। वे महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण महेश्वर हैं। उन्हींका नाम भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त) और पुरुष है। 'वासुदेव' शब्द बिना किसी उपाधिके सर्वात्माका बोधक है। उन्हींको ईश्वर, भगवान् विष्णु, परमात्मा, संसारके सुहृद्, चराचर प्राणियोंके एकमात्र शासक और यतियोंकी परमगति कहते हैं। जिन्हें वेदके आदिमें स्वर कहा गया है, जो वेदान्तमें भी प्रतिष्ठित हैं तथा जो प्रकृतिलीन पुरुषसे भी परे हैं, वे ही महेश्वर कहलाते हैं। प्रणवका जो अकार है, वह श्रीविष्णु ही हैं और जो विष्णु हैं, वे ही नारायण हरि हैं। उन्हींको नित्यपुरुष, परमात्मा और महेश्वर कहते हैं। मुनियोंने उन्हें ही ईश्वर नाम दिया है। इसलिये भगवान् वासुदेवमें उपाधिशून्य 'ईश्वर' शब्दकी प्रतिष्ठा है। सनातन वेदवादियोंने उन्हें आत्मेश्वर कहा है। इसलिये वासुदेवमें महेश्वरत्वकी भी प्रतिष्ठा है। वे त्रिपाद् विभूति तथा लीलाके भी अधीश्वर हैं। जो श्री, भू तथा लीला देवीके स्वामी हैं, उन्हींको अच्युत कहा गया है। इसलिये वासुदेवमें सर्वेश्वर शब्दकी भी प्रतिष्ठा है। जो यज्ञके ईश्वर, यज्ञस्वरूप, यज्ञके भोक्ता, यज्ञ करनेवाले, विभु, यज्ञरक्षक और यज्ञपुरुष हैं, वे भगवान् ही परमेश्वर कहलाते हैं। वे ही यज्ञके अधीश्वर होकर समस्त हव्य-कव्योंका भोग लगाते हैं। वे ही इस लोकमें अविनाशी श्रीहरि एवं ईश्वर कहलाते हैं। उनके निकट आनेसे समस्त राक्षस, असुर और भूत तत्काल भाग जाते हैं। जो विराट्रूप धारण करके अपनी विभूतिसे तीनों लोकोंको तृप्त करते हैं, वे पापको हरनेवाले श्रीजनार्दन ही परमेश्वर हैं। जब पुरुषरूपी हविके द्वारा देवताओंने यज्ञ किया, तब उस यज्ञसे नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले जीव उत्पन्न हुए। सबको होमनेवाले उस यज्ञसे ही ऋग्वेद और सामवेदकी उत्पत्ति हुई। उसीसे घोड़े, गौ और पुरुष आदि उत्पन्न हुए। उस सर्वयज्ञमय पुरुष श्रीहरिके शरीरसे स्थावर-जङ्गमरूप समस्त जगत्की उत्पत्ति हुई। उनके मुख, बाहु, ऊरु और चरणोंसे क्रमशः ब्राह्मण आदि वर्ण उत्पन्न हुए। भगवान्के पैरोंसे पृथ्वी और मस्तकसे आकाशका प्रादुर्भाव हुआ। उनके मनसे चन्द्रमा, नेत्रोंसे सूर्य, मुखसे अग्नि, सिरसे द्युलोक, प्राणसे सदा चलनेवाले वायु, नाभिसे आकाश तथा सम्पूर्ण चराचर जगत्की उत्पत्ति हुई। सब कुछ श्रीविष्णुसे ही प्रकट हुआ है, इसलिये वे सर्वव्यापी नारायण सर्वमय कहलाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करके श्रीहरि पुनः उसका संहार करते हैं—ठीक उसी तरह, जैसे मकड़ी अपनेसे प्रकट हुए तन्तुओंको पुनः अपनेमें ही लीन कर लेती है। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वरुण और यम—सभी देवताओंको अपने वशमें करके उनका संहार करते हैं; इसलिये भगवान्को हरि कहा जाता है। जब सारा जगत् प्रलयके समय एकार्णवमें निमग्न हो जाता है, उस समय वे सनातन पुरुष श्रीहरि संसारको अपने उदरमें स्थापित करके स्वयं मायामय वटवृक्षके पत्रपर शयन करते हैं। कल्पके आरम्भमें एकमात्र सर्वव्यापी एवं अविनाशी भगवान् नारायण ही थे। उस समय न ब्रह्मा थे, न रुद्र। न देवता थे, न महर्षि। ये पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, लोक तथा महत्तत्त्वसे आवृत ब्रह्माण्ड भी नहीं थे। श्रीहरिने समस्त जगत्का संहार करके सृष्टिकालमें पुनः उसकी सृष्टि की; इसलिये उन्हें नारायण कहा गया है। पार्वती! **'नारायणाय'** इस चतुर्थ्यन्त पदसे जीवके

दासभावका प्रतिपादन होता है। ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण जगत् भगवान्‌का दास ही है। पहले इस अर्थको समझकर पीछे मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये। मन्त्रार्थको न जाननेसे सिद्धि नहीं प्राप्त होती।

श्रीविष्णु और लक्ष्मीके स्वरूप, गुण, धाम एवं विभूतियोंका वर्णन

पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वर! आप मन्त्रोंके अर्थ और पदोंकी महिमाको विस्तारके साथ बतलाइये। साथ ही ईश्वरके स्वरूप, गुण, विभूति, श्रीविष्णुके परम धाम तथा व्यूह-भेदोंका भी यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये।

महादेवजीने कहा—देवि! सुनो—मैं परमात्माके स्वरूप, विभूति, गुण तथा अवस्थाओंका वर्णन करता हूँ। भगवान्‌के हाथ, पैर और नेत्र सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हैं। समस्त भुवन और श्रेष्ठ धाम भगवान्‌में ही स्थित हैं। वे महर्षियोंका मन अपनेमें स्थिर करके विराजमान हैं। उनका स्वरूप विशाल एवं व्यापक है। वे लक्ष्मीके पति और पुरुषोत्तम हैं। उनका लावण्य करोड़ों कामदेवोंके समान है। वे नित्य तरुण किशोर-विग्रह धारण करके जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मीजीके साथ परमपद—वैकुण्ठधाममें विराजते हैं। वह परम धाम ही परमव्योम कहलाता है। परमव्योम ऐश्वर्यका उपभोग करनेके लिये है और यह सम्पूर्ण जगत् लीला करनेके लिये। इस प्रकार भोगभूमि और क्रीड़ाभूमिके रूपमें श्रीविष्णुकी दो विभूतियाँ स्थित हैं। जब वे लीलाका उपसंहार करते हैं, तब भोगभूमिमें उनकी नित्य स्थिति होती है। भोग और लीला दोनोंको वे अपनी शक्तिसे ही धारण करते हैं। भोगभूमि या परमधाम त्रिपाद्-विभूतिसे व्याप्त है। अर्थात् भगवद्विभूतिके तीन अंशोंमें उसकी स्थिति है और इस लोकमें जो कुछ भी है, वह भगवान्‌की पाद-विभूतिके अन्तर्गत है। परमात्माकी त्रिपाद्-विभूति नित्य और पाद-विभूति अनित्य है। परमधाममें भगवान्‌का जो शुभ विग्रह विराजमान है, वह नित्य है। वह कभी अपनी महिमासे च्युत नहीं होता, उसे सनातन एवं दिव्य माना गया है। वह सदा तरुणावस्थासे सुशोभित रहता है। वहाँ भगवान्‌को भगवती श्रीदेवी और भूदेवीके साथ नित्य संभोग प्राप्त है। जगन्माता लक्ष्मी भी नित्यरूपा हैं। वे श्रीविष्णुसे कभी पृथक् नहीं होतीं। जैसे भगवान् विष्णु सर्वत्र व्याप्त हैं, उसी प्रकार भगवती लक्ष्मी भी हैं। पार्वती! श्रीविष्णुपत्नी रमा सम्पूर्ण जगत्‌की अधीश्वरी और नित्य कल्याणमयी हैं। उनके भी हाथ, पैर, नेत्र, मस्तक और मुख सब ओर व्याप्त हैं। वे भगवान् नारायणकी शक्ति, सम्पूर्ण जगत्‌की माता और सबको आश्रय प्रदान करनेवाली हैं। स्थावर-जङ्गमरूप सारा जगत् उनके कृपा-कटाक्षपर ही निर्भर है। विश्वका पालन और संहार उनके नेत्रोंके खुलने और बंद होनेसे ही हुआ करते हैं। वे महालक्ष्मी सबकी आदिभूता, त्रिगुणमयी और परमेश्वरी हैं। व्यक्त और अव्यक्त भेदसे उनके दो रूप हैं। वे उन दोनों रूपोंसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं। जल आदि रसके रूपसे वे ही लीलामय देह धारण करके प्रकट होती हैं। लक्ष्मीरूपमें आकर वे धन प्रदान करनेकी अधिकारिणी होती हैं। ऐसे स्वरूपवाली लक्ष्मीदेवी श्रीहरिके आश्रयमें रहती हैं। सम्पूर्ण वेद तथा उनके द्वारा जाननेयोग्य जितनी वस्तुएँ हैं, वे सब श्रीलक्ष्मीके ही स्वरूप हैं। स्त्रीरूपमें जो कुछ भी उपलब्ध होता है, वह सब लक्ष्मीका ही विग्रह कहलाता है। स्त्रियोंमें जो सौन्दर्य, शील, सदाचार और सौभाग्य स्थित है, वह सब लक्ष्मीका ही रूप है। पार्वती! भगवती लक्ष्मी समस्त स्त्रियोंकी शिरोमणि हैं, जिनकी कृपा-कटाक्षके पड़नेमात्रसे ब्रह्मा, शिव, देवराज इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, यमराज तथा अग्निदेव प्रचुर ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

उनके नाम इस प्रकार हैं—लक्ष्मी, श्री, कमला, विद्या, माता, विष्णुप्रिया, सती, पद्मालया, पद्महस्ता, पद्माक्षी, पद्मसुन्दरी, भूतेश्वरी, नित्या, सत्या, सर्वगता, शुभा, विष्णुपत्नी, महादेवी, क्षीरोदतनया (क्षीरसागरकी कन्या), रमा, अनन्तलोकनाभि (अनन्त लोकोंकी

उत्पत्तिका केन्द्रस्थान), भू, लीला, सर्वसुखप्रदा, रुक्मिणी, सर्ववेदवती, सरस्वती, गौरी, शान्ति, स्वाहा, स्वधा, रति, नारायणवरारोहा, (श्रीविष्णुकी सुन्दरी पत्नी) तथा विष्णोर्नित्यानुपायिनी (सदा श्रीविष्णुके समीप रहनेवाली)। जो प्रातःकाल उठकर इन सम्पूर्ण नामोंका पाठ करता है, उसे बहुत बड़ी सम्पत्ति तथा विशुद्ध धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं विष्णोरनपगामिनीम्॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

(२५५। २८-२९)

'जिनके श्रीअङ्गोंका रङ्ग सुवर्णके समान सुन्दर एवं गौर है, जो सोने-चाँदीके हारोंसे सुशोभित और सबको आह्लादित करनेवाली हैं, भगवान् श्रीविष्णुसे जिनका कभी वियोग नहीं होता, जो स्वर्णमयी कान्ति धारण करती हैं, उत्तम लक्षणोंसे विभूषित होनेके कारण जिनका नाम लक्ष्मी है, जो सब प्रकारकी सुगन्धोंका द्वार हैं, जिनको परास्त करना कठिन है, जो सदा सब अङ्गोंसे पुष्ट रहती हैं, गायके सूखे गोबरमें जिनका निवास है तथा जो समस्त प्राणियोंकी अधीश्वरी हैं, उन भगवती श्रीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ।'

ऋग्वेदमें कहे हुए इस मन्त्रके द्वारा स्तुति करनेपर महेश्वरी लक्ष्मीने शिव आदि सभी देवताओंको सब प्रकारका ऐश्वर्य और सुख प्रदान किया था। श्रीविष्णुपत्नी लक्ष्मी सनातन देवता हैं। वे ही इस जगत्का शासन करती हैं। सम्पूर्ण चराचर जगत्की स्थिति उन्हींके कृपा-कटाक्षपर निर्भर है। अग्निमें रहनेवाली प्रभाकी भाँति भगवती लक्ष्मी जिनके वक्षःस्थलमें निवास करती हैं, वे भगवान् विष्णु सबके ईश्वर, परम शोभा-सम्पन्न, अक्षर एवं अविनाशी पुरुष हैं; वे श्रीनारायण वात्सल्य-गुणके समुद्र हैं। सबके स्वामी, सुशील, सुभग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, नित्य पूर्णकाम, स्वभावतः सबके सुहृद्, सुखी, दयासुधाके सागर; समस्त देहधारियोंके आश्रय, स्वर्ग और मोक्षका सुख देनेवाले और भक्तोंपर दया करनेवाले हैं। उन श्रीविष्णुको नमस्कार है। मैं सम्पूर्ण देश-काल आदि अवस्थाओंमें पूर्णरूपसे भगवान्का दासत्व स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार स्वरूपका विचार करके सिद्धिप्राप्त पुरुष अनायास ही दासभावको प्राप्त कर लेता है। यही पूर्वोक्त मन्त्रका अर्थ है। इसको जानकर भगवान्में भलीभाँति भक्ति करनी चाहिये। यह चराचर जगत् भगवान्का दास ही है। श्रीनारायण इस जगत्के स्वामी, प्रभु, ईश्वर, भ्राता, माता, पिता, बन्धु, निवास, शरण और गति हैं। भगवान् लक्ष्मीपति कल्याणमय गुणोंसे युक्त और समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं। वे ही जगदीश्वर शास्त्रोंमें निर्गुण कहे गये हैं। 'निर्गुण' शब्दसे यही बताया गया है कि भगवान् प्रकृतिजन्य हेय गुणोंसे रहित हैं। जहाँ वेदान्तवाक्योंद्वारा प्रपञ्चका मिथ्यात्व बताया गया है और यह कहा गया है कि यह सारा दृश्यमान जगत् अनित्य है, वहाँ भी ब्रह्माण्डके प्राकृत रूपको ही नश्वर बताया गया है। प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले रूपोंकी ही अनित्यताका प्रतिपादन किया गया है।

महादेवि! इस कथनका तात्पर्य यह है कि लीला-विहारी देवदेव श्रीहरिकी लीलाके लिये ही प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है। चौदह भुवन, सात समुद्र, सात द्वीप, चार प्रकारके प्राणी तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंसे भरा हुआ यह रमणीय ब्रह्माण्ड प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है। यह उत्तरोत्तर महान् दस आवरणोंसे घिरा हुआ है। कला-काष्ठा आदि भेदसे जो कालचक्र चल रहा है, उसीके द्वारा संसारकी सृष्टि, पालन और संहार आदि कार्य होते हैं। एक सहस्र चतुर्युग व्यतीत होनेपर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। इतने ही बड़े दिनसे सौ वर्षोंकी उनकी आयु मानी गयी है। ब्रह्माजीकी आयु समाप्त होनेपर सबका संहार हो जाता है। ब्रह्माण्डके समस्त लोक कालाग्निसे दग्ध हो जाते हैं। सर्वात्मा श्रीविष्णुकी प्रकृतिमें उनका लय हो जाता है। ब्रह्माण्ड और आवरणके समस्त भूत प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। सम्पूर्ण जगत्का आधार प्रकृति है और प्रकृतिके आधार श्रीहरि। प्रकृतिके द्वारा ही भगवान् सदा जगत्की सृष्टि

और संहार करते हैं। देवाधिदेव श्रीविष्णुने लीलाके लिये जगन्मयी मायाकी सृष्टि की है। वही अविद्या, प्रकृति, माया और महाविद्या कहाती है। सृष्टि, पालन और संहारका कारण भी वही है। वह सदा रहनेवाली है। योगनिद्रा और महामाया भी उसीके नाम हैं। प्रकृति सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे युक्त है। उसे अव्यक्त और प्रधान भी कहते हैं। वह लीलाविहारी श्रीकृष्णकी क्रीड़ास्थली है। संसारकी उत्पत्ति और प्रलय सदा उसीसे होते हैं। प्रकृतिके स्थान असंख्य हैं, जो घोर अन्धकारसे पूर्ण हैं। प्रकृतिसे ऊपरकी सीमामें विरजा नामकी नदी है; किन्तु नीचेकी ओर उस सनातनी प्रकृतिकी कोई सीमा नहीं है। उसने स्थूल, सूक्ष्म आदि अवस्थाओंके द्वारा सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त कर रखा है। प्रकृतिके विकाससे सृष्टि और संकोचावस्थासे प्रलय होते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण भूत प्रकृतिके ही अन्तर्गत हैं। यह जो महान् शून्य (आकाश) है, वह सब भी प्रकृतिके ही भीतर है। इस तरह प्राकृतरूप ब्रह्माण्ड अथवा पादविभूतिके स्वरूपका अच्छी तरह वर्णन किया गया।

गिरिराजकुमारी ! अब त्रिपाद्-विभूतिके स्वरूपका वर्णन सुनो। प्रकृति एवं परम व्योमके बीचमें विरजा नामकी नदी है। वह कल्याणमयी सरिता वेदाङ्गोंके स्वेदजनित जलसे प्रवाहित होती है। उसके दूसरे पारमें परम व्योम है, जिसमें त्रिपाद्-विभूतिमय सनातन, अमृत, शाश्वत, नित्य एवं अनन्त परम धाम है। वह शुद्ध, सत्त्वमय, दिव्य, अक्षर एवं परब्रह्मका धाम है। उसका तेज अनेक कोटि सूर्य तथा अग्नियोंके समान है। वह धाम अविनाशी, सर्ववेदमय, शुद्ध, सब प्रकारके प्रलयसे रहित, परिमाणशून्य, कभी जीर्ण न होनेवाला, नित्य, जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंसे रहित, हिरण्यमय, मोक्षपद, ब्रह्मानन्दमय, सुखसे परिपूर्ण, न्यूनता-अधिकता तथा आदि-अन्तसे शून्य, शुभ, तेजस्वी होनेके कारण अत्यन्त अद्भुत, रमणीय, नित्य तथा आनन्दका सागर है। श्रीविष्णुका वह परमपद ऐसे ही गुणोंसे युक्त है। उसे सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निदेव नहीं प्रकाशित करते—वह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है। जहाँ जाकर जीव फिर कभी नहीं लौटते, वही श्रीहरिका परम धाम है। श्रीविष्णुका वह परमधाम नित्य, शाश्वत एवं अच्युत है। सौ करोड़ कल्पोंमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं, ब्रह्मा तथा श्रेष्ठ मुनि श्रीहरिके उस पदका वर्णन नहीं कर सकते। जहाँ अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले साक्षात् परमेश्वर श्रीविष्णु विराजमान हैं, उसकी महिमाको वे स्वयं ही जानते हैं। जो अविनाशी पद है, जिसकी महिमाका वेदोंमें गूढ़रूपसे वर्णन है तथा जिसमें सम्पूर्ण देवता और लोक स्थित हैं उसे जो नहीं जानता, वह केवल ऋचाओंका पाठ करके क्या करेगा। जो उसे जानते हैं, वे ही ज्ञानी पुरुष समभावसे स्थित होते हैं। श्रीविष्णुके उस परम पदको ज्ञानी पुरुष सदा देखते हैं। वह अक्षर, शाश्वत, नित्य एवं सर्वत्र व्याप्त है। कल्याणकारी नामसे युक्त भगवान् विष्णुके उस परमधाम—गोलोकमें बड़े सींगोंवाली गौएँ रहती हैं तथा वहाँकी प्रजा बड़े सुखसे रहा करती है। गौओं तथा पीनेयोग्य सुखदायक पदार्थोंसे उस परम धामकी बड़ी शोभा होती है। वह सूर्यके समान प्रकाशमान, अन्धकारसे परे, ज्योतिर्मय एवं अच्युत— अविनाशी पद है। श्रीविष्णुके उस परम धामको ही मोक्ष कहते हैं। वहाँ जीव बन्धनसे मुक्त होकर अपने लिये सुखकर पदको प्राप्त होते हैं। वहाँ जानेपर जीव पुनः इस लोकमें नही लौटते; इसलिये उसे मोक्ष कहा गया है। मोक्ष, परमपद, अमृत, विष्णुमन्दिर, अक्षर, परमधाम, वैकुण्ठ, शाश्वतपद, नित्यधाम, परमव्योम, सर्वोत्कृष्ट पद तथा सनातन पद—ये अविनाशी परम धामके पर्यायवाची शब्द हैं। अब उस त्रिपाद्विभूतिके स्वरूपका वर्णन करूँगा।

वैकुण्ठधाममें भगवान्‌की स्थितिका वर्णन, योगमायाद्वारा भगवान्‌की स्तुति तथा भगवान्‌के द्वारा सृष्टि-रचना

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! त्रिपाद्-विभूतिके असंख्य लोक बतलाये गये हैं। वे सब-के-सब शुद्ध सत्त्वमय, ब्रह्मानन्दमय, सुखसे परिपूर्ण, नित्य, निर्विकार, हेय गुणोंसे रहित, हिरण्मय, शुद्ध, कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान, वेदमय, दिव्य तथा काम-क्रोध आदिसे रहित हैं। भगवान् नारायणके चरणकमलोंकी भक्तिमें ही रस लेनेवाले पुरुष उनमें निवास करते हैं। वहाँ निरन्तर सामगानकी सुखदायिनी ध्वनि होती रहती है। वे सभी लोक उपनिषद्-स्वरूप, वेदमय तेजसे युक्त तथा वेदस्वरूप स्त्री-पुरुषोंसे भरे हैं। वेदके ही रससे भरे हुए सरोवर उनकी शोभा बढ़ाते हैं। श्रुति, स्मृति और पुराण आदि भी उन लोकोंके स्वरूप हैं। उनमें दिव्य वृक्ष भी सुशोभित होते हैं। उनके विश्व-विख्यात स्वरूपका पूरा-पूरा वर्णन मुझसे नहीं हो सकता। विरजा और परम व्योमके बीचका जो स्थान है, उसका नाम केवल है। वही अव्यक्त ब्रह्मके उपासकोंके उपभोगमें आता है। वह आत्मानन्दका सुख प्रदान करनेवाला है। उस स्थानको केवल, परमपद, निःश्रेयस्, निर्वाण, कैवल्य और मोक्ष कहते हैं। जो महात्मा भगवान् लक्ष्मीपतिके चरणोंकी भक्ति और सेवाके रसका उपभोग करके पुष्ट हुए हैं, वे महान् सौभाग्यशाली भगवच्चरण-सेवक पुरुष श्रीविष्णुके परम धाममें जाते हैं, जो ब्रह्मानन्द प्रदान करनेवाला है।

उसका नाम है वैकुण्ठधाम। वह अनेक जनपदोंसे व्याप्त है। श्रीहरि उसीमें निवास करते हैं। वह रत्नमय प्राकारों, विमानों तथा मणिमय महलोंसे सुशोभित है। उस धामके मध्यभागमें दिव्य नगरी है, जो अयोध्या कहलाती है तथा जो चहारदीवारियों और ऊँचे दरवाजोंसे घिरी है। उनमें मणियों तथा सुवर्णोंके चित्र बने हैं। उस अयोध्यापुरीके चार दरवाजे हैं तथा ऊँचे-ऊँचे गोपुर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। चण्ड आदि द्वारपाल और कुमुद आदि दिक्पाल उसकी रक्षामें रहते हैं। पूर्वके दरवाजेपर चण्ड और प्रचण्ड, दक्षिण-द्वारपर भद्र और सुभद्र, पश्चिम-द्वारपर जय और विजय तथा उत्तरके दरवाजेपर धाता और विधाता नामक द्वारपाल रहते हैं। कुमुद, कुमुदाक्ष, पुण्डरीक, वामन, शङ्कुकर्ण, सर्वनिद्र, सुमुख और सुप्रतिष्ठित—ये उस नगरीके दिक्पाल बताये गये हैं। पार्वती! उस पुरीमें कोटि-कोटि अग्निके समान तेजोमय गृहोंकी पङ्क्तियाँ शोभा पाती हैं। उनमें तरुण अवस्थावाले दिव्य नर-नारी निवास करते हैं। पुरीके मध्यभागमें भगवान्‌का मनोहर अन्तःपुर है, जो मणियोंके प्राकारसे युक्त और सुन्दर गोपुरसे सुशोभित है। उसमें भी अनेक अच्छे-अच्छे गृह, विमान और प्रासाद हैं। दिव्य अप्सराएँ और स्त्रियाँ सब ओरसे उस अन्तःपुरकी शोभा बढ़ाती हैं। उसके बीचमें एक दिव्य मण्डप है, जो राजाका खास स्थान है; उसमें बड़े-बड़े उत्सव होते रहते हैं। वह मण्डप रत्नोंका बना है तथा उसमें मानिकके हजारों खम्भे लगे हैं। वह दिव्य मोतियोंसे व्याप्त है तथा साम-गानसे सुशोभित रहता है। मण्डपके मध्यभागमें एक रमणीय सिंहासन है, जो सर्ववेदस्वरूप और शुभ है। वेदमय धर्मादि देवता उस सिंहासनको सदा घेरे रहते हैं। धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य तथा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामदेव तथा अथर्ववेद भी मूर्तिमान् होकर उस सिंहासनके चारों ओर खड़े रहते हैं। शक्ति, आधारशक्ति, चिच्छक्ति, सदाशिवा शक्ति तथा धर्मादि देवताओंकी शक्तियाँ भी वहाँ उपस्थित रहती हैं। सिंहासनके मध्यभागमें अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा निवास करते हैं। कूर्म (कच्छप), नागराज (अनन्त या वासुकि), तीनों वेदोंके स्वामी, गरुड़, छन्द और सम्पूर्ण मन्त्र—ये उसमें पीठरूप धारण करके रहते हैं। वह पीठ सब अक्षरोंसे युक्त है। उसे दिव्य योगपीठ कहते हैं। उसके मध्यभागमें अष्टदलकमल है, जो उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिमान् है। उसके बीचमें सावित्री नामकी कर्णिका है, जिसमें देवताओंके स्वामी

परम पुरुष भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मीजीके साथ विराजमान होते हैं।

भगवान्‌का श्रीविग्रह नीलकमलके समान श्याम तथा कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान है। वे तरुण कुमार-से जान पड़ते हैं। सारा शरीर चिकना है और प्रत्येक अवयव कोमल। खिले हुए लाल कमल-जैसे हाथ तथा पैर अत्यन्त मृदुल प्रतीत होते हैं। नेत्र विकसित कमलके समान जान पड़ते हैं। ललाटका निम्न भाग दो सुन्दर भ्रूलताओंसे अङ्कित है। सुन्दर नासिका, मनोहर कपोल, शोभायुक्त मुखकमल, मोतीके दाने-जैसे दाँत और मन्द मुसकानकी छविसे युक्त मूँगे-जैसे लाल-लाल ओठ हैं। मुखमण्डल पूर्ण चन्द्रमाकी शोभा धारण करता है। कमल-जैसे मुखपर मनोहर हास्यकी छटा छायी रहती है। कानोंमें तरुण सूर्यकी भाँति चमकीले कुण्डल उनकी शोभा बढ़ाते हैं। मस्तक चिकनी, काली और घुँघराली अलकोंसे सुशोभित है। भगवान्‌के बाल गुँथे हुए हैं, जिनमें पारिजात और मन्दारके पुष्प शोभा पाते हैं। गलेमें कौस्तुभमणि शोभा दे रही है, जो प्रातःकाल उगते हुए सूर्यकी कान्ति धारण करती है। भाँति-भाँतिके हार और सुवर्णकी मालाओंसे शङ्ख-जैसी ग्रीवा बड़ी सुन्दर जान पड़ती है। सिंहके कंधोंके समान ऊँचे और मोटे कंधे शोभा दे रहे हैं। मोटी और गोलाकार चार भुजाओंसे भगवान्‌का श्रीअङ्ग बड़ा सुन्दर जान पड़ता है। सबमें अँगूठी, कड़े और भुजबंद हैं, जो शोभावृद्धिके कारण हो रहे हैं। उनका विशाल वक्षःस्थल करोड़ों बालसूर्योंके समान तेजोमय कौस्तुभ आदि सुन्दर आभूषणोंसे देदीप्यमान है। वे वनमालासे विभूषित हैं। नाभिका वह कमल, जो ब्रह्माजीकी जन्मभूमि है, श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहा है। शरीरपर मुलायम पीताम्बर सुशोभित है, जो बाल रविकी प्रभाके समान जान पड़ता है। दोनों चरणोंमें सुन्दर कड़े विराज रहे हैं, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे जड़े होनेके कारण अत्यन्त विचित्र प्रतीत होते हैं। नखोंकी श्रेणियाँ चाँदनीयुक्त चन्द्रमाके समान उद्भासित हो रही हैं। भगवान्‌का लावण्य कोटि-कोटि कन्दर्पोंका दर्प दलन करनेवाला है। वे सौन्दर्यकी निधि और अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले हैं। उनके सर्वाङ्गमें दिव्य चन्दनका अनुलेप किया हुआ है। वे दिव्य मालाओंसे विभूषित हैं। उनके ऊपरकी दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र हैं तथा नीचेकी भुजाओंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं।

भगवान्‌के वामाङ्कमें महेश्वरी भगवती महालक्ष्मी विराजमान हैं। उनका श्रीअङ्ग सुवर्णके समान कान्तिमान् तथा गौर है। सोने और चाँदीके हार उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। उनकी अवस्था ऐसी है, मानो शरीरमें यौवनका आरम्भ हो रहा है। कानोंमें रत्नोंके कुण्डल और मस्तकपर काली-काली घुँघराली अलकें शोभा पाती हैं। दिव्य चन्दनसे चर्चित अङ्गोंका दिव्य पुष्पोंसे शृङ्गार हुआ है। केशोंमें मन्दार, केतकी और चमेलीके फूल गुँथे हुए हैं। सुन्दर भौंहें, मनोहर नासिका और शोभायमान कटिभाग हैं। पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर मुख-कमलपर मन्द मुसकानकी छटा छा रही है। बाल रविके समान चमकीले कुण्डल कानोंकी शोभा बढ़ा रहे हैं। तपाये हुए सुवर्णके समान शरीरकी कान्ति और आभूषण हैं। चार हाथ है, जो सुवर्णमय कमलोंसे विभूषित हैं। भाँति-भाँतिके विचित्र रत्नोंसे युक्त सुवर्णमय कमलोंकी माला, हार, केयूर, कड़े और अँगूठियोंसे श्रीदेवी सुशोभित हैं। उनके दो हाथोंमें दो कमल और शेष दो हाथोंमें मातुलुङ्ग (बिजौरा) और जाम्बूनद (धतूरा) शोभा पा रहे हैं। इस प्रकार कभी विलग न होनेवाली महालक्ष्मीके साथ महेश्वर भगवान् विष्णु सनातन परम व्योममें सानन्द विराजमान रहते हैं। उनके दोनों पार्श्वमें भूदेवी और लीलादेवी बैठी रहती हैं। आठों दिशाओंमें अष्टदल कमलके एक-एक दलपर क्रमशः विमला आदि शक्तियाँ सुशोभित होती हैं। उनके नाम ये हैं—विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या तथा ईशाना। ये सब परमात्मा श्रीहरिकी पटरानियाँ हैं, जो सब प्रकारके सुन्दर लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। ये अपने हाथोंमें चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णके दिव्य चँवर लेकर उनके द्वारा सेवा करती हुई अपने पति

श्रीहरिको आनन्दित करती हैं। इनके सिवा दिव्य अप्सराएँ तथा पाँच सौ युवती स्त्रियाँ भगवान्‌के अन्तःपुरमें निवास करती हैं, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, कोटि अग्नियोंके समान तेजस्विनी, समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा चन्द्रमुखी हैं। उन सबके हाथोंमें कमलके पुष्प शोभा पाते हैं। उन सबसे घिरे हुए महाराज परम पुरुष श्रीहरिकी बड़ी शोभा होती है। अनन्त (शेषनाग), गरुड़ तथा सेनानी आदि देवेश्वरों, अन्यान्य पार्षदों तथा नित्यमुक्त भक्तोंसे सेवित हो रमा-सहित परम पुरुष श्रीविष्णु भोग और ऐश्वर्यके द्वारा सदा आनन्दमग्न रहते हैं। इस प्रकार वैकुण्ठधामके अधिपति भगवान् नारायण अपने परम पदमें रमण करते हैं।

पार्वती ! अब मैं भगवान्‌के भिन्न-भिन्न व्यूहों और लोकोंका वर्णन करता हूँ। वैकुण्ठधामके पूर्वभागमें श्रीवासुदेवका मन्दिर है। अग्निकोणमें लक्ष्मीका लोक है। दक्षिण-दिशामें श्रीसंकर्षणका भवन है। नैर्ऋत्य-कोणमें सरस्वतीदेवीका लोक है। पश्चिम-दिशामें श्रीप्रद्युम्नका मन्दिर है। वायव्यकोणमें रतिका लोक है। उत्तर-दिशामें श्रीअनिरुद्धका स्थान है और ईशानकोणमें शान्तिलोक है। भगवान्‌के परम धामको सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि नहीं प्रकाशित करते। कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले योगिजन वहाँ जाकर फिर इस संसारमें नहीं लौटते। जो दो नामोंके एक मन्त्र (लक्ष्मीनारायण) के जपमें लगे रहते हैं, वे निश्चय ही उस अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। मनुष्य अनन्य भक्तिके साथ उक्त मन्त्रका जप करके उस सनातन दिव्य धामको अनायास ही प्राप्त कर लेते है। उनके लिये वह पद जैसा सुगम होता है, वैसा वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, दान, शुभव्रत, तपस्या, उपवास तथा अन्य साधनोंसे भी नहीं होता। त्रिपाद्-विभूतिमें जहाँ भगवान् परमेश्वर भगवती लक्ष्मीजीके साथ सदा आनन्दका अनुभव करते हैं, वहाँ संसारकी आश्रयभूता महामायाने हाथ जोड़कर प्रकृतिके साथ उनकी भाँति-भाँतिसे स्तुति करके कहा—केशव ! इन जीवोंके लिये लोक और शरीर प्रदान कीजिये। सर्वज्ञ ! आप पूर्वकल्पोंकी भाँति अपनी लीलामयी विभूतियोंका विस्तार कीजिये। जड-चेतनमय सम्पूर्ण चराचर जगत् अज्ञान अवस्थामें पड़ा है। आप लीला-विस्तारके लिये इसपर दृष्टिपात कीजिये। परमेश्वर ! मेरे तथा प्रकृतिके साथ जगत्‌की सृष्टि कीजिये। धर्म-अधर्म, सुख-दुःख—सबका संसारमें प्रवेश कराके आप मुझे अपनी आज्ञामें रखकर शीघ्र ही लीला आरम्भ कीजिये।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—मायादेवीके इस प्रकार कहनेपर परमेश्वरने उसके भीतर जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। जो प्रकृतिसे परे पुरुष कहलाते हैं, वे अच्युत भगवान् विष्णु ही प्रकृतिमें प्रविष्ट हुए। ब्रह्मस्वरूप श्रीहरिने प्रकृतिसे महत्तत्त्वको उत्पन्न किया, जो सब भूतोंका आदि कारण है। महत्‌से अहंकारका जन्म हुआ। यह अहंकार सत्त्वादि गुणोंके भेदसे तीन प्रकारका है—सात्त्विक, राजस और तामस। विश्वभावन परमात्माने उन गुणोंसे अर्थात् तामस अहंकारसे तन्मात्राओंको उत्पन्न किया। तन्मात्राओंसे आकाश आदि पञ्चमहाभूत प्रकट हुए, जिनमें क्रमशः एक-एक गुण अधिक हैं। आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीका प्रादुर्भाव हुआ। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये ही क्रमशः आकाश आदि पञ्चभूतोंके प्रधान गुण हैं। महाप्रभु श्रीहरिने उत्तरोत्तर भूतोंमें अधिक गुण देख उन सबको लेकर एकमें मिला दिया। तथा सबके मेलसे महान् विश्वब्रह्माण्डकी सृष्टि की। उसीमें पुरुषोत्तमने चौदह भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंको उत्पन्न किया। पार्वती ! देव, तिर्यक्, मानव और स्थावर—यह चार प्रकारका महासर्ग रचा गया। इन चारों सर्गों अथवा योनियोंमें जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जन्म लेते हैं।

★

देवसर्ग तथा भगवान्‌के चतुर्व्यूहका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन् ! परम उत्तम देवसर्गका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। साथ ही भगवान्‌के अवतारोंकी कथा भी विस्तृत रूपसे कहिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि ! सृष्टिकी इच्छा

रखनेवाले भगवान् मधुसूदनने योगनिद्राको प्राप्त होकर मायाके साथ चिरकालतक रमण किया। उससे कालात्माको जन्म दिया, जो कला, काष्ठा, मुहूर्त, पक्ष और मास आदिके रूपमें उपलब्ध होता है। उस समय श्रीहरिका नाभिकमल, जो सम्पूर्ण जगत्‌का बीज और परम तेजस्वी था, मुकुलाकार हो विकसित होने लगा। उसीसे परम बुद्धिमान् ब्रह्माजी प्रकट हुए। उनके मनमें रजोगुणकी प्रेरणासे सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई। तब उन्होंने योगनिद्रामें सोये हुए परमेश्वरका स्तवन किया।

ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर समस्त इन्द्रियोंके स्वामी परमेश्वर श्रीविष्णु योगनिद्रासे उठ गये। योगनिद्राको काबूमें करके उन्होंने जगत्‌की सृष्टि आरम्भ की। जगत्‌के स्वामी श्रीअच्युतने पहले एक क्षणतक कुछ विचार किया। विचारके पश्चात् उन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि की। उस समय सब लोकोंसे युक्त सुवर्णमय अण्डको, सात द्वीप, सात समुद्र और पर्वतोंसहित पृथ्वीको तथा एक अण्डकटाहको भी भगवान्‌ने अपने नाभिकमलसे उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उस अण्डमें श्रीहरि स्वयं ही स्थित हुए। तदनन्तर नारायणने अपने मनसे इच्छानुसार ध्यान किया। ध्यानके अन्तमें उनके ललाटसे पसीनेकी बूँद प्रकट हुई। वह बूँद बुदबुदेके आकारमें परिणत हो तत्क्षण पृथ्वीपर गिर पड़ी। पार्वती! उसी बुदबुदेसे मैं उत्पन्न हूँ। उस समय रुद्राक्षकी माला और त्रिशूल हाथमें लेकर जटामय मुकुटसे अलंकृत हो मैंने विनयपूर्वक देवेश्वर श्रीविष्णुसे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है।' तब भगवान् नारायणने प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहा—'रुद्र! तुम संसारका भयंकर संहार करनेवाले होओगे।' इस प्रकार मैं भयंकर आकृतिमें जगत्‌का संहार करनेके लिये ही भगवान् नारायणके श्रीअङ्गसे उत्पन्न हुआ। जनार्दनने मुझे संहारके कार्यमें नियुक्त करके पुनः अपने नेत्रोंसे अन्धकार दूर करनेवाले चन्द्रमा और सूर्यको उत्पन्न किया। फिर कानोंसे वायु और दिशाओंको, मुखकमलसे इन्द्र और अग्निको, नासिकाके छिद्रोंसे वरुण और मित्रको, भुजाओंसे साध्य और मरुद्गणोंसहित सम्पूर्ण देवताओंको, रोमकूपोंसे वन और ओषधियोंको तथा त्वचासे पर्वत, समुद्र और गाय आदि पशुओंको प्रकट किया। भगवान्‌के मुखसे ब्राह्मण, दोनों भुजाओंसे क्षत्रिय, जाँघोंसे वैश्य तथा दोनों चरणोंसे शूद्र जातिकी उत्पत्ति हुई।

इस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करके देवेश्वर श्रीकृष्णने उसे अचेतन रूपमें स्थित देख स्वयं ही विश्वरूपसे उसके भीतर प्रवेश किया। श्रीहरिकी शक्तिके बिना संसार हिल-डुल नहीं सकता। इसलिये सनातन श्रीविष्णु ही सम्पूर्ण जगत्‌के प्राण हैं। वे ही अव्यक्त रूपमें स्थित होनेपर परमात्मा कहलाते हैं। वे षड्विध ऐश्वर्यसे परिपूर्ण सनातन वासुदेव हैं। वे अपने तीन गुणोंसे चार स्वरूपोंमें स्थित होकर जगत्‌की सृष्टि करते हैं। प्रद्युम्नरूपधारी भगवान् सब ऐश्वर्योंसे युक्त हैं। वे ब्रह्मा, प्रजापति, काल तथा जीव—सबके अन्तर्यामी होकर सृष्टिका कार्य भलीभाँति सिद्ध करते हैं। महात्मा वासुदेवने उन्हें इतिहाससहित सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान प्रदान किया है। लोकपितामह ब्रह्माजी प्रद्युम्नके ही अंशभागी हैं। वे संसारकी सृष्टि और पालन भी करते हैं। भगवान् अनिरुद्ध शक्ति और तेजसे सम्पन्न हैं। वे मनुओं, राजाओं, काल तथा जीवके अन्तर्यामी होकर सबका पालन करते हैं। संकर्षण महाविष्णुरूप हैं। उनमें विद्या और बल दोनों हैं। वे सम्पूर्ण भूतोंके काल, रुद्र और यमके अन्तर्यामी होकर जगत्‌का संहार करते हैं। मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध और कल्कि—ये दस भगवान् विष्णुके अवतार हैं।

पार्वती! श्रीहरिकी उस अवस्थाका वर्णन सुनो। परमश्रेष्ठ वैकुण्ठलोक, विष्णुलोक, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर—ये चार व्यूह महर्षियोंद्वारा बताये गये हैं। वैकुण्ठलोक जलके घेरेमें है। वह कारणरूप और शुभ है। उसका तेज कोटि अग्नियोंके समान उद्दीप्त रहता है। वह सम्पूर्ण धर्मोंसे युक्त और अविनाशी है। परमधामका जैसा लक्षण बताया गया है, वैसा ही उसका भी है। नाना प्रकारके रत्नोंसे उद्भासित वैकुण्ठनगर चण्ड आदि द्वारपालों और कुमुद आदि दिक्पालोंसे सुरक्षित है। भाँति-भाँतिकी मणियोंसे बने हुए दिव्य गृहोंकी पङ्क्तियोंसे वह नगर घिरा हुआ है। उसकी चौड़ाई पचपन योजन तथा लंबाई एक हजार योजन है। करोड़ों

ऊँचे-ऊँचे महल उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वह नगर तरुण अवस्थावाले दिव्य स्त्री-पुरुषोंसे सुशोभित है। वहाँकी स्त्रियाँ और पुरुष समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। स्त्रियोंका रूप भगवती लक्ष्मीके समान होता है और पुरुषोंका भगवान् विष्णुके समान। वे सब प्रकार आभूषणोंसे विभूषित होते हैं तथा भक्तिजनित मनोरम आह्लादसे सदा आनन्दमग्न रहते हैं। उनका भगवान् विष्णुके साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध बना रहता है। वे सदा उनके समान ही सुख भोगते हैं। जहाँ कहींसे भी श्रीहरिके लोकमें प्रविष्ट हुए शुद्ध अन्तःकरणवाले मानव फिर संसारमें जन्म नहीं लेते। मनीषी पुरुष भगवान् विष्णुके दास-भावको ही मोक्ष कहते हैं। उनकी दासताका नाम बन्धन नहीं है। भगवान्के भक्त तो सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त और रोग-शोकसे रहित होते हैं। ब्रह्मलोकतकके प्राणी पुनः संसारमें आकर जन्म लेते, कर्मोंके बन्धनमें पड़ते और दुःखी तथा भयभीत होते हैं। पार्वती ! उन लोकोंमें जो फल मिलता है, वह बड़ा आयाससाध्य होता है। वहाँका सुख-भोग विषमिश्रित मधुर अन्नके समान है। जब पुण्यकर्मोंका क्षय हो जाता है, तब मनुष्योंको स्वर्गमें स्थित देख देवता कुपित हो उठते हैं और उसे संसारके कर्मबन्धनमें डाल देते हैं; इसलिये स्वर्गका सुख बड़े क्लेशसे सिद्ध होता है। वह अनित्य, कुटिल और दुःखमिश्रित होता है; इसलिये योगी पुरुष उसका परित्याग कर दे। भगवान् विष्णु सब दुःखोंकी राशिका नाश करनेवाले हैं; अतः सदा उनका स्मरण करना चाहिये। भगवान्का नाम लेनेमात्रसे मनुष्य परमपदको प्राप्त होते हैं। इसलिये पार्वती ! विद्वान् पुरुष सदा भगवान् विष्णुके लोकको पानेकी इच्छा करे। भगवान् दयाके सागर हैं; अतः अनन्य भक्तिके साथ उनका भजन करना चाहिये। वे सर्वज्ञ और गुणवान् हैं। निःसन्देह सबकी रक्षा करते हैं। जो परम कल्याणकारक और सुखमय अष्टाक्षर मन्त्रका जप करता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है।

वहाँ भगवान् श्रीहरि सहस्रों सूर्योंकी किरणोंसे सुशोभित दिव्य विमानपर विराजमान रहते हैं। उस विमानमें मणियोंके खंभे शोभा पाते हैं। उसमें एक सुवर्णमय पीठ है, जिसे आधारशक्ति आदिने धारण कर रखा है तथा जो भाँति-भाँतिके रत्नोंका बना हुआ एवं अलौकिक है। उसमें अनेकों रंग जान पड़ते हैं। पीठपर अष्टदल कमल है, जिसपर मन्त्रोंके अक्षर और पद अङ्कित हैं। उसकी सुरम्य कर्णिकामें लक्ष्मी-बीजका शुभ अक्षर अङ्कित है। उसमें कमलके आसनपर दिव्यविग्रह भगवान् श्रीनारायण विराजमान हैं, जो अरबों-खरबों बालसूर्योंके समान कान्ति धारण करते हैं। उनके दाहिने पार्श्वमें सुवर्णके समान कान्तिमती जगन्माता श्रीलक्ष्मी विराजती हैं, जो समस्त शुभ-लक्षणोंसे सम्पन्न और दिव्य मालाओंसे सुशोभित हैं। उनके हाथोंमें सुवर्णपात्र, मातुलुङ्ग और सुवर्णमय कमल शोभा पाते हैं। भगवान्के वामभागमें भूदेवी विराजमान हैं, जिनकी कान्ति नील कमल-दलके समान श्याम है। वे नाना प्रकारके आभूषणों और विचित्र वस्त्रोंसे विभूषित हैं। उनके ऊपरके हाथोंमें दो लाल कमल हैं और नीचेके दो हाथोंमें उन्होंने दो धान्यपात्र धारण कर रखे हैं। विमला आदि शक्तियाँ दिव्य चँवर लेकर कमलके आठों दलोंमें स्थित हो भगवान्की सेवा करती हैं। वे सभी समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। भगवान् श्रीहरि उन सबके बीचमें विराजते हैं। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं। भगवान् केयूर, अङ्गद और हार आदि दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके कानोंमें उदयकालीन सूर्यके समान तेजोमय कुण्डल झिलमिला रहे हैं। पूर्वोक्त देवता उन परमेश्वरकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। इस प्रकार नित्य वैकुण्ठधाममें भगवान् सब भोगोंसे सम्पन्न हो नित्य विराजमान रहते हैं। वह परम रमणीय लोक अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करनेवाले सिद्ध मनीषी पुरुषों तथा श्रीविष्णु भक्तोंको प्राप्त होता है। पार्वती ! इस प्रकार मैंने तुमसे प्रथम व्यूहका वर्णन किया।

इसी प्रकार वैष्णवलोक, श्वेतद्वीप और क्षीरसागर-निवासी द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ व्यूहका वर्णन करके श्रीशिवजीने कहा—'पार्वती ! अब और क्या सुनना चाहती हो ? देवि ! भगवान् पुरुषोत्तममें तुम्हारी भक्ति है। इसलिये तुम धन्य और कृतार्थ हो।

★

मत्स्य और कूर्म अवतारोंकी कथा—समुद्र-मन्थनसे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव और एकादशी-द्वादशीका माहात्म्य

पार्वतीजीने कहा—महेश्वर! अब मुझसे भगवान्‌के वैभव—मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! एकाग्रचित्त होकर सुनो। मैं श्रीहरिके वैभव—मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंका वर्णन करता हूँ। जैसे एक दीपकसे दूसरे अनेक दीपक जला लिये जाते हैं, उसी प्रकार एक परमेश्वरके अनेक अवतार होते हैं। उन अवतारोंके परावस्थ, व्यूह और विभव आदि अनेक भेद हैं। भगवान् विष्णुके अनेक शुभ अवतार बताये गये हैं; ब्रह्माजीने भृगु, मरीचि, अत्रि, दक्ष, कर्दम, पुलस्त्य, पुलह, अङ्गिरा तथा क्रतु—इन नौ प्रजापतियोंको उत्पन्न किया। इनमें मरीचिने कश्यपको जन्म दिया। कश्यपके चार स्त्रियाँ थीं—अदिति, दिति, कद्रू और विनता। अदितिसे देवताओंका जन्म हुआ। दितिने तमोगुणी पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो महान् असुर हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—मकर, हयग्रीव, महाबली हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, जम्भ और मय आदि। मकर बड़ा बलवान् था। उसने ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीको मोहित करके उनसे सम्पूर्ण वेद ले लिये। इस प्रकार श्रुतियोंका अपहरण करके वह महासागरमें घुस गया। फिर तो सारा संसार धर्मसे शून्य हो गया। वर्णसंकर-सन्तान उत्पन्न होने लगी। स्वाध्याय, वषट्कार और वर्णाश्रम-धर्मका लोप हो गया। तब ब्रह्माजीने सम्पूर्ण देवताओंके साथ क्षीरसागरपर भगवान्‌की शरणमें जाकर मकर दैत्यके द्वारा अपहरण किये हुए वेदोंका उद्धार करनेके लिये उनका स्तवन किया।

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी परमेश्वर श्रीविष्णु मत्स्यरूप धारण करके महासागरमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने उस अत्यन्त भयंकर मकर नामक दैत्यको थूथुनके अग्रभागसे विदीर्ण करके मार डाला और अङ्ग-उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंको लाकर ब्रह्माजीको समर्पित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने मत्स्यावतारके द्वारा सम्पूर्ण देवताओंकी रक्षा की। वेदोंको लाकर श्रीहरिने तीनों लोकोंका भय दूर किया, धर्मकी प्राप्ति करायी और देवताओं तथा सिद्धोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे वहाँसे अन्तर्धान हो गये।

प्रिये! अब मैं श्रीविष्णुके कूर्मावतार-सम्बन्धी विश्ववन्दित वैभवका वर्णन करूँगा। महर्षि अत्रिके पुत्र दुर्वासा बड़े ही तेजस्वी मुनि हुए। वे महान् तपस्वी, अत्यन्त क्रोधी तथा सम्पूर्ण लोकोंको क्षोभमें डालनेवाले हैं। एक समयकी बात है—वे देवराज इन्द्रसे मिलनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। उस समय इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित होकर कहीं जानेके लिये उद्यत थे। उन्हें देखकर महातपस्वी दुर्वासाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विनीत भावसे देवराजको एक पारिजातकी माला भेंट की। देवराजने उसे लेकर हाथीके मस्तकपर डाल दिया और स्वयं नन्दनवनकी ओर चल दिये। हाथी मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सूँड़से उस मालाको उतार लिया और मसलते हुए तोड़कर जमीनपर फेंक दिया। इससे दुर्वासाजीको क्रोध आ गया और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'देवराज! तुम त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होनेके कारण मेरा अपमान करते हो। इसलिये तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

दुर्वासाके इस प्रकार शाप देनेपर इन्द्र पुनः अपने नगरको लौट गये। तत्पश्चात् जगन्माता लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयीं। ब्रह्मा आदि देवता, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, दैत्य, दानव, नाग, मनुष्य, राक्षस, पशु, पक्षी तथा कीट आदि जगत्‌के समस्त चराचर प्राणी दरिद्रताके मारे दुःख भोगने लगे। सब लोगोंने भूख-प्याससे पीड़ित होकर ब्रह्माजीके पास जाकर कहा—'भगवन्! तीनों लोक भूख-प्याससे पीड़ित हैं। आप सब लोकोंके स्वामी और रक्षक हैं।

अतः हम आपकी शरणमें आये हैं। देवेश! आप हमारी रक्षा करें।'

ब्रह्माजी बोले—देवता, दैत्य, गन्धर्व और मनुष्य आदि प्राणियो! सुनो। इन्द्रके अनाचारसे ही यह सारा संकट उपस्थित हुआ है। उन्होंने अपने बर्तावसे महात्मा दुर्वासाको कुपित कर दिया है। उन्हींके क्रोधसे आज तीनों लोकोंका नाश हो रहा है। जिनकी कृपा-कटाक्षसे सब लोक सुखी होते हैं, वे जगन्माता महालक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी हैं। जबतक वे अपनी कृपादृष्टिसे नहीं देखेंगी, तबतक सब लोग दुःखी ही रहेंगे। इसलिये हम सब लोग चलकर क्षीरसागरमें विराजमान सनातनदेव भगवान् नारायणकी आराधना करें। उनके प्रसन्न होनेपर ही सम्पूर्ण जगत्का कल्याण होगा।

ऐसा निश्चय करके ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं और भृगु आदि महर्षियोंके साथ क्षीरसागरपर गये और विधिपूर्वक पुरुषसूक्तके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने अनन्यचित्त होकर अष्टाक्षर मन्त्रका जप और पुरुषसूक्तका पाठ करके परमेश्वरका ध्यान करते हुए उनके लिये हवन किया तथा दिव्य स्तोत्रोंसे स्तवन और विधिवत् नमस्कार किया। इससे प्रसन्न होकर भगवान्ने सब देवताओंको दर्शन दिया और कृपापूर्वक कहा—'देवगण! मैं वर देना चाहता हूँ, तुमलोग इच्छानुसार वर माँगो।' यह सुनकर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! दुर्वासा मुनिके शापसे तीनों लोक सम्पत्तिहीन हो गये हैं। पुरुषोत्तम! इसीलिये हम आपकी शरणमें आये हैं।'

श्रीभगवान् बोले—देवताओ! अत्रिकुमार दुर्वासा मुनिके शापसे भगवती लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी हैं। अतः तुमलोग मन्दराचल पर्वतको उखाड़कर क्षीरसमुद्रमें रखो और उसे मथानी बना नागराज वासुकिको रस्सीकी जगह उसमें लपेट दो। फिर दैत्य, गन्धर्व और दानवोंके साथ मिलकर समुद्रका मन्थन करो। तत्पश्चात् जगत्की रक्षाके लिये लक्ष्मी प्रकट होंगी। उनकी कृपादृष्टि पड़ते ही तुमलोग महान् सौभाग्यशाली हो जाओगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मैं ही कूर्मरूपसे मन्दराचलको अपनी पीठकर धारण करूँगा। तथा मैं ही सम्पूर्ण देवताओंमें प्रवेश करके अपनी शक्तिसे उन्हें बलिष्ठ बनाऊँगा।

भगवान्के ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता उन्हें साधुवाद देने लगे। उनकी स्तुति सुनते हुए भगवान् अच्युत वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और महाबली दानव आदिने मन्दराचल पर्वतको उखाड़कर क्षीरसागरमें डाला। इसी समय अमित-पराक्रमी भूतभावन भगवान् नारायणने कछुएके रूपमें प्रकट होकर उस पर्वतको अपनी पीठपर धारण किया तथा एक हाथसे उन सर्वव्यापी अविनाशी प्रभुने उसके शिखरको भी पकड़ रखा था। तदनन्तर देवता और असुर मन्दराचल पर्वतमें नागराज वासुकिको लपेटकर क्षीरसागरका मन्थन करने लगे। जिस समय महाबली देवता लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये क्षीरसागरको मथने लगे, उस समय सम्पूर्ण महर्षि उपवास करके मन और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक श्रीसूक्त और विष्णुसहस्रनामका पाठ करने लगे। शुद्ध एकादशी तिथिको समुद्रका मन्थन आरम्भ हुआ। उस समय लक्ष्मीके प्रादुर्भावकी अभिलाषा रखते हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणों और मुनिवरोंने भगवान् लक्ष्मीनारायणका ध्यान और पूजन किया। उस मुहूर्तमें सबसे पहले कालकूट नामक महाभयंकर विष प्रकट हुआ, जो बहुत बड़े पिण्डके रूपमें था। वह प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसे देखते ही सम्पूर्ण देवता और दानव भयसे व्याकुल हो भाग चले। उन्हें भयसे पीडित हो भागते देख मैंने उन सबको रोककर कहा—'देवताओ! इस विषसे भय न करो। इस कालकूट नामक महान् विषको मैं अभी अपना आहार बना लूँगा।' मेरी बात सुनकर इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे चरणोंमें पड़ गये और 'साधु-साधु' कहकर मेरी स्तुति करने लगे। उधर मेघके समान काले रंगवाले उस महाभयानक विषको प्रकट हुआ देख मैंने एकाग्रचित्तसे अपने हृदयमें सर्वदुःखहारी भगवान् नारायणका ध्यान किया और उनके तीन नामरूपी महामन्त्रका भक्तिपूर्वक जप करते हुए उस

भयंकर विषको पी लिया। सर्वव्यापी श्रीविष्णुके तीन नामोंके प्रभावसे उस लोकसंहारकारी विषको मैंने अनायास ही पचा लिया। अच्युत, अनन्त और गोविन्द—ये ही श्रीहरिके तीन नाम हैं। जो एकाग्रचित्त हो इनके आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः जोड़कर (**ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः** तथा **ॐ गोविन्दाय नमः** इस रूपमें) भक्तिपूर्वक जप करता है, उसे विष, रोग और अग्निसे होनेवाली मृत्युका महान् भय नहीं प्राप्त होता। जो इस तीन नामरूपी महामन्त्रका एकाग्रतापूर्वक जप करता है, उसे काल और मृत्युसे भी भय नहीं होता; फिर दूसरोंसे भय होनेकी तो बात ही क्या है।* देवि ! इस प्रकार मैंने तीन नामोंके ही प्रभावसे विषका पान किया था।

[तत्पश्चात् समुद्र-मन्थन करनेपर लक्ष्मीजीकी बड़ी बहन दरिद्रा देवी प्रकट हुईं। वे लाल वस्त्र पहने थीं। उन्होंने देवताओंसे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है।' तब देवताओंने उनसे कहा—'जिनके घरमें प्रतिदिन कलह होता हो, वहीं हम तुम्हें रहनेके लिये स्थान देते हैं। तुम अमङ्गलको साथ लेकर उन्हीं घरोंमें जा बसो। जहाँ कठोर भाषण किया जाता हो, जहाँके रहनेवाले सदा झूठ बोलते हों तथा जो मलिन अन्तःकरणवाले पापी सन्ध्याके समय सोते हों, उन्हींके घरमें दुःख और दरिद्रता प्रदान करती हुई तुम नित्य निवास करो। महादेवि ! जो खोटी बुद्धिवाला मनुष्य पैर धोये बिना ही आचमन करता है, उस पापपरायण मानवकी ही तुम सेवा करो।'

कलहप्रिया दरिद्रा देवीको इस प्रकार आदेश देकर] सम्पूर्ण देवताओंने एकाग्रचित्त हो पुनः क्षीरसागरका मन्थन आरम्भ किया। तब सुन्दर नेत्रोंवाली वारुणी देवी प्रकट हुई, जिसे नागराज अनन्तने ग्रहण किया। तदनन्तर समस्त शुभलक्षणोंसे सुशोभित और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित एक स्त्री प्रकट हुई, जिसे गरुड़ने अपनी पत्नी बनाया। इसके बाद दिव्य अप्सराएँ और महातेजस्वी गन्धर्व उत्पन्न हुए, जो अत्यन्त रूपवान् और सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निके समान तेजस्वी थी। तत्पश्चात् ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा नामक अश्व, धन्वन्तरि वैद्य, पारिजात वृक्ष और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौका प्रादुर्भाव हुआ। इन सबको देवराज इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण किया। इसके बाद द्वादशीको प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर सम्पूर्ण लोकोंकी अधीश्वरी कल्याणमयी भगवती महालक्ष्मी प्रकट हुईं। उन्हें देखकर सब देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। देवलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, वनदेवियाँ फूलोंकी वृष्टि करने लगीं, गन्धर्वराज गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं। शीतल एवं पवित्र हवा चलने लगी। सूर्यकी प्रभा निर्मल हो गयी। बुझी हुई अग्नियाँ जल उठीं और सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी।

[तदनन्तर क्षीरसागरसे शीतल एवं अमृतमयी किरणोंसे युक्त चन्द्रमा प्रकट हुए, जो माता लक्ष्मीके भाई और सबको सुख देनेवाले हैं। वे नक्षत्रोंके स्वामी और सम्पूर्ण जगत्के मामा हैं] इसके बाद श्रीहरिकी पत्नी तुलसीदेवी प्रकट हुईं, जो परम पवित्र और सम्पूर्ण विश्वको पावन बनानेवाली हैं। जगन्माता तुलसीका प्रादुर्भाव श्रीहरिकी पूजाके लिये ही हुआ है। तत्पश्चात् सब देवता प्रसन्नचित्त होकर मन्दराचलपर्वतको यथास्थान रख आये और सफल मनोरथ हो माता लक्ष्मीके पास जा सहस्रनामसे स्तुति करके श्रीसूक्तका जप करने लगे। तब भगवती लक्ष्मीने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देववरो ! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देना चाहती हूँ। मुझसे मनोवाञ्छित वर माँगो।'

देवता बोले—सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान्

---

* अच्युतानन्त गोविन्द इति नामत्रयं हरेः। यो जपेत्प्रयतो भक्त्या प्रणवाद्यं नमोऽन्तकम्॥
तस्य मृत्युभयं नास्ति विषरोगाग्निजं महत्। नामत्रयं महामन्त्रं जपेद्यः प्रयतात्मवान्॥
कालमृत्युभयं चापि तस्य नास्ति किमन्यतः। (२६०। १९—२१)

विष्णुकी प्रियतमा लक्ष्मीदेवी ! आप हमलोगोंपर प्रसन्न हों और श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें सदा निवास करें। कभी भगवान्‌से अलग न हों तथा तीनों लोकोंका भी कभी परित्याग न करें। देवि ! यही हमारे लिये श्रेष्ठ वर है। जगन्माता ! आपको नमस्कार है। हम आपसे यही चाहते हैं।

देवताओंके ऐसा कहनेपर श्रीनारायणकी प्रियतमा लोकमाता महेश्वरी लक्ष्मीने 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तदनन्तर क्षीरसागरपर भगवान् नारायण और ब्रह्माजी भी प्रकट हुए। देवताओंने जनार्दनको नमस्कार करके उनका स्तवन किया और प्रसन्नवदन हो, हाथ जोड़कर कहा—'सर्वेश्वर ! आप अपनी प्रियतमा और महारानी लक्ष्मीदेवीको, जो कभी आपसे अलग होनेवाली नहीं हैं, जगत्‌की रक्षाके लिये ग्रहण कीजिये।' ऐसा कहकर ब्रह्मा आदि देवता और मुनियोंने नाना प्रकारके रत्नोंसे बने हुए बालसूर्यके समान तेजस्वी दिव्य पीठपर भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मीको बिठाया तथा नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए उन्होंने दिव्य वस्त्र, दिव्य माला, रत्नमय आभूषण एवं अप्राकृत दिव्य फलोंसे उन दोनोंका पूजन किया। क्षीरसागरसे जो कोमल दलोंवाली तुलसीदेवी प्रकट हुई थीं, उनके द्वारा उन्होंने लक्ष्मीजीके युगल चरणोंका अर्चन किया। फिर तीन बार प्रदक्षिणा और बारंबार नमस्कार करके दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति की। इससे सर्वदेवेश्वर भगवान् श्रीहरिने लक्ष्मीसहित प्रसन्न होकर देवताओंको मनोवाञ्छित वरदान दिया। तबसे देवता और मनुष्य आदि प्राणी बहुत प्रसन्न रहने लगे। उनके यहाँ धन-धान्यकी प्रचुर वृद्धि हुई और वे नीरोग होकर अत्यन्त सुखका अनुभव करने लगे।

इसके बाद लक्ष्मीसहित भगवान् विष्णुने प्रसन्न होकर सम्पूर्ण लोकोंके हितके लिये समस्त महामुनियों और देवताओंसे कहा—'मुनियो और महाबली देवताओ ! तुम सब लोग सुनो—एकादशी तिथि परम पुण्यमयी है। वह सब उपद्रवोंको शान्त करनेवाली है। तुमलोगोंने लक्ष्मीका दर्शन पानेके लिये इस तिथिको उपवास किया है; इसलिये यह द्वादशी तिथि मुझे सदा प्रिय होगी। आजसे जो लोग एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल सूर्योदय होनेपर बड़ी श्रद्धाके साथ लक्ष्मी और तुलसीके साथ मेरा पूजन करेंगे, वे सब बन्धनोंसे मुक्त होकर मेरे परम पदको प्राप्त होंगे।'

ऐसा कहकर सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु मुनियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए लक्ष्मीजीके निवासस्थान क्षीरसागरमें चले गये। वहाँ सूर्यके समान तेजोमय विमानपर शेषनागकी शय्याके ऊपर विशाललोचना भगवती रमाके साथ रहने लगे। वे देवताओंको दर्शन देनेके लिये सदा ही वहाँ निवास करते हैं। तदनन्तर सब देवता कच्छपरूपधारी सनातन भगवान्‌का भक्तिपूर्वक पूजन करके प्रसन्नचित्त हो उनकी स्तुति करने लगे। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बोले—'देवेश्वरो ! तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा हो, वैसा वर माँगो।'

देवता बोले—महाबली देवेश्वर ! आप शेषनाग और दिग्गजोंकी सहायताके लिये सात द्वीपोंवाली इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण कीजिये।

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर विश्वभावन भगवान्‌ने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'एवमस्तु' (ऐसा ही हो)। तबसे उन्होंने सातों द्वीपोंसहित पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किया। तदनन्तर महर्षियोंसहित देवता, गन्धर्व, दैत्य, दानव तथा मानव भगवान्‌की आज्ञा ले अपने-अपने लोकको चले गये। तबसे ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध, मनुष्य, योगी तथा मुनिश्रेष्ठ भगवान्‌की आज्ञा मानकर बड़ी भक्तिके साथ एकादशी तिथिको उपवास और द्वादशी तिथिको भगवान्‌का पूजन करने लगे।

★

नृसिंहावतार एवं प्रह्लादजीकी कथा

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! दितिसे कश्यपजीके दो महाबली पुत्र हुए थे, जिनका नाम हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष था। वे दोनों महापराक्रमी और सम्पूर्ण दैत्योंके स्वामी थे। उनके दैत्य-योनिमें आनेका कारण इस प्रकार है। वे पूर्वजन्ममें जय-विजय नामक श्रीहरिके पार्षद थे और श्वेतद्वीपमें द्वारपालका काम करते थे। एक समय सनकादि योगीश्वर भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये उत्सुक हो श्वेतद्वीपमें आये। महाबली जय-विजयने उन्हें बीचमें ही रोक दिया। इससे सनकादिने उन्हें शाप दे दिया—'द्वारपालो! तुम दोनों भगवान्‌के इस धामका परित्याग करके भूलोकमें चले जाओ।' इस प्रकार शाप देकर वे मुनीश्वर वहीं ठहर गये। भगवान्‌को यह बात मालूम हो गयी और उन्होंने सनकादि महात्माओं तथा दोनों द्वारपालोंको भी बुलाया। निकट आनेपर भूतभावन भगवान्‌ने जय-विजयसे कहा—'द्वारपालो! तुमलोगोंने महात्माओंका अपराध किया है। अतः तुम इस शापका उल्लङ्घन नहीं कर सकते। तुम यहाँसे जाकर या तो सात जन्मोंतक मेरे पापहीन भक्त होकर रहो या तीन जन्मोंतक मेरे प्रति शत्रुभाव रखते हुए समय व्यतीत करो।'

यह सुनकर जय-विजयने कहा—मानद! हम अधिक समयतक आपसे अलग पृथ्वीपर रहनेमें असमर्थ हैं। इसलिये केवल तीन जन्मोंतक ही शत्रुभाव धारण करके रहेंगे।

ऐसा कहकर वे दोनों महाबली द्वारपाल कश्यपके वीर्यसे दितिके गर्भमें आये और महापराक्रमी असुर होकर प्रकट हुए। उनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु था और छोटेका हिरण्याक्ष। वे दोनों सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात हुए। उन्हें अपने बल और पराक्रमपर बड़ा अभिमान था। हिरण्याक्ष मदसे उन्मत्त रहता था। उसका शरीर कितना बड़ा था या हो सकता था—इसके लिये कोई निश्चित मापदण्ड नहीं था। उसने अपनी हजारों भुजाओंसे पर्वत, समुद्र, द्वीप और सम्पूर्ण प्राणियोंसहित इस पृथ्वीको उखाड़ लिया और सिरपर रखकर रसातलमें चला गया। यह देख सम्पूर्ण देवता भयसे पीडित हो हाहाकार करने लगे और रोग-शोकसे रहित भगवान् नारायणकी शरणमें गये। उस अद्भुत वृत्तान्तको जानकर विश्वरूपधारी जनार्दनने वाराहरूप धारण किया। उस समय उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें और विशाल भुजाएँ थीं। उन परमेश्वरने अपनी एक दाढ़से उस दैत्यपर आघात किया। इससे उसका विशाल शरीर कुचल गया और वह अधम दैत्य तुरंत ही मर गया। पृथ्वीको रसातलमें पड़ी देख भगवान् वाराहने उसे अपनी दाढ़पर उठा लिया और उसे पहलेकी भाँति शेषनागके ऊपर स्थापित करके स्वयं कच्छपरूपसे उसके आधार बन गये। वाराहरूपधारी महाविष्णुको वहाँ देखकर सम्पूर्ण देवता और मुनि भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे। स्तुतिके पश्चात् उन्होंने गन्ध, पुष्प आदिसे श्रीहरिका पूजन किया। तब भगवान्‌ने उन सबको मनोवाञ्छित वरदान दिया। इसके बाद वे महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये।

अपने भाई हिरण्याक्षको मारा गया जान महादैत्य हिरण्यकशिपु मेरुगिरिके पास जा मेरा ध्यान करते हुए तपस्या करने लगा। पार्वती! उस महाबली दैत्यने एक हजार दिव्य वर्षोंतक केवल वायु पीकर जीवन-निर्वाह किया और **'ॐ नमः शिवाय'** इस पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करते हुए वह सदा मेरा पूजन करता रहा। तब मैंने प्रसन्न होकर उस महान् असुरसे कहा—'दितिनन्दन! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।' तब वह मुझे प्रसन्न जानकर बोला—'भगवन्! देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सिद्ध, महात्मा, यक्ष, विद्याधर और किन्नरोंसे, समस्त रोगोंसे, सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे तथा सम्पूर्ण महर्षियोंसे भी मेरी मृत्यु न हो सके—यह वरदान दीजिये।' 'एवमस्तु' कहकर मैंने उसे वरदान दे दिया। मुझसे महान् वर पाकर वह महाबली दैत्य इन्द्र और

देवताओंको जीत करके तीनों लोकोंका सम्राट् बन बैठा। उसने बलपूर्वक समस्त यज्ञ-भागोंपर अधिकार जमा लिया। देवताओंको कोई रक्षक न मिला। वे उससे परास्त हो गये। गन्धर्व, देवता और दानव—सभी उसके किङ्कर हो गये। यक्ष, नाग और सिद्ध—सभी उसके अधीन रहने लगे। उस महाबली दैत्यराजने राजा उत्तानपादकी पुत्री कल्याणीके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके गर्भसे महातेजस्वी प्रह्लादका जन्म हुआ, जो आगे चलकर दैत्योंके राजा हुए। वे गर्भमें रहते समय भी सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी श्रीहरिमें अनुराग रखते थे। सब अवस्थाओं और समस्त कार्योंमें मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा वे देवताओंके स्वामी सनातन भगवान् पद्मनाभके सिवा दूसरे किसीको नहीं जानते थे। उनकी बुद्धि बड़ी निर्मल थी। समयानुसार उपनयन-संस्कार हो जानेपर वे गुरुकुलमें अध्ययन करने लगे। सम्पूर्ण वेदों और नाना प्रकारके शास्त्रोंका अध्ययन करके वे प्रह्लाद किसी समय अपने गुरुके साथ घरपर आये। उन्होंने पिताके पास जाकर बड़ी विनयके साथ उनके चरणोंमें प्रणाम किया। हिरण्यकशिपुने उत्तम लक्षणोंसे युक्त पुत्रको चरणोंमें पड़ा देख भुजाओंसे उठाकर छातीसे लगा लिया और गोदमें बिठाकर कहा—'बेटा प्रह्लाद! तुमने दीर्घकालतक गुरुकुलमें निवास किया है। वहाँ गुरुजीने जो तुम्हें जानने योग्य तत्त्व बतलाया हो, वह मुझसे कहो।'

पिताके इस प्रकार पूछनेपर जन्मसे ही वैष्णव प्रह्लादने बड़ी प्रसन्नताके साथ पापनाशक वचन कहा—'पिताजी! जो सम्पूर्ण उपनिषदोंके प्रतिपाद्य तत्त्व, अन्तर्यामी पुरुष और ईश्वर हैं, उन सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको नमस्कार करके मैं आपसे कुछ निवेदन करता हूँ।' प्रह्लादके मुखसे इस प्रकार विष्णुकी स्तुति सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कुपित होकर गुरुसे पूछा—'खोटी बुद्धिवाले ब्राह्मण! तूने मेरे पुत्रको क्या सिखा दिया। मेरा पुत्र और इस प्रकार विष्णुकी स्तुति करे—तूने ऐसी शिक्षा क्यों दी? यह मूर्खतापूर्ण न करनेयोग्य कार्य ब्राह्मणोंके ही योग्य है। ब्राह्मणाधम! मेरे शत्रुकी यह स्तुति, जो कदापि सुननेयोग्य नहीं है, आज मेरे ही आगे इस बालकने भी सुना दी। यह सब तेरा ही प्रसाद है।' इतना कहते-कहते दैत्यराज हिरण्यकशिपु क्रोधके मारे अपनी सुध-बुध खो बैठा और चारों ओर देखकर दैत्योंसे बोला—'अरे! इस ब्राह्मणको मार डालो।' आज्ञा पाते ही क्रोधमें भरे हुए राक्षस आ पहुँचे और उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके गलेमें रस्सी लगाकर उन्हें बाँधने लगे। ब्राह्मणोंके प्रेमी प्रह्लाद अपने गुरुको बँधते देख पितासे बोले—'तात! यह गुरुजीने नहीं सिखाया है। मुझे तो देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी ही कृपासे ऐसी शिक्षा मिली है। दूसरा कोई गुरु मुझे उपदेश नहीं देता। मेरे लिये तो श्रीहरि ही प्रेरक हैं। सुनने, मनन करने, बोलने तथा देखनेवाले सर्वव्यापी ईश्वर केवल श्रीविष्णु ही हैं। वे ही अविनाशी कर्त्ता हैं और वे ही सब प्राणियोंपर नियन्त्रण करनेवाले हैं। अतः प्रभो! मेरे गुरु इन ब्राह्मणदेवताका कोई अपराध नहीं है। इन्हें बन्धनसे मुक्त कर देना चाहिये।'

पुत्रकी यह बात सुनकर हिरण्यकशिपुने ब्राह्मणका बन्धन खुलवा दिया और स्वयं बड़े विस्मयमें पड़कर प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम ब्राह्मणोंके झूठे बहकावेमें आकर क्यों भ्रममें पड़ रहे हो? कौन विष्णु है? कैसा उसका रूप है और कहाँ वह निवास करता है? संसारमें मैं ही ईश्वर हूँ। मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी माना गया हूँ। विष्णु तो हमारे कुलका शत्रु है। उसे छोड़ो और मेरी ही पूजा करो। अथवा लोकगुरु भगवान् शंकरकी आराधना करो, जो देवताओंके अध्यक्ष, सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले और परम कल्याणमय हैं। ललाटमें भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके पाशुपत-मार्गसे दैत्यपूजित महादेवजीकी पूजामें संलग्न रहो।'

पुरोहितोंने कहा—ठीक ऐसी ही बात है। महाभाग! प्रह्लाद! तुम पिताकी बात मानो। अपने कुलके शत्रु विष्णुको छोड़ो और त्रिनेत्रधारी महादेवजीकी पूजा करो। महादेवजीसे बढ़कर सब कुछ देनेवाला दूसरा कोई देवता नहीं है। उन्हींकी कृपासे आज तुम्हारे पिता भी ईश्वरपदपर प्रतिष्ठित हैं।

प्रह्लाद बोले—अहो ! भगवान्‌की कैसी महिमा है, जिनकी मायासे सारा जगत् मोहित हो रहा है ! कितने आश्चर्यकी बात है कि वेदान्तके विद्वान् और सब लोकोंमें पूजित ब्राह्मण भी मदोन्मत्त होकर चपलतावश ऐसी बातें कहते हैं। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि नारायण ही परब्रह्म हैं। नारायण ही परमतत्त्व हैं, नारायण ही सर्वश्रेष्ठ ध्याता और नारायण ही सर्वोत्तम ध्यान हैं। सम्पूर्ण जगत्‌की गति भी वे ही हैं। वे सनातन, शिव, अच्युत, जगत्‌के धाता, विधाता और नित्य वासुदेव हैं। परम पुरुष नारायण ही यह सम्पूर्ण विश्व हैं और वे ही इस विश्वको जीवन प्रदान करते हैं। उनका श्रीअङ्ग सुवर्णके समान कान्तिमान् है। वे नित्य देवता हैं। उनके नेत्र कमलके समान हैं। वे श्री, भू और लीला—इन तीनों देवियोंके स्वामी हैं। उनकी आकृति सुन्दर और सौम्य है तथा अन्तःकरण अत्यन्त निर्मल है। उन्होंने ही सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा और महादेवजीको उत्पन्न किया है। ब्रह्मा और महादेवजी उन्हींके आज्ञानुसार चलते हैं। उन्हींके भयसे वायु सदा गतिशील रहती है। उन्हींके डरसे सूर्यदेव ठीक समयपर उदित होते हैं। और उन्हींके भयसे अग्नि, इन्द्र तथा मृत्यु देवता सदा दौड़ लगाते रहते हैं। सृष्टिके आदिमें एकमात्र नित्य देवता भगवान् नारायण ही थे। उस समय न ब्रह्मा थे और न महादेवजी, न चन्द्रमा थे न सूर्य, न आकाश था न पृथ्वी। नक्षत्र और देवता भी उस समय प्रकट नहीं हुए थे। विद्वान् पुरुष सदा ही भगवान् विष्णुके उस परमधामका साक्षात्कार करते हैं। परम योगी महात्मा सनकादि भी जिन भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि देवता भी जिनकी आराधनामें लगे रहते हैं, जिनकी पत्नी भगवती लक्ष्मीकी कृपा-कटाक्षपूर्ण आधी दृष्टि पड़नेपर ही ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वरुण, यम, चन्द्रमा और कुबेर आदि देवता हर्षसे फूल उठते हैं, जिनके नामोंका स्मरण करनेमात्रसे पापियोंकी भी तत्काल मुक्ति हो जाती है, वे भगवान् लक्ष्मीपति ही देवताओंकी भी सदा रक्षा करते हैं। मैं लक्ष्मीसहित उन परमेश्वरका ही सदा पूजन करूँगा। तथा अनायास ही श्रीविष्णुके उस परम पदको प्राप्त कर लूँगा।

प्रह्लादकी ये बातें सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त क्रोधमें भरकर द्वितीय अग्निकी भाँति जल उठा और चारों ओर देखकर दैत्योंसे बोला—'अरे ! यह प्रह्लाद बड़ा पापी है। यह शत्रुकी पूजामें लगा है। मैं आज्ञा देता हूँ— इसे भयंकर शस्त्रोंसे मार डालो। जिसके बलपर यह 'श्रीहरि ही रक्षक हैं' ऐसा कहता है, उसे आज ही देखना है। उस हरिका रक्षा-कार्य कितना सफल है— यह अभी मालूम हो जायगा।'

दैत्यराजकी यह आज्ञा पाते ही दैत्य हथियार उठाकर महात्मा प्रह्लादको मार डालनेके लिये उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हो गये। इधर प्रह्लाद भी अपने हृदय-कमलमें श्रीविष्णुका ध्यान करते हुए अष्टाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे और दूसरे पर्वतकी भाँति अविचलभावसे खड़े रहे। दैत्यवीर चारों ओरसे उनके ऊपर शूल, तोमर और शक्तियोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु श्रीहरिका स्मरण करनेके कारण प्रह्लादका शरीर उस समय भगवान्‌के प्रभावसे दुर्धर्ष वज्रके समान हो गया। देवद्रोहियोंके बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र प्रह्लादके शरीरसे टकराकर टूट जाते और कमलके पत्तोंके समान छिन्न-भिन्न होकर पृथ्वीपर गिर जाते थे। दैत्य उनके अङ्गमें छोटा-सा भी घाव करनेमें समर्थ न हो सके। तब विस्मयसे नीचा मुँह किये वे सभी योद्धा दैत्यराजके पास जा चुपचाप खड़े हो गये। अपने महात्मा पुत्रको इस प्रकार तनिक भी चोट पहुँचती न देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने क्रोधसे व्याकुल होकर वासुकि आदि बड़े-बड़े विषैले और भयंकर सर्पोंको आज्ञा दी कि 'इस प्रह्लादको काट खाओ।'

राजाका यह आदेश पाकर अत्यन्त भयंकर और महाबली नाग, जिनके मुखोंसे आगकी लपटें निकल रही थीं, प्रह्लादको काट खानेकी चेष्टा करने लगे; किन्तु उनके शरीरमें दाँत लगाते ही वे सर्प विषोंसे हाथ धो बैठे। उनके दाँत भी टूट गये तथा हजारों गरुड़ प्रकट होकर उनके शरीरको छिन्न-भिन्न करने लगे। इससे व्याकुल

होकर मुखसे रक्त वमन करते हुए सभी सर्प इधर-उधर भाग गये। बड़े-बड़े सर्पोंकी ऐसी दुर्दशा देख दैत्यराजका क्रोध और भी बढ़ गया। अब उसने मतवाले दिग्गजोंको प्रह्लादपर आक्रमण करनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञासे प्रेरित होकर मदोन्मत्त दिग्गज प्रह्लादको चारों ओरसे घेरकर अपने विशाल और मोटे दाँतोंसे उनपर प्रहार करने लगे। किन्तु उनके शरीरसे टक्कर लेते ही दिग्गजोंके दाँत जड़-मूलसहित टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़े। अब वे बिना दाँतोंके हो गये। इससे उन्हें बड़ी पीड़ा हुई और वे सब ओर भाग गये। बड़े-बड़े गजराजोंको इस प्रकार भागते देख दैत्यराजके क्रोधकी सीमा न रही। उसने बहुत बड़ी चिता जलाकर उसमें अपने बेटेको डाल दिया। जलमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुके प्रियतम प्रह्लादको धीरभावसे बैठे देख भयंकर लपटोंवाले अग्निदेवने उन्हें नहीं जलाया। उनकी ज्वाला शान्त हो गयी। अपने बालकको आगमें भी जलते न देख दैत्यपतिके आश्चर्यकी सीमा न रही। उसने पुत्रको अत्यन्त भयंकर विष दे दिया, जो सब प्राणियोंके प्राण हर लेनेवाला था। किन्तु भगवान् विष्णुके प्रभावसे प्रह्लादके लिये विष भी अमृत हो गया। भगवान्‌को अर्पण करके उनके अमृतस्वरूप प्रसादको ही वे खाया करते थे। इस प्रकार राजा हिरण्यकशिपुने अपने पुत्रके वधके लिये बड़े भयंकर और निर्दयतापूर्ण उपाय किये; किन्तु प्रह्लादको सर्वथा अवध्य देखकर वह विस्मयसे व्याकुल हो उठा और बोला।

हिरण्यकशिपुने कहा—प्रह्लाद! तुमने मेरे सामने विष्णुकी श्रेष्ठताका भलीभाँति वर्णन किया है। वे सब भूतोंमें व्यापक होनेके कारण विष्णु कहलाते हैं। जो सर्वव्यापी देवता हैं, वे ही परमेश्वर हैं। अतः तुम मुझे विष्णुकी सर्वव्यापकताको प्रत्यक्ष दिखाओ। उनके ऐश्वर्य, शक्ति, तेज, ज्ञान, वीर्य, बल, उत्तम रूप, गुण और विभूतियोंको अच्छी तरह देख लूँ; तब मैं विष्णुको देवता मान सकता हूँ। इस समय संसारमें तथा देवताओंमें भी मेरे बलकी समानता करनेवाला कोई भी नहीं है। भगवान् शंकरके वरदानसे मैं सब प्राणियोंके लिये अवध्य हो गया हूँ। मुझे परास्त करना किसी भी प्राणीके लिये कठिन है। यदि विष्णु मुझे अपने बल और पराक्रमसे जीत लें तो ईश्वरका पद प्राप्त कर सकते हैं।

पिताकी यह बात सुनकर प्रह्लादको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने दैत्यराजके सामने श्रीहरिके प्रभावका वर्णन करते हुए कहा—'पिताजी! योगी पुरुष भक्तिके बलसे उनका सर्वत्र दर्शन करते हैं। भक्तिके बिना वे कहीं भी दिखायी नहीं देते। रोष और मत्सर आदिके द्वारा श्रीहरिका दर्शन होना असम्भव है। देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा स्थावर समस्त छोटे-बड़े प्राणियोंमें वे व्याप्त हो रहे हैं।'

प्रह्लादके ये वचन सुनकर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके उन्हें डाँटते हुए कहा—'यदि विष्णु सर्वव्यापी और परम पुरुष है तो इस विषयमें अधिक प्रलाप करनेकी आवश्यकता नहीं है। इसपर विश्वास करनेके लिये कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपस्थित करो।' ऐसा कहकर दैत्यने सहसा अपने महलके खंभेको हाथसे ठोंका और प्रह्लादसे फिर कहा—'यदि विष्णु सर्वत्र व्यापक है तो उसे तुम इस खंभेमें दिखाओ। अन्यथा झूठी बातें बनानेके कारण तुम्हारा वध कर डालूँगा।'

यों कहकर दैत्यराजने सहसा तलवार खींच ली और क्रोधपूर्वक प्रह्लादको मार डालनेके लिये उनकी छातीपर प्रहार करना चाहा। उसी समय खंभेके भीतरसे बड़े जोरकी आवाज सुनायी पड़ी, मानो वज्रकी गर्जनाके साथ आसमान फट पड़ा हो। उस महान् शब्दसे दैत्योंके कान बहरे हो गये। वे जड़से कटे हुए वृक्षोंकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़े। उनपर आतङ्क छा गया। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो अभी तीनों लोकोंका प्रलय हो जायगा। तदनन्तर उस खंभेसे महान् तेजस्वी श्रीहरि विशालकाय सिंहकी आकृति धारण किये निकले। निकलते ही उन्होंने प्रलयकालीन मेघोंके समान महाभयंकर गर्जना की। वे अनेक कोटि सूर्य और अग्नियोंके समान तेजसे सम्पन्न थे। उनका मुँह तो सिंहके समान था और शरीर मनुष्यके समान। दाढ़ोंके कारण मुख बड़ा विकराल दिखायी देता था। लपलपाती हुई जीभ उनके उद्धत

भावकी सूचना दे रही थी। उनके बालोंसे आगकी लपटें निकल रही थीं। क्रोधसे जलती हुई अँगारे-जैसी लाल-लाल आँखें अलातचक्रके समान घूम रही थीं। हजारों बड़ी-बड़ी भुजाओंमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये भगवान् नरसिंह अनेक शाखावाले वृक्षोंसे युक्त मेरुपर्वतके समान जान पड़ते थे। उनके अङ्गोंमें दिव्य मालाएँ, दिव्य वस्त्र और दिव्य आभूषण शोभा पाते थे। भगवान् नरसिंह सम्पूर्ण दानवोंका संहार करनेके लिये वहाँ खड़े हुए। भयानक आकृतिवाले महाबली नरसिंहको उपस्थित देख दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी आँखोंकी बरौनियाँ जल उठीं। उसका सारा शरीर व्याकुल हो गया। और वह अपनेको सँभाल न सकनेके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ा।

उस समय प्रह्लादने भगवान् जनार्दनको नरसिंहकी आकृतिमें उपस्थित देख जय-जयकार करते हुए उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और उन महात्माके अद्भुत अङ्गोंपर दृष्टिपात किया। उनकी गर्दनके बालोंमें कितने ही लोक, समुद्र, द्वीप, देवता, गन्धर्व, मनुष्य और हजारों अण्डज प्राणी दिखायी देते थे। दोनों नेत्रोंमें सूर्य और चन्द्रमा आदि तथा कानोंमें अश्विनीकुमार और सम्पूर्ण दिशा एवं विदिशाएँ थीं। ललाटमें ब्रह्मा और महादेव, नासिकामें आकाश और वायु, मुखके भीतर इन्द्र और अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, दाढ़ोंपर सिंह, व्याघ्र, शरभ और बड़े-बड़े साँपोंका दर्शन होता था। कण्ठमें मेरुगिरि, कंधोंमें महान् पर्वत, भुजाओंमें देवता, मनुष्य और पशु-पक्षी, नाभिमें अन्तरिक्ष और दोनों पैरोंमें पृथ्वी थी। रोमावलियोंमें ओषधियाँ, नखोंमें सम्पूर्ण विश्व और निःश्वासोंमें साङ्गोपाङ्ग वेद थे। उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, गन्धर्व तथा अप्सराएँ दृष्टिगोचर होती थीं। इस प्रकार उन परमात्माकी विभूतियाँ दिखायी दे रही थीं। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सचिह्न, कौस्तुभमणि और वनमालासे विभूषित था। वे शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और शार्ङ्गधनुष आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न थे। सम्पूर्ण उपनिषदोंके अर्थभूत भगवान् श्रीविष्णुको उपस्थित देख दैत्य-राजकुमार प्रह्लादके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बह चले। उनका सर्वाङ्ग अश्रुजलसे अभिषिक्त होने लगा और वे बारम्बार श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करने लगे।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु सिंहको सामने आया देख क्रोधवश युद्धके लिये तैयार हो गया। वह मृत्युके अधीन हो रहा था। इसलिये हाथमें तलवार लेकर भगवान् नृसिंहकी ओर दौड़ा। इसी बीचमें महाबली दैत्य भी होशमें आ गये और वे अपने-अपने आयुध लेकर बड़ी उतावलीके साथ श्रीहरिपर प्रहार करने लगे। दैत्योंकी उस सेनाको देखकर भगवान् नरसिंहने अपनी अयालसे निकलती हुई लपटोंके द्वारा उसे जलाकर भस्म कर दिया। समस्त दानव उनकी जटाकी आगसे जलकर राखकी ढेर हो गये। प्रह्लाद और उनके अनुचरोंको छोड़कर दैत्यसेनामें कोई भी नहीं बचा। यह देख दैत्यराजने क्रोधमें भरकर तलवार खींच ली और भगवान् नरसिंहपर धावा किया; किन्तु भगवान्ने एक ही हाथसे तलवारसहित दैत्यराजको पकड़ लिया और जैसे आँधी वृक्षकी शाखाको गिरा देती है, उसी प्रकार उसे पृथ्वीपर दे मारा। पृथ्वीपर पड़े हुए उस विशालकाय दैत्यको भगवान् नरसिंहने फिर पकड़ा और अपनी गोदमें रखकर उसके मुखकी ओर दृष्टिपात किया। उसमें श्रीविष्णुकी निन्दा तथा वैष्णवभक्तसे द्वेष करनेका जो पाप था, वह भगवान्के स्पर्शमात्रसे ही जलकर भस्म हो गया। तत्पश्चात् भगवान् नृसिंहने दैत्यराजके उस विशाल शरीरको वज्रके समान कठोर और तीखे नखोंसे विदीर्ण कर डाला। इससे दैत्यराजका अन्तःकरण निर्मल हो गया। उसने साक्षात् भगवान्का मुख देखते हुए प्राणोंका परित्याग किया। इसलिये वह कृतकृत्य हो गया। महान् नृसिंहरूपधारी श्रीहरिने अपने तीखे नखोंसे उसकी देहके सैकड़ों टुकड़े करके उसकी लम्बी आँतें बाहर निकाल लीं और उन्हें अपने गलेमें डाल लिया।

तदनन्तर, सम्पूर्ण देवता और तपस्वी मुनि ब्रह्मा तथा महादेवजीको आगे करके धीरे-धीरे भगवान्की स्तुति करनेके लिये आये। उस समय सब ओर मुखवाले भगवान् नृसिंह क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो रहे

थे। इसलिये सब देवता और मुनि भयभीत हो गये। उन्होंने भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये जगन्माता भगवती लक्ष्मीका चिन्तन किया, जो सबका धारण-पोषण करनेवाली, सबकी अधीश्वरी, सुवर्णमय कान्तिसे सुशोभित होनेवाली तथा सब प्रकारके उपद्रवोंका नाश करनेवाली हैं। उन्होंने भक्तिपूर्वक देवीसूक्तका जप करते हुए श्रीविष्णुकी शक्ति अनिन्द्यसुन्दरी नारायणीको नमस्कार किया। देवताओंके स्मरण करनेपर सनातन देवता भगवती लक्ष्मी वहाँ प्रकट हुईं। देवाधिदेव श्रीविष्णुकी वल्लभा महालक्ष्मीका दर्शन करके सम्पूर्ण देवता बहुत प्रसन्न हुए और हाथ जोड़कर बोले—'देवि! अपने प्रियतमको प्रसन्न करो। तुम्हारे स्वामी जिस प्रकार भी तीनों लोकोंको अभय दान दें, वही उपाय करो।'

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवती लक्ष्मी सहसा अपने प्रियतम भगवान् जनार्दनके पास गयीं और चरणोंमें पड़कर नमस्कार करके बोलीं—'प्राणनाथ! प्रसन्न होइये।' अपनी प्यारी महारानीको उपस्थित देख सर्वेश्वर श्रीहरिने राक्षस-शरीरके प्रति उत्पन्न क्रोधको तत्काल त्याग दिया और कृपारूपी अमृतसे सरस दृष्टिके द्वारा देखा। उस समय उनके कृपापूर्ण दृष्टिपातसे संतुष्ट होकर जय-जयकार करते हुए उच्च स्वरसे स्तुति और नमस्कार करनेवाले लोगोंमें आनन्द और उल्लास छा गया। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता हर्षमग्न हो जगदीश्वर श्रीविष्णुको नमस्कार करके हाथ जोड़कर बोले—'भगवन्! अनेक भुजाओं और चरणोंसे युक्त आपके इस अद्भुत रूप और तीनों लोकोंमें व्याप्त दुःसह तेजकी ओर देखने और आपके समीप ठहरनेमें हम सभी देवता असमर्थ हो रहे हैं।'

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर देवेश्वर श्रीविष्णुने उस अत्यन्त भयानक तेजको समेट लिया और सुखपूर्वक दर्शन करनेयोग्य हो गये। उस समय उनका प्रकाश शरत्कालके करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रतीत होता था। कमलके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे थे। जटापुञ्जसे सुधाकी वृष्टि हो रही थी। उसमें इतनी चमक थी, मानो करोड़ों चपलाएँ चमक रही हों। नाना प्रकारके रत्ननिर्मित दिव्य केयूर और कड़ोंसे विभूषित भुजाओंद्वारा वे ऐसे जान पड़ते थे मानो शाखा और फलोंसे युक्त कल्पवृक्ष सुशोभित हो। कोमल, दिव्य तथा जपाकुसुमके समान लाल रंगवाले चार हाथोंसे परमेश्वर श्रीहरिकी बड़ी शोभा हो रही थी। उनकी ऊपरवाली दो भुजाओंमें शङ्ख और चक्र थे तथा शेष दो हाथोंमें वरदान और अभयकी मुद्राएँ शोभा पाती थीं। भगवान्‌का वक्षःस्थल श्रीवत्स-चिह्न, कौस्तुभमणि तथा वनमालासे विभूषित था। कानोंमें उदयकालीन दिनकरकी-सी दीप्तिवाले दो कुण्डल जगमगा रहे थे। हार, केयूर और कड़े आदि आभूषण भिन्न-भिन्न अङ्गोंकी सुषमा बढ़ा रहे थे। वामाङ्गमें भगवती लक्ष्मीजीको साथ ले भगवान् नृसिंह बड़ी शोभा पाने लगे।

उस समय लक्ष्मी और नृसिंहको एक साथ देख देवता और महर्षि मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंसे आनन्दाश्रुकी धारा बह चली, जिससे उनका शरीर भीगने लगा। वे आनन्दसमुद्रमें निमग्न होकर बारम्बार भगवान्‌को नमस्कार करने लगे। उन्होंने अमृतसे भरे हुए रत्नमय कलशोंद्वारा सनातन भगवान्‌का अभिषेक करके वस्त्र, आभूषण, गन्ध, दिव्य पुष्प तथा मनोरम धूप अर्पण करके उनका पूजन किया और दिव्य स्तोत्रोंसे स्तुति करके बार-बार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। इससे प्रसन्न होकर भगवान् लक्ष्मीपतिने उन देवताओंको मनोवाञ्छित वरदान दिया। तत्पश्चात् सबके स्वामी भक्तवत्सल श्रीहरिने देवताओंको साथ ले प्रह्लादको सब दैत्योंका राजा बनाया। प्रह्लादको आश्वासन दे देवताओंद्वारा उनका अभिषेक कराकर उन्हें अभीष्ट वरदान और अनन्य भक्ति प्रदान की। इसके बाद भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वर्षा हुई और वे देवगणोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर सब देवता अपने-अपने स्थानको चले गये और प्रसन्नतापूर्वक यज्ञभागका उपभोग करने लगे। तबसे उनका आतङ्क दूर हो गया। उस महादैत्यके मारे जानेसे सबको बड़ा हर्ष हुआ। तदनन्तर विष्णुभक्त प्रह्लाद

धर्मपूर्वक राज्य करने लगे। वह उत्तम राज्य उन्हें भगवान्‌के प्रसादसे ही उपलब्ध हुआ था। उन्होंने अनेक यज्ञ-दान आदिके द्वारा नरसिंहजीका पूजन किया और समय आनेपर वे श्रीहरिके सनातन धामको प्राप्त हुए। जो प्रतिदिन इस प्रह्लाद-चरित्रको सुनते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होते हैं। पार्वती ! इस प्रकार मैंने तुम्हें श्रीहरिके नृसिंहावतारका वैभव बतलाया है। अब शेष अवतारोंके वैभवका क्रमशः वर्णन सुनो।

वामन-अवतारके वैभवका वर्णन

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! प्रह्लादके विरोचन नामक पुत्र हुआ। विरोचनसे महाबाहु बलिका जन्म हुआ। बलि धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, नित्य धर्मपरायण, पवित्र और श्रीहरिके प्रियतम भक्त थे। वे महान् बलवान् थे। उन्होंने इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और मरुद्गणोंको जीतकर तीनों लोकोंको अपने अधीन कर लिया था। इस प्रकार वे समस्त त्रिलोकीका राज्य करते थे। उनके शासन-कालमें पृथ्वी बिना जोते ही पके धान पैदा करती थी और खेतीमें बहुत अधिक अन्नकी उपज होती थी। सभी गौएँ पूरा दूध देतीं और सम्पूर्ण वृक्ष फल-फूलोंसे लदे रहते थे। सब मनुष्य पापोंसे दूर हो अपने-अपने धर्ममें लगे रहते थे। किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं थी। सब लोग सदा भगवान् हृषीकेशकी पूजा किया करते थे। इस प्रकार दैत्यराज बलि धर्मपूर्वक राज्यका पालन करने लगे। इन्द्र आदि देवता दासभावसे उनकी सेवामें खड़े रहते थे। बलिको अपने बलका अभिमान था। वे तीनों लोकोंका ऐश्वर्य भोग रहे थे।

इधर महर्षि कश्यप अपने पुत्र इन्द्रको राज्यसे वञ्चित देख उनके हितकी इच्छासे श्रीहरिको प्रसन्न करनेके लिये पत्नीसहित तपस्या करने लगे। धर्मात्मा कश्यपने अपनी भार्या अदितिके साथ पयोव्रतका अनुष्ठान किया और उसमें देवताओंके स्वामी भगवान् जनार्दनका पूजन किया। उसके बाद भी एक सहस्र वर्षोंतक वे श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न रहे। तब सनातन देवता भगवान् विष्णु भगवती लक्ष्मीके साथ उनके सामने प्रकट हुए। जगदीश्वर श्रीहरिको सामने देख द्विजश्रेष्ठ कश्यपका हृदय आनन्दमें मग्न हो गया। उन्होंने अदितिके साथ प्रणाम करके भगवान्‌की स्तुति की।

तब भगवान् बोले—विप्रवर ! तुम्हारा कल्याण हो। तुमने भक्तिपूर्वक मेरी पूजा की है। इससे मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई वर माँगो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करूँगा।

कश्यपजीने कहा—देवेश्वर ! दैत्यराज बलिने तीनों लोकोंको बलपूर्वक जीत लिया है। आप मेरे पुत्र होकर देवताओंका हित कीजिये। जिस किसी उपायसे भी मायापूर्वक बलिको परास्त करके मेरे पुत्र इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य प्रदान कीजिये।

कश्यपजीके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने 'तथास्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की और देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे वहीं अन्तर्धान हो गये। इसी समय महात्मा कश्यपके संयोगसे देवी अदितिके गर्भमें भूतभावन भगवान्‌का शुभागमन हुआ। तदनन्तर एक हजार वर्ष बीतनेके बाद अदितिने वामनरूपधारी भगवान् विष्णुको जन्म दिया। वे ब्रह्मचारीका वेष धारण किये हुए थे। सम्पूर्ण वेदाङ्गोंमें उन्हींका तत्त्व दृष्टिगोचर होता है। वे मेखला, मृगचर्म और दण्ड आदि चिह्नोंसे उपलक्षित हो रहे थे। इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता उनका दर्शन करके महर्षियोंके साथ उनकी स्तुति करने लगे। तब भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उन श्रेष्ठ देवताओंसे कहा—'देवगण ! बताइये, इस समय मुझे क्या करना है ?'

देवता बोले—मधुसूदन ! इस समय राजा बलिका यज्ञ हो रहा है। अतः ऐसे अवसरपर वह कुछ देनेसे इन्कार नहीं कर सकता। प्रभो ! आप दैत्यराजसे

तीनों लोक माँगकर इन्द्रको देनेकी कृपा करें।

देवताओंके ऐसा कहनेपर भगवान् वामन यज्ञशालामें महर्षियोंके साथ बैठे हुए राजा बलिके पास आये। ब्रह्मचारीको आया देख दैत्यराज सहसा उठकर खड़े हो गये और मुसकराते हुए बोले—'अभ्यागत सदा विष्णुका ही स्वरूप है। अतः आप साक्षात् विष्णु ही यहाँ पधारे हैं।' ऐसा कहकर उन्होंने ब्रह्मचारीको फूलोंके आसनपर बिठाकर उनका विधिपूर्वक पूजन किया और चरणोंमें गिरकर प्रणाम करके गद्गद वाणीमें कहा—'विप्रवर! आपका पूजन करके आज मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन सफल है। कहिये मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ? द्विजश्रेष्ठ! आप जिस वस्तुको पानेके उद्देश्यसे मेरे पास पधारे हैं, उसे शीघ्र बताइये। मैं अवश्य दूँगा।'

वामनजी बोले—महाराज! मुझे तीन पग भूमि दे दीजिये; क्योंकि भूमिदान सब दानोंमें श्रेष्ठ है। जो भूमिका दान करता और जो उस दानको ग्रहण करता है, वे दोनों ही पुण्यात्मा हैं। वे दोनों अवश्य ही स्वर्गगामी होते हैं। अतः आप मुझे तीन पग भूमिका दान कीजिये।

यह सुनकर राजा बलिने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा।' तत्पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भूमिदानका विचार किया। दैत्यराजको ऐसा करते देख उनके पुरोहित शुक्राचार्यजी बोले—'राजन्! ये साक्षात् परमेश्वर विष्णु हैं। देवताओंकी प्रार्थनासे यहाँ पधारे हैं और तुम्हें चकमेमें डालकर सारी पृथ्वी हड़प लेना चाहते हैं। अतः इन महात्माको पृथ्वीका दान न देना। मेरे कहनेसे कोई और ही वस्तु इन्हें दान करो, भूमि न दो।'

यह सुनकर राजा बलि हँस पड़े और धैर्यपूर्वक गुरुसे बोले—'ब्रह्मन्! मैंने सारा पुण्य भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नताके ही लिये किया है। अतः यदि स्वयं विष्णु ही यहाँ पधारे हैं, तब तो आज मैं धन्य हो गया। उनके लिये तो आज मुझे यह परम सुखमय जीवनतक दे डालनेमें संकोच न होगा। अतः इन ब्राह्मणदेवताको आज मैं तीनों लोकोंका भी निश्चय ही दान कर दूँगा।' ऐसा कहकर राजा बलिने बड़ी भक्तिके साथ ब्राह्मणके दोनों चरण पखारे और हाथमें जल लेकर विधिपूर्वक भूमिदानका संकल्प किया। दान दे, नमस्कार करके दक्षिणारूपसे धन दिया और प्रसन्न होकर कहा—'ब्रह्मन्! आज आपको भूमिदान देकर मैं अपनेको धन्य और कृतकृत्य मानता हूँ। आप अपने इच्छानुसार इस पृथ्वीको ग्रहण कीजिये।'

तब भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिसे कहा—'राजन्! मैं तुम्हारे सामने ही अब पृथ्वीको नापता हूँ।' ऐसा कहकर परमेश्वरने वामन ब्रह्मचारीका रूप त्याग दिया और विराट् रूप धारण करके इस पृथ्वीको ले लिया। समुद्र, पर्वत, द्वीप, देवता, असुर और मनुष्योंसहित इस पृथ्वीका विस्तार पचास कोटि योजन है। किन्तु उसे भगवान् मधुसूदनने एक ही पैरसे नाप लिया। फिर दैत्यराजसे कहा—'राजन्! अब क्या करूँ?' भगवान्का वह विराट् रूप महान् तेजस्वी था और महात्मा ऋषियों तथा देवताओंके हितके लिये प्रकट हुआ था। मैं तथा ब्रह्माजी भी उसे नहीं देख सकते थे। भगवान्का वह पग सारी पृथ्वीको लाँघकर सौ योजनतक आगे बढ़ गया। उस समय सनातन भगवान्ने दैत्यराज बलिको दिव्यचक्षु प्रदान किया और उन्हें अपने स्वरूपका दर्शन कराया। भगवान्के विश्वरूपका दर्शन करके दैत्यराज बलिके हर्षकी सीमा न रही। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने भगवान्को नमस्कार करके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की और प्रसन्नचित्तसे गद्गदवाणीमें कहा—'परमेश्वर! आपका दर्शन करके मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। आप इन तीनों ही लोकोंको ग्रहण कीजिये।'

तब सर्वेश्वर विष्णुने अपने द्वितीय पगको ऊपरकी ओर फैलाया। वह नक्षत्र, ग्रह और देवलोकको लाँघता हुआ ब्रह्मलोकके अन्ततक पहुँच गया; किन्तु फिर भी पूरा न पड़ा। उस समय पितामह ब्रह्माने देवाधिदेव भगवान्के चक्र-कमलादि चिह्नोंसे अङ्कित चरणको देख हर्षयुक्त चित्तसे अपनेको धन्य माना और अपने कमण्डलुके जलसे भक्तिपूर्वक उस चरणको धोया। श्रीविष्णुके प्रभावसे वह चरणोदक अक्षय हो गया। वह तीर्थभूत

निर्मल जल मेरुपर्वतके शिखरपर गिरा और जगत्को पवित्र करनेके लिये चारों दिशाओंमें बह चला। वे चारों धाराएँ क्रमशः सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्राके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मेरुके दक्षिण ओर जो धारा चली, उसका नाम अलकनन्दा हुआ। वह तीन धाराओंमें विभक्त होनेके कारण त्रिपथगा और त्रिस्रोता कहलायी। वह लोकपावनी गङ्गा तीन नामोंसे प्रसिद्ध हुई। ऊपर—स्वर्गलोकमें मन्दाकिनी, नीचे—पाताललोकमें भोगवती तथा मध्य अर्थात् मर्त्यलोकमें वेगवती गङ्गा कहलाने लगी। ये गङ्गा मनुष्योंको पवित्र करनेके लिये प्रकट हुई हैं। इनका स्वरूप कल्याणमय है। पार्वती! जब गङ्गा मेरुपर्वतसे नीचे गिर रही थीं, उस समय मैंने अपनेको पवित्र करनेके लिये उन्हें मस्तकपर धारण कर लिया। जो श्रीविष्णुचरणोंसे निकली हुई गङ्गाका पावन जल अपने मस्तकपर धारण करेगा अथवा उनके जलका पान करेगा, वह निःसन्देह सम्पूर्ण जगत्का पूज्य होगा।

तदनन्तर राजा भगीरथ और महातपस्वी गौतमने तपस्याके द्वारा मेरी पूजा करके गङ्गाजीके लिये मुझसे याचना की। तब मैंने सम्पूर्ण विश्वका हित करनेके लिये कल्याणमयी वैष्णवी गङ्गाका जल उन दोनों महानुभावोंके लिये प्रसन्नतापूर्वक दान किया। महर्षि गौतम जिस गङ्गाको ले गये, वे गौतमी (गोदावरी) कही गयी हैं और राजा भगीरथने जिनको भूमिपर उतारा, वे भागीरथी गङ्गाके नामसे प्रसिद्ध हुईं। यह मैंने प्रसङ्गवश तुमसे गङ्गाजीके प्रादुर्भावकी उत्तम कथा सुनायी है। तदनन्तर भक्तवत्सल भगवान् नारायणने दैत्यराज बलिको रसातलका उत्तम लोक प्रदान किया और उन्हें सब दानवों, नागों तथा जल-जन्तुओंका कल्पभरके लिये राजा बना दिया। इस प्रकार कश्यपनन्दन वामनका वेष धारण करके अविनाशी भगवान् विष्णुने बलिसे तीनों लोक लेकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रको दे दिया। तब देवता, गन्धर्व तथा परम तेजस्वी ऋषियोंने दिव्य स्तोत्रोंसे भगवान्का स्तवन और पूजन किया। तत्पश्चात् अपना विराट् रूप समेटकर भगवान् अच्युत वहीं अन्तर्धान हो गये। इस तरह प्रभावशाली श्रीविष्णुने इन्द्रकी रक्षा की और इन्द्रने उनकी कृपासे तीनों लोकोंका महान् ऐश्वर्य प्राप्त किया। शुभे! यह मैंने तुमसे वामन अवतारके वैभवका वर्णन किया है।

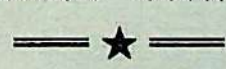

परशुरामावतारकी कथा

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! भृगुवंशमें द्विजवर जमदग्नि अच्छे महात्मा हो गये हैं। वे सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् और महान् तपस्वी थे। धर्मात्मा जमदग्निने इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये गङ्गाके किनारे एक हजार वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्रने कहा—'विप्रवर! तुम्हारे मनमें जैसी इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो।'

जमदग्नि बोले—देव! मुझे सदा सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौ प्रदान कीजिये।

तब देवराज इन्द्रने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सुरभि गौ प्रदान की। सुरभिको पाकर महातपस्वी जमदग्नि दूसरे इन्द्रकी भाँति महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न होकर रहने लगे। उन्होंने राजा रेणुककी सुन्दरी कन्या रेणुकाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। तत्पश्चात् परम धार्मिक जमदग्निने पुत्रकी कामनासे पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया और उस यज्ञके द्वारा देवराज इन्द्रको सन्तुष्ट किया। सन्तुष्ट होनेपर शचीपति इन्द्रने जमदग्निको एक महाबाहु, महातेजस्वी और महाबलवान् पुत्र होनेका वरदान दिया। समय आनेपर विप्रवर जमदग्निने रेणुकाके गर्भसे एक महापराक्रमी और बलवान् पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् विष्णुके अंशके अंशसे प्रकट हुआ था। उसमें सब प्रकारके शुभ लक्षण मौजूद थे। पितामह भृगुने आकर उस महापराक्रमी पुत्रका नामकरण-संस्कार किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उसका नाम 'राम' रखा। जमदग्निका पुत्र होनेके कारण वह जामदग्न्य भी कहलाया। भार्गववंशी बालक

राम धीरे-धीरे बड़े हुए। उपनयन-संस्कारके पश्चात् उन्होंने सब विद्याओंमें प्रवीणता प्राप्त कर ली। तदनन्तर विप्रवर राम शालग्राम पर्वतके शिखरपर तपस्या करनेके लिये गये। वहाँ उन्हें परमतेजस्वी ब्रह्मर्षि कश्यपजीका दर्शन हुआ। रामने बड़े हर्षके साथ उनका पूजन किया। तब उन्होंने रामको विधिपूर्वक अविनाशी वैष्णव मन्त्रका उपदेश दिया। महात्मा कश्यपसे मन्त्रका उपदेश पाकर राम विधिपूर्वक लक्ष्मीपति श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे। उन्होंने दिन-रात षडक्षर महामन्त्रका जप करते हुए सर्वव्यापी कमलनयन श्रीहरिके ध्यानपूर्वक अनेक वर्षों-तक तपस्या की। महातपस्वी ब्रह्मर्षि जमदग्नि जितेन्द्रिय एवं मौनभावसे तप करते हुए गङ्गाके सुन्दर तटपर निवास करते थे। उन्होंने यज्ञ, दान आदि महान् धर्मोंका विधिपूर्वक अनुष्ठान किया। इन्द्रकी दी हुई गौके प्रसादसे उनके पास सब सम्पत्तियाँ भरी-पूरी रहती थीं।

एक समयकी बात है—हैहयराज अर्जुन सब राष्ट्रोंको जीतकर अपनी सारी सेनाके साथ जमदग्नि मुनिके आश्रमपर आये। राजाने महाभाग मुनिवरका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया, उनकी कुशल पूछी और उन्हें भाँति-भाँतिके वस्त्र तथा आभूषण दान किये। मुनिने भी अपने घरपर आये हुए राजाका मधुपर्ककी विधिसे प्रेमपूर्वक सत्कार किया तथा शक्तिशालिनी सुरभि गौके प्रभावसे सेनासहित राजाको उत्तम भोजन दिया। राजाको उस गौकी शक्ति देखकर बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने महर्षि जमदग्निसे उस गौको माँगा।

जमदग्नि मुनिके अस्वीकार करनेपर हैहयराजने उस सबला गौको बलपूर्वक ले लिया। तब महाभागा सबलाने क्रोधमें भरकर अपने सींगोंसे राजाके सब सैनिकोंको मार डाला। तदनन्तर स्वयं अन्तर्धान होकर क्षणभरमें इन्द्रके पास जा पहुँची। इधर अपनी सेनाका विनाश देखकर राजा अर्जुन क्रोधसे पागल हो उठा। उसने मुक्कोंसे मार-मारकर मुनि जमदग्निका वध कर डाला और लौटकर अपने नगरमें प्रवेश किया।

उधर रामने देवदेवेश्वर भगवान् विष्णुकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया। भगवान्ने अपने परशु, वैष्णव महाधनुष और अनेक दिव्यास्त्र प्रदान करके उनसे कहा—'मैं तुम्हें अपनी उत्तम शक्ति प्रदान करता हूँ। मेरी शक्तिसे आविष्ट होकर तुम पृथ्वीका भार उतारने और देवताओंका हित करनेके लिये दुष्ट राजाओंका वध करो। इस समय पृथ्वीपर बहुत-से मदोन्मत्त राजा एकत्र हो रहे हैं। उन्हें मारकर समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वी अपने अधिकारमें कर लो और महान् पराक्रमसे सम्पन्न हो धर्मपूर्वक इसका पालन करो। फिर समय आनेपर मेरी ही कृपासे मेरे परमपदको प्राप्त होओगे।' भगवान् विष्णुके अन्तर्धान होनेपर राम भी तुरंत अपने पिताके आश्रमको लौट गये। वहाँ जब उन्होंने अपने पिताको मारा गया देखा तो वे क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और इस पृथ्वीको क्षत्रियविहीन करनेकी इच्छासे हैहयराजके नगरमें जा पहुँचे। वहाँ राजाको ललकारकर महायुद्धमें प्रवृत्त हुए और उसकी सेनाका संहार करके अन्तमें उन्होंने उसको भी मार डाला।

इस प्रकार सहस्रबाहु अर्जुनका वध करनेके अनन्तर प्रतापी परशुरामजीने कुपित होकर सम्पूर्ण राजाओंका संहार कर डाला। केवल राजा इक्ष्वाकुके महान् कुलपर उन्होंने हाथ नहीं उठाया। एक तो वह नानाका कुल था, दूसरे माता रेणुकाने इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रियोंको मारनेकी मनाही कर दी थी। इसलिये उक्त वंशकी उन्होंने रक्षा की।

इस प्रकार क्षत्रियोंका संहार करनेके पश्चात् प्रतापी परशुरामजीने अश्वमेध नामक महायज्ञका विधिवत् अनुष्ठान किया और उसमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको सात द्वीपोंसहित पृथ्वी दान कर दी। तदनन्तर वे भगवान् नर-नारायणके आश्रममें तपस्या करनेके लिये चले गये। पार्वती! यह मैंने तुमसे परशुरामजीके चरित्रका वर्णन किया है। वे भगवान् विष्णुकी शक्तिके आवेशावतार थे। इसीलिये शक्तिके आवेशसे उन्होंने जो कुछ किया, उसकी उपासना नहीं करनी चाहिये। भगवद्भक्त महात्माओं तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये भगवान् श्रीराम तथा श्रीकृष्णके अवतार ही उपासना करनेयोग्य हैं; क्योंकि वे अपने ईश्वरीय गुणोंसे परिपूर्ण हैं और उपासना करनेपर मनुष्योंको मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं।

★

श्रीरामावतारकी कथा—जन्मका प्रसङ्ग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! पूर्वकालकी बात है, स्वायम्भुव मनु शुभ एवं निर्मल तीर्थ नैमिषारण्यमें गोमती नदीके तटपर द्वादशाक्षर महामन्त्रका जप करते थे। उन्होंने एक हजार वर्षोंतक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरिका पूजन किया। तब भगवान्‌ने प्रकट होकर कहा—'राजन् ! मुझसे वर माँगो।' तब स्वायम्भुव मनुने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'अच्युत ! देवेश्वर ! आप तीन जन्मोंतक मेरे पुत्र हों। मैं पुत्रभावसे आप पुरुषोत्तमका भजन करना चाहता हूँ।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् लक्ष्मीपति बोले—'नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा है, वह अवश्य पूर्ण होगी। तुम्हारा पुत्र होनेमें मुझे भी बड़ी प्रसन्नता है। जगत्‌के पालन तथा धर्मकी रक्षाका प्रयोजन उपस्थित होनेपर भिन्न-भिन्न समयमें तुम्हारे जन्म लेनेके पश्चात् मैं भी तुम्हारे यहाँ अवतार लूँगा। अनघ ! साधु पुरुषोंकी रक्षा, पापियोंका विनाश और धर्मकी स्थापना करनेके लिये मैं प्रत्येक युगमें अवतार लेता हूँ।'*

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुको वरदान दे श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। उन स्वायम्भुव मनुका पहला जन्म रघुकुलमें हुआ। वहाँ वे राजा दशरथके नामसे प्रसिद्ध हुए। दूसरी बार वे वृष्णिवंशमें वसुदेवरूपसे प्रकट हुए। फिर जब कलियुगके एक हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो जायँगे तो सम्भल नामक गाँवमें वे हरिगुप्त ब्राह्मणके रूपमें उत्पन्न होंगे। उनकी पत्नी भी प्रत्येक जन्ममें उनके साथ रहीं। अब मैं पहले श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करता हूँ, जिसके स्मरणमात्रसे पापियोंकी भी मुक्ति हो जाती है। हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य दूसरा जन्म धारण करनेपर महाबली कुम्भकर्ण और रावण हुए। मुनिवर पुलस्त्यके विश्रवा नामक एक धार्मिक पुत्र हुए, जिनकी पत्नी राक्षसराज सुमालीकी कन्या थी। उसकी माताका नाम सुकेशी था। उसका नाम केकशी था। केकशी दृढ़तापूर्वक व्रतका पालन करनेवाली थी; किन्तु एक दिन कामवेगकी अधिकतासे सन्ध्याके समय उसने महामुनि विश्रवाके साथ रमण किया; अतः समयके दोषसे उसके गर्भसे दो तमोगुणी पुत्र उत्पन्न हुए, जो बहुत ही बलवान् थे। संसारमें वे रावण और कुम्भकर्णके नामसे विख्यात हुए। केकशीके गर्भसे एक शूर्पणखा नामकी कन्या भी हुई, जिसका मुख बड़ा ही विकराल था। कुछ कालके पश्चात् उससे विभीषणका जन्म हुआ, जो सुशील, भगवद्भक्त, सत्यवादी, धर्मात्मा और परम पवित्र थे।

रावण और कुम्भकर्ण हिमालय पर्वतपर अत्यन्त कठोर तपस्याके द्वारा मेरी आराधना करने लगे। रावण बड़ा दुष्टात्मा था। उसने बड़ा कठोर कर्म करके अपने मस्तकरूपी कमलोंसे मेरी पूजा की। तब मैंने प्रसन्नचित्त होकर उससे कहा—'बेटा ! तुम्हारे मनमें जो कुछ हो, उसके अनुसार वर माँगो।' तब वह दुष्टात्मा बोला—'देव ! मैं सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पाना चाहता हूँ। अतः आप मुझे देवता, दानव और राक्षसोंके द्वारा भी अवध्य कर दीजिये।' पार्वती ! मैंने उसके कथनानुसार वरदान दे दिया। वरदान पाकर उस महापराक्रमी राक्षसको बड़ा गर्व हो गया। वह देवता, दानव और मनुष्य तीनों लोकोंके प्राणियोंको पीड़ा देने लगा। उसके सताये हुए ब्रह्मा आदि देवता भयसे आतुर हो भगवान् लक्ष्मीपतिकी शरणमें गये। सनातन प्रभुने देवताओंके कष्ट और उसके दूर होनेके उपायको भलीभाँति जानकर ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवताओंसे कहा—'देवगण ! मैं रघुकुलमें राजा दशरथके यहाँ अवतार धारण करूँगा और दुरात्मा रावणको बन्धु-बान्धवोंसहित मार डालूँगा। मानवशरीर धारण करके मैं देवताओंके इस कण्टकको उखाड़ फेंकूँगा। ब्रह्माजीके शापसे तुमलोग भी गन्धर्वों और अप्सराओंसहित वानर-योनिमें उत्पन्न हो मेरी सहायता करो।'

देवाधिदेव श्रीविष्णुके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता इस पृथ्वीपर वानररूपमें प्रकट हुए। उधर सूर्यवंशमें वैवस्वत मनुके पुत्र राजा इक्ष्वाकु हुए, जो समस्त

---

* परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥ (२६९।७)

राजाओंमें श्रेष्ठ, महाबलवान् और सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्हींकी कुल-परम्परामें महातेजस्वी तथा बलवान् राजा दशरथ हुए, जो महाराज अजके पुत्र, सत्यवादी, सुशील एवं पवित्र आचार-विचारवाले थे। उन्होंने अपने पराक्रमसे समस्त भूमण्डलका पालन किया और सब राजाओंको अपने-अपने राज्यपर स्थापित किया। कोशलनरेशके एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या थी, जिसका नाम कौसल्या था। राजा दशरथने उसीके साथ विवाह किया। तदनन्तर मगधराजकुमारी सुमित्रा उनकी द्वितीय पत्नी हुईं। केकयनरेशकी कन्या कैकेयी, जिसके नेत्र कमलदलके समान विशाल थे, महाराज दशरथकी तीसरी भार्या हुईं। इन तीनों धर्मपत्नियोंके साथ धर्मपरायण होकर राजा दशरथ पृथ्वीका पालन करने लगे। अयोध्या नामकी नगरी, जो सरयूके तीरपर बसी हुई है, महाराजकी राजधानी थी। वह सब प्रकारके रत्नोंसे भरी-पूरी और धन-धान्यसे सम्पन्न थी। वह सोनेकी चहारदीवारीसे घिरी हुई और ऊँचे-ऊँचे गोपुरों (नगरद्वारों) से सुशोभित थी। धर्मात्मा राजा दशरथ अनेक मुनिवरों और अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठजीके साथ उस पुरीमें निवास करते थे। उन्होंने वहाँ अकण्टक राज्य किया। वहाँ भगवान् पुरुषोत्तम अवतार धारण करनेवाले थे, अतएव वह पवित्र नगरी अयोध्या कहलायी। परमात्माके उस नगरका नाम भी परम कल्याणमय है। जहाँ भगवान् विष्णु विराजते हैं, वही स्थान परमपद हो जाता है। वहाँ सब कर्मोंका बन्धन काटनेवाला मोक्ष सुलभ होता है।'

राजा दशरथने समस्त भूमण्डलका पालन करते हुए पुत्रकामनासे वैष्णव-यागके द्वारा श्रीहरिका यजन किया। सबको वर देनेवाले सर्वव्यापक लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु उक्त यज्ञद्वारा राजा दशरथसे पूजित होनेपर वहाँ अग्निकुण्डमें प्रकट हुए। जाम्बूनदके समान उनकी श्याम कान्ति थी। वे हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये हुए थे। उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहा था। वाम अङ्कमें भगवती लक्ष्मीजीके साथ वहाँ प्रत्यक्ष प्रकट हुए भक्तवत्सल परमेश्वर राजा दशरथसे बोले—'राजन्! मैं वर देनेके लिये आया हूँ।' सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् विष्णुका दर्शन पाकर राजा दशरथ आनन्दमग्न हो गये। उन्होंने पत्नीके साथ प्रसन्नचित्तसे भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया और हर्षगद्गद वाणीमें कहा—'भगवन्! आप मेरे पुत्रभावको प्राप्त हों।' तब भगवान्ने प्रसन्न होकर राजासे कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं देवलोकका हित, साधुपुरुषोंकी रक्षा, राक्षसोंका वध, लोगोंको मुक्ति प्रदान और धर्मकी स्थापना करनेके लिये तुम्हारे यहाँ अवतार लूँगा।'

ऐसा कहकर श्रीहरिने सोनेके पात्रमें रखा हुआ दिव्य खीर, जो लक्ष्मीजीके हाथमें मौजूद था, राजाको दिया और स्वयं वहाँसे अन्तर्धान हो गये। राजा दशरथने वहाँ बड़ी रानी कौसल्या और छोटी रानी कैकेयीको उपस्थित देख इन्हीं दोनोंमें उस दिव्य खीरको बाँट दिया। इतनेहीमें मझली रानी सुमित्रा भी पुत्रकी कामनासे राजाके समीप आयीं। उन्हें देख कौसल्या और कैकेयीने तुरंत ही अपने-अपने खीरमेंसे आधा-आधा निकालकर उनको दे दिया। उस दिव्य खीरको खाकर तीनों ही रानियाँ गर्भवती हुईं। उस समय उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन्हें कई बार सपनेमें शङ्ख, चक्र और गदा लिये तथा पीताम्बर पहने देवेश्वर भगवान् विष्णु दर्शन दिया करते थे। तदनन्तर समयानुसार जब चैतका मनोरम मधुमास आया तो शुक्लपक्षकी नवमी तिथिको पुनर्वसु नक्षत्रमें दोपहरके समय रानी कौसल्याने पुत्रको जन्म दिया। उस समय उत्तम लग्न था और सभी ग्रह शुभ स्थानोंमें स्थित थे। कौसल्याके पुत्ररूपमें सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी साक्षात् श्रीहरि ही अवतीर्ण हुए थे, जो योगियोंके ध्येय, सनातन प्रभु, सम्पूर्ण उपनिषदोंके प्रतिपाद्य तत्त्व, अनन्त, संसारकी सृष्टि, रक्षा और प्रलयके हेतु, रोग-शोकसे रहित, सब प्राणियोंको शरण देनेवाले और सर्वभूतस्वरूप परमेश्वर हैं। जगदीश्वरका अवतार होते ही आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं। श्रेष्ठ देवताओंने फूल बरसाये। प्रजापति आदि देवगण विमानपर बैठकर मुनियोंके साथ हर्षगद्गद हो स्तुति करने लगे।

★

श्रीरामका जातकर्म, नामकरण, भरत आदिका जन्म, सीताकी उत्पत्ति, विश्वामित्रकी यज्ञरक्षा तथा राम आदिका विवाह

तत्पश्चात् राजा दशरथने बड़ी प्रसन्नताके साथ पुरोहित वसिष्ठजीके द्वारा बालकका जातकर्म-संस्कार कराया। भगवान् वसिष्ठने उस समय बालकका बड़ा सुन्दर नाम रखा। वे बोले—'ये महाप्रभु कमलमें निवास करनेवाली श्रीदेवीके साथ रमण करनेवाले हैं, इसलिये इनका परम प्राचीन स्वतःसिद्ध नाम 'श्रीराम' होगा। यह नाम भगवान् विष्णुके सहस्र नामोंके समान है तथा मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। चैत मास श्रीविष्णुका मास है। इसमें प्रकट होनेके कारण यह विष्णु भी कहलायेंगे।*

इस प्रकार नाम रखकर महर्षि वसिष्ठने नाना प्रकारकी स्तुतियोंसे भगवान्‌का स्तवन किया और बालकके मङ्गलके लिये सहस्रनामका पाठ करके वे उस परम पवित्र राजभवनसे बाहर निकले। राजा दशरथने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक बहुत धन दिया तथा धर्मपूर्वक दस हजार गौएँ दान कीं। इतना ही नहीं, उन रघुकुलश्रेष्ठ राजाने श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये एक लाख गाँव दान किये और दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण तथा असंख्य धन देकर ब्राह्मणोंको तृप्त किया। महारानी कौसल्याने जब अपने पुत्र श्रीरामकी ओर दृष्टिपात किया तो उनके श्रीचरणों और करकमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ध्वजा और वज्र आदि चिह्न दिखायी दिये। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न, कौस्तुभमणि और वनमाला सुशोभित थी। उनके श्रीअङ्गमें देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर हुआ। मुसकराते हुए मुखके भीतर चौदहों भुवन दिखायी देते थे। उनके निःश्वासमें इतिहाससहित सम्पूर्ण वेद, जाँघोंमें द्वीप, समुद्र और पर्वत, नाभिमें ब्रह्मा तथा महादेवजी, कानोंमें सम्पूर्ण दिशाएँ, नेत्रोंमें अग्नि और सूर्य तथा नासिकामें महान् वेगशाली वायुदेव विराजमान थे। पार्वती! सम्पूर्ण उपनिषदोंके तात्पर्यभूत भगवान्‌को देखकर रानी कौसल्या भयभीत हो गयीं और बारम्बार प्रणाम करके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाती हुई हाथ जोड़कर बोलीं—'देवदेवेश्वर! प्रभो! आपको पुत्ररूपमें पाकर मैं धन्य हो गयी। जगन्नाथ! अब मुझपर प्रसन्न होइये और मेरे भीतर पुत्रस्नेहको जाग्रत् कीजिये।'

माताके ऐसा कहनेपर सर्वव्यापक श्रीहरि मायासे मानवभाव तथा शिशुभावको प्राप्त होकर रुदन करने लगे। फिर तो देवी कौसल्याने आनन्दमग्न होकर उत्तम लक्षणोंवाले अपने पुत्रको छातीसे लगा लिया और उसके मुखमें स्तन डाल दिया। संसारका भरण-पोषण करनेवाले सनातन देवता महाप्रभु श्रीहरि बालकरूपसे माताकी गोदमें लेटकर उनका स्तन पान करने लगे। वह दिन बड़ा ही सुन्दर रमणीय और मनुष्योंकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला था। नगर और प्रान्तके सब मनुष्योंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस दिन भगवान्‌का जन्मोत्सव मनाया। तदनन्तर कैकेयीके गर्भसे भरतका जन्म हुआ। वे पाञ्चजन्य शङ्खके अंशसे प्रकट हुए थे। इसके बाद महाभागा सुमित्राने उत्तम लक्षणोंवाले लक्ष्मणको तथा देवशत्रुओंको सन्ताप देनेवाले शत्रुघ्नको जन्म दिया। शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले श्रीलक्ष्मण भगवान् अनन्तके अंशसे और अमित पराक्रमी शत्रुघ्न सुदर्शनके अंशसे प्रकट हुए थे। वैवस्वत मनुके वंशमें जन्म लेनेवाले वे सभी बालक क्रमशः बड़े हुए। फिर महातेजस्वी महर्षि वसिष्ठने सबका विधिपूर्वक

---

* श्रियः कमलवासिन्या रमणोऽयं महाप्रभुः। तस्माच्छ्रीराम इत्यस्य नाम सिद्धं पुरातनम्॥
सहस्रनाम्नां श्रीशस्य तुल्यं मुक्तिप्रदं नृणाम्। विष्णुमासि समुत्पन्नो विष्णुरित्यभिधीयते॥ (२६९। ७४-७५)

संस्कार किया। तदनन्तर सबने वेद-शास्त्रोंका अध्ययन किया। सम्पूर्ण शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ होकर वे धनुर्वेदके भी प्रतिष्ठित विद्वान् हुए। श्रीराम आदि चारों भाई बड़े ही उदार और लोगोंका हर्ष बढ़ानेवाले थे। उनमें श्रीराम और लक्ष्मणकी जोड़ी एक साथ रहती थी और भरत तथा शत्रुघ्नकी जोड़ी एक साथ।

भगवान्‌के अवतार लेनेके पश्चात् जगदीश्वरी भगवती लक्ष्मी राजा जनकके भवनमें अवतीर्ण हुईं। जिस समय राजा जनक किसी शुभक्षेत्रमें यज्ञके लिये हलसे भूमि जोत रहे थे, उसी समय सीता (हलके अग्रभाग) से एक सुन्दरी कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् लक्ष्मी ही थी। उस वेदमयी कन्याको देख मिथिलापति राजा जनकने गोदमें उठा लिया और अपनी पुत्री मानकर उसका पालन-पोषण किया। इस प्रकार जगदीश्वरकी वल्लभा देवेश्वरी लक्ष्मी सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये राजा जनकके मनोहर भवनमें पल रही थीं।

इसी समय विश्वविख्यात महामुनि विश्वामित्रने गङ्गाजीके सुन्दर तटपर परम पुण्यमय सिद्धाश्रममें एक उत्तम यज्ञ आरम्भ किया। जब यज्ञ होने लगा तो रावणके अधीन रहनेवाले कितने ही निशाचर उसमें विघ्न डालने लगे। इससे विश्वामित्र मुनिको बड़ी चिन्ता हुई। तब उन धर्मात्मा मुनिने लोकहितके लिये रघुकुलमें प्रकट हुए श्रीहरिको वहाँ ले आनेका विचार किया। फिर तो वे रघुवंशी क्षत्रियोंद्वारा सुरक्षित रमणीय नगरी अयोध्यामें गये और वहाँ राजा दशरथसे मिले। कौशिक मुनिको उपस्थित देख राजा दशरथ हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा उन्होंने अपने पुत्रोंके साथ मुनिवर विश्वामित्रके चरणोंमें मस्तक झुकाया और बड़े हर्षके साथ कहा—'मुने! आज आपका दर्शन पाकर मैं धन्य हो गया।' तत्पश्चात् उन्हें उत्तम आसनपर बिठाकर राजाने विधिपूर्वक सत्कार किया और पुनः प्रणाम करके पूछा—'महर्षे! मेरे लिये क्या आज्ञा है?'

तब महातपस्वी विश्वामित्र अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'राजन्! आप मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये श्रीरामचन्द्रजीको मुझे दे दीजिये। इनके समीप रहनेसे मेरे यज्ञमें पूर्ण सफलता मिलेगी।' मुनिवर विश्वामित्रकी यह बात सुनकर सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ राजा दशरथने लक्ष्मणसहित श्रीरामको मुनिकी सेवामें समर्पित कर दिया। महातपस्वी विश्वामित्र उन दोनों रघुवंशी कुमारोंको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमपर गये। श्रीरामचन्द्रजीके जानेसे देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने भगवान्‌के ऊपर फूल बरसाये और उनकी स्तुति की। उसी समय महाबली गरुड़ सब प्राणियोंसे अदृश्य होकर वहाँ आये और उन दोनों भाइयोंको दो दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणोंवाले दो तूणीर आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र देकर चले गये। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई महापराक्रमी वीर थे। तपोवनमें पहुँचनेपर महात्मा कौशिकने विशाल वनके भीतर उन्हें एक भयङ्कर राक्षसीको दिखलाया, जिसका नाम ताड़का था। वह सुन्द नामक राक्षसकी स्त्री थी। मुनिकी प्रेरणासे उन दोनोंने दिव्य धनुषसे छूटे हुए बाणोंद्वारा ताड़काको मार डाला। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा मारी जानेपर वह भयङ्कर राक्षसी अपने भयानक रूपको छोड़कर दिव्यरूपमें प्रकट हुई। उसका शरीर तेजसे उद्दीप्त हो रहा था तथा वह सब आभरणोंसे विभूषित दिखायी देती थी। राक्षस-योनिसे छूटकर श्रीरामचन्द्रजीको प्रणाम करनेके पश्चात् वह श्रीविष्णुलोकको चली गयी।

ताड़काको मारकर महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीने महात्मा लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रके शुभ आश्रममें प्रवेश किया। उस समय समस्त मुनि बड़े प्रसन्न हुए। वे आगे बढ़कर श्रीरामचन्द्रजीको ले गये और उत्तम आसनपर बिठाकर सबने अर्घ्य आदिके द्वारा उनका पूजन किया। द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने विधिपूर्वक यज्ञकी दीक्षा ले मुनियोंके साथ उत्तम यज्ञ आरम्भ किया। उस महायज्ञका प्रारम्भ होते ही मारीच नामक राक्षस अपने भाई सुबाहुके साथ उसमें विघ्न डालनेके लिये उपस्थित हुआ। उन भयङ्कर राक्षसोंको देखकर विपक्षी वीरोंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने राक्षसराज सुबाहुको एक ही बाणसे मौतके घाट उतार दिया और महान् पवनास्त्रका प्रयोग करके मारीच नामक निशाचरको

समुद्रके तटपर इस प्रकार फेंक दिया, जैसे हवा सूखे पत्तेको उड़ा ले जाती है। श्रीरामचन्द्रजीके इस महान् पराक्रमको देखकर राक्षसश्रेष्ठ मारीचने हथियार फेंक दिया और एक महान् आश्रममें वह तपस्या करनेके लिये चला गया। महान् यज्ञके समाप्त होनेके बाद महातेजस्वी विश्वामित्रने प्रसन्नचित्तसे श्रीरघुनाथजीका पूजन किया। वे मस्तकपर काकपक्ष धारण किये हुए थे। उनके शरीरका वर्ण नील कमलदलके समान श्याम था तथा नेत्र कमलदलके समान विशाल थे। मुनिश्रेष्ठ कौशिकने उन्हें छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा और स्तवन किया।

इसी बीचमें मिथिलाके सम्राट् राजा जनकने श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा वाजपेय यज्ञ आरम्भ किया। विश्वामित्र आदि सब महर्षि उस यज्ञको देखनेके लिये गये। उनके साथ रघुकुलश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण भी थे। मार्गमें महात्मा श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमलोंका स्पर्श हो जानेसे बहुत बड़ी शिलाके रूपमें पड़ी हुई गौतमपत्नी अहल्या शुद्ध हो गयी। पूर्वकालमें वह अपने स्वामी गौतमके शापसे पत्थर हो गयी थी; किन्तु श्रीरघुनाथजीके चरणोंका स्पर्श होनेसे शुद्ध हो वह शुभ गतिको प्राप्त हुई। तदनन्तर दोनों रघुकुमारोंके साथ मिथिला नगरीमें पहुँचकर सभी मुनिवरोंका मन प्रसन्न हो गया। महाबली राजा जनकने महान् सौभाग्यशाली महर्षियोंको आया देख आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम और पूजन किया। कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, नील कमलदलके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, कोमलाङ्ग, कोटि कन्दर्पोंके सौन्दर्यको मात करनेवाले, समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित रघुवंशनाथ श्रीरामचन्द्रजीको देखकर मिथिलानरेश जनकके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने दशरथनन्दन श्रीरामको परमेश्वरका ही स्वरूप समझा और अपनेको धन्य मानते हुए उनका पूजन किया। राजाके मनमें श्रीरामचन्द्रजीको अपनी कन्या देनेका विचार उत्पन्न हुआ। 'ये दोनों कुमार रघुकुलमें उत्पन्न हुए हैं।' इस प्रकार दोनों भाइयोंका परिचय पाकर राजाने उत्तम वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा धर्मपूर्वक उनका सत्कार किया और मधुपर्क आदिकी विधिसे सम्पूर्ण महर्षियोंका भी पूजन किया। तत्पश्चात् यज्ञ समाप्त होनेपर कमलनयन श्रीरामने शङ्करजीके दिव्य धनुषको भङ्ग करके जनककिशोरी सीताको जीत लिया। उस पराक्रमरूपी महान् शुल्कसे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर मिथिलानरेशने सीताको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवामें देनेका निश्चय कर लिया।

तत्पश्चात् राजा जनकने महाराज दशरथके पास दूत भेजा। धर्मात्मा राजा दशरथ अपने दोनों पुत्र भरत और शत्रुघ्नको साथ लेकर वसिष्ठ, वामदेव आदि महर्षियों और सेनाके साथ मिथिलामें आये और जनकके सुन्दर भवनमें उन्होंने जनवासा किया। फिर शुभ समयमें मिथिलानरेशने श्रीरामका सीताके साथ और लक्ष्मणका उर्मिलाके साथ विवाह कर दिया। उनके भाई कुशध्वजके दो सुन्दरी कन्याएँ थीं, जो माण्डवी और श्रुतकीर्तिके नामसे प्रसिद्ध थीं। वे दोनों सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं। उनमेंसे माण्डवीके साथ भरतका और श्रुतकीर्तिके साथ शत्रुघ्नका विवाह किया। इस प्रकार वैवाहिक उत्सव समाप्त होनेपर महाबली राजा दशरथ मिथिलानरेशसे पूजित हो दहेजका सामान ले पुत्रों, पुत्रवधुओं, सेवकों, अश्व-गज आदि सैनिकों तथा नगर और प्रान्तके लोगोंके साथ अयोध्याको प्रस्थित हुए। मार्गमें महापराक्रमी तथा परम प्रतापी परशुरामजी मिले, जो हाथमें फरसा लेकर क्रोधमें भरे हुए सिंहकी भाँति खड़े थे। वे क्षत्रियोंके लिये कालरूप थे और श्रीरामचन्द्रजीके पास युद्धकी इच्छासे आ रहे थे। रघुनाथजीको सामने पाकर परशुरामजीने इस प्रकार कहा—'महाबाहु श्रीराम! मेरी बात सुनो। मैं युद्धमें बहुत-से महापराक्रमी राजाओंका वध करके ब्राह्मणोंको भूमिदान दे तपस्या करनेके लिये चला गया था; किन्तु तुम्हारे वीर्य और बलकी ख्याति सुनकर यहाँ तुमसे युद्ध करनेके लिये आया हूँ। यद्यपि इक्ष्वाकुवंशके वे क्षत्रिय जो मेरे नानाके कुलमें उत्पन्न हुए हैं, मेरे वध्य नहीं हैं; तथापि किसी भी क्षत्रियका बल और पराक्रम सुनकर

मेरे लिये उसका सहन करना असम्भव है; इसलिये उदार रघुवंशी वीर ! तुम मुझे युद्धका अवसर दो। सुना है, तुमने शङ्करजीके दुर्धर्ष धनुषको तोड़ डाला है। यह वैष्णव धनुष भी उसीके समान शत्रुओंका संहार करनेवाला है। तुम अपने पराक्रमसे इसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दो तो मैं तुमसे हार मान लूँगा अथवा यदि मुझे देखकर तुम्हारे मनमें भय समा गया हो तो मुझ बलवान्‌के आगे अपने हथियार नीचे डाल दो और मेरी शरणमें आ जाओ।'

परशुरामजीके ऐसा कहनेपर परम प्रतापी श्रीरामचन्द्रजीने वह धनुष ले लिया। साथ ही उनसे अपनी वैष्णवी शक्तिको भी खींच लिया। शक्तिसे वियोग होते ही पराक्रमी परशुराम कर्मभ्रष्ट ब्राह्मणकी भाँति वीर्य और तेजसे हीन हो गये। उन्हें तेजोहीन देखकर समस्त क्षत्रिय साधु-साधु कहते हुए बारम्बार श्रीरामचन्द्रजीकी सराहना करने लगे। रघुनाथजीने उस महान् धनुषको हाथमें लेकर अनायास ही उसकी प्रत्यञ्चा चढ़ा दी और बाणका सन्धान करके विस्मयमें पड़े हुए परशुरामजीसे पूछा—'ब्रह्मन् ! इस श्रेष्ठ बाणसे आपका कौन-सा कार्य करूँ ? आपके दोनों लोकोंका नाश कर दूँ या आपके पुण्योंद्वारा उपार्जित स्वर्गलोकका ही अन्त कर डालूँ ?'

उस भयङ्कर बाणको देखकर परशुरामजीको यह मालूम हो गया कि ये साक्षात् परमात्मा हैं। ऐसा जानकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने लोकरक्षक श्रीरघुनाथजीको नमस्कार करके अपने सौ यज्ञोंद्वारा उपार्जित स्वर्गलोक और अपने अस्त्र-शस्त्र उनकी सेवामें समर्पित कर दिये। तब महातेजस्वी रघुनाथजीने महामुनि परशुरामजीको प्रणाम किया तथा पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय आदिके द्वारा उनकी विधिपूर्वक पूजा की। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा पूजित होकर महातपस्वी परशुरामजी भगवान् नर-नारायणके रमणीय आश्रममें तपस्या करनेके लिये चले गये। तत्पश्चात् महाराज दशरथने पुत्रों और बहुओंके साथ उत्तम मुहूर्तमें अपनी पुरी अयोध्याके भीतर प्रवेश किया। श्रीराम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न चारों भाई अपनी-अपनी पत्नीके साथ प्रसन्नचित्त होकर रहने लगे। धर्मात्मा श्रीरघुनाथजीने सीताके साथ बारह वर्षोंतक विहार किया।

★

श्रीरामके वनवाससे लेकर पुनः अयोध्यामें आनेतकका प्रसङ्ग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती ! इसी समय राजा दशरथने अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको प्रेमवश युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा; किन्तु उनकी छोटी रानी कैकेयीने, जिसे पहले वरदान दिया जा चुका था, महाराजसे दो वर माँगे—भरतका राज्याभिषेक और रामका चौदह वर्षोंके लिये वनवास। राजा दशरथने सत्य-वचनमें बँधे होनेके कारण अपने पुत्र श्रीरामको राज्यसे निर्वासित कर दिया। उस समय राजा मारे दुःखके अचेत हो गये तथा रामचन्द्रजीने पिताके वचनोंकी रक्षा करनेके लिये धर्म समझकर राज्यको त्याग दिया और लक्ष्मण तथा सीताके साथ वे वनको चले गये। वहाँ जानेका उद्देश्य था रावणका वध करना। इधर राजा दशरथ पुत्रवियोगसे शोकग्रस्त हो मर गये। उस समय मन्त्रियोंने भरतको राज्यपर बिठानेकी चेष्टा की, किन्तु धर्मात्मा भरतने राज्य लेनेसे इनकार कर दिया। उन्होंने उत्तम भ्रातृ-प्रेमका परिचय देते हुए वनमें आकर श्रीरामसे राज्य ग्रहण करनेके लिये प्रार्थना की; किन्तु पिताकी आज्ञाका पालन करनेके कारण रघुनाथजीने राज्य लेनेकी इच्छा नहीं की। उन्होंने भरतके अनुरोध करनेपर उन्हें अपनी चरणपादुकाएँ दे दीं। भरतने भी भक्तिपूर्वक उन्हें स्वीकार किया और उन पादुकाओंको ही राजसिंहासनपर स्थापित करके गन्ध-पुष्प आदिसे वे प्रतिदिन उनका पूजन करने लगे। महात्मा रघुनाथजीके लौटनेतकके लिये भरतजी तपस्या करते हुए वहाँ रहने लगे तथा समस्त पुरवासी भी तबतकके लिये भाँति-भाँतिके व्रतोंका पालन करने लगे।

श्रीरघुनाथजी चित्रकूट पर्वतपर भरद्वाज मुनिके उत्तम आश्रमके निकट मन्दाकिनीके किनारे लक्ष्मीस्वरूपा विदेह राजकुमारी सीताके साथ रहने लगे। एक दिन महामना श्रीराम जानकीजीकी गोदमें मस्तक रखकर सो रहे थे। इतनेहीमें इन्द्रका पुत्र जयन्त कौएके रूपमें वहाँ आकर विचरने लगा। वह जानकीजीको देखकर उनकी ओर झपटा और अपने तीखे पंजोंसे उसने उनके स्तनपर आघात किया। उस कौएको देखकर श्रीरामने एक कुश हाथमें लिया और उसे ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके उसकी ओर फेंका। वह तृण प्रज्वलित अग्निके समान अत्यन्त भयङ्कर हो गया। उससे आगकी लपटें निकलने लगीं। उसे अपनी ओर आता देख वह कौआ कातर स्वरमें काँव-काँव करता हुआ भाग चला। श्रीरामका छोड़ा हुआ वह भयङ्कर अस्त्र कौएका पीछा करने लगा। कौआ भयसे पीड़ित हो तीनों लोकोंमें घूमता फिरा। वह जहाँ-जहाँ शरण लेनेके लिये जाता, वहीं-वहीं वह भयानक अस्त्र तुरंत पहुँच जाता था। उस कौएको देखकर रुद्र आदि समस्त देवता, दानव और मनीषी मुनि यही उत्तर देते थे कि 'हमलोग तुम्हारी रक्षा करनेमें असमर्थ हैं।' इसी समय तीनों लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माने कहा—'कौआ ! तू भगवान् श्रीरामकी ही शरणमें जा। वे करुणाके सागर और सबके रक्षक हैं। उनमें क्षमा करनेकी शक्ति है। वे बड़े ही दयालु हैं। शरणमें आये हुए जीवोंकी रक्षा करते हैं। वे ही समस्त प्राणियोंके ईश्वर हैं। सुशीलता आदि गुणोंसे सम्पन्न हैं और समस्त जीवसमुदायके रक्षक, पिता, माता, सखा और सुहृद् हैं। उन देवेश्वर श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें जा, उनके सिवा और कहीं भी तेरे लिये शरण नहीं है।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह कौआ भयसे व्याकुल हो सहसा श्रीरघुनाथजीकी शरणमें आकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। कौएको प्राणसङ्कटमें पड़ा देख जानकीजीने बड़ी विनयके साथ अपने स्वामीसे कहा—'नाथ ! इसे बचाइये, बचाइये।' कौआ सामने धरतीपर पड़ा था। सीताने उसके मस्तकको भगवान् श्रीरामके चरणोंमें लगा दिया। तब करुणारूपी अमृतके सागर भगवान् श्रीरामने कौएको अपने हाथसे उठाया और दयासे द्रवित होकर उसकी रक्षा की। दयानिधि श्रीरघुनाथजीने कौएसे कहा—'काक ! डरो मत, मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ। अब तुम सुखपूर्वक अपने स्थानको जाओ।' तब वह कौआ श्रीराम और सीताको बारंबार प्रणाम करके श्रीरघुनाथजीके द्वारा सुरक्षित हो शीघ्र ही स्वर्गलोकको चला गया। फिर श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए चित्रकूट पर्वतपर रहने लगे।

कुछ कालके पश्चात् एक दिन श्रीरघुनाथजी अत्रि-मुनिके विशाल आश्रमपर गये। उन्हें आया देख मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा अत्रिने बड़ी प्रसन्नताके साथ आगे जाकर उनकी अगवानी की और सीतासहित श्रीरामचन्द्रजीको सुन्दर आसनपर विराजमान करके उन्हें प्रेमपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, भाँति-भाँतिके वस्त्र, मधुपर्क और आभूषण आदि समर्पण किये। मुनिकी पत्नी अनसूया देवीने भी प्रसन्नतापूर्वक सीताको परम उत्तम दिव्य वस्त्र और चमकीले आभूषण भेंट किये। फिर दिव्य अन्न, पान और भक्ष्य-भोज्य आदिके द्वारा मुनिने तीनोंको भोजन कराया। मुनिके द्वारा पराभक्तिसे पूजित होकर लक्ष्मणसहित श्रीराम वहाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ एक दिन रहे। सबेरे उठकर उन्होंने महामुनिसे विदा माँगी और उन्हें प्रणाम करके वे जानेको तैयार हुए। मुनिने आज्ञा दे दी। तब कमलनयन श्रीराम महर्षियोंसे भरे हुए दण्डक वनमें गये। वहाँ अत्यन्त भयंकर विराध नामक राक्षस निवास करता था। उसे मारकर वे शरभङ्ग मुनिके उत्तम आश्रमपर गये। शरभङ्गने श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन किया। इससे तत्काल पापमुक्त होकर वे ब्रह्मलोकको चले गये। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी क्रमशः सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा अगस्त्यके भाईके आश्रमपर गये। उन सबने उनका भलीभाँति सत्कार किया। इसके बाद वे गोदावरीके उत्तम तटपर जा पञ्चवटीमें रहने लगे। वहाँ उन्होंने दीर्घकालतक बड़े सुखसे निवास किया। धर्मका अनुष्ठान करनेवाले तपस्वी मुनिवर वहाँ जाकर अपने स्वामी राजीवलोचन श्रीरामका पूजन किया करते थे। उन मुनियोंने राक्षसोंसे प्राप्त होनेवाले अपने भयकी भी भगवान्‌को सूचना दी। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना देकर

अभयकी दक्षिणा दी। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा सत्कार पाकर सब मुनि अपने-अपने आश्रममें चले आये। पञ्चवटीमें रहते हुए श्रीरामके तेरह वर्ष व्यतीत हो गये।

एक समय भयंकर रूप धारण करनेवाली दुर्धर्ष राक्षसी शूर्पणखाने, जो रावणकी बहिन थी, पञ्चवटीमें प्रवेश किया। वहाँ कोटि कन्दर्पके समान मनोहर कान्तिवाले श्रीरघुनाथजीको देखकर वह राक्षसी कामदेवके बाणसे पीड़ित हो गयी और उनके पास जाकर बोली—'तुम कौन हो, जो इस दण्डकारण्यके भीतर तपस्वीके वेषमें रहते हो? तपस्वियोंके लिये तो इस वनमें आना बहुत ही कठिन है। तुम किसलिये यहाँ आये हो? ये सब बातें शीघ्र ही सच-सच बताओ। झूठ न बोलना?' उसके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर कहा—'मैं राजा दशरथका पुत्र हूँ। मेरा नाम राम है। वे मेरे छोटे भाई धनुर्धर लक्ष्मण हैं। ये मेरी पत्नी सीता हैं। इन्हें मिथिलानरेश जनककी प्यारी पुत्री समझो। मैं पिताके आदेशका पालन करनेके लिये इस वनमें आया हूँ। हम तीनों महर्षियोंका हित करनेकी इच्छासे इस महान् वनमें विचरते हैं। सुन्दरी! तुम मेरे आश्रमपर किसलिये आयी हो? तुम कौन हो और किसके कुलमें उत्पन्न हुई हो? ये सारी बातें सच-सच बताओ।'

राक्षसी बोली—मैं मुनिवर विश्रवाकी पुत्री और रावणकी बहिन हूँ। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं तीनों लोकोंमें विख्यात हूँ। मेरे भाईने यह दण्डकारण्य मुझे दे दिया है। मैं इस महान् वनमें ऋषि-महर्षियोंको खाती हुई विचरती रहती हूँ। तुम एक श्रेष्ठ राजा जान पड़ते हो। तुम्हें देखकर मैं कामदेवके बाणोंसे पीड़ित हो रही हूँ और तुम्हारे साथ बेखटके रमण करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। नृपश्रेष्ठ! तुम मेरे पति हो जाओ। मैं तुम्हारी इस सती सीताको अभी खा जाऊँगी।

ऐसा कहकर वह राक्षसी सीताको खा जानेके लिये उद्यत हुई। यह देख श्रीरामचन्द्रजीने तलवार उठाकर उसके नाक-कान काट लिये।* तब विकराल मुखवाली वह राक्षसी भयभीत हो रोती हुई शीघ्र ही खर नामक निशाचरके घर गयी और वहाँ उसने श्रीरामकी सारी करतूत कह सुनायी। यह सुनकर खर कई हजार राक्षसों और दूषण तथा त्रिशिराको साथ ले शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके लिये आया; किन्तु श्रीरामने उस भयानक वनमें काल और अन्तकके समान प्राणान्तकारी बाणोंद्वारा उन विशालकाय राक्षसोंका अनायास ही संहार कर डाला। विषैले साँपोंके समान तीखे सायकोंद्वारा उन्होंने युद्धमें खर, त्रिशिरा और महाबली दूषणको भी मार गिराया। इस प्रकार दण्डकारण्यवासी समस्त राक्षसोंका वध करके श्रीरामचन्द्रजी देवताओंद्वारा पूजित हुए और महर्षि भी उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें रहने लगे। शूर्पणखासे राक्षसोंके मारे जानेका समाचार सुनकर रावण क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और दुरात्मा मारीचको साथ लेकर जनस्थानमें आया। पञ्चवटीमें पहुँचकर दशशीश रावणने मारीचको मायामय मृगके रूपमें रामके आश्रमपर भेजा। वह राक्षस अपने पीछे आते हुए दोनों दशरथकुमारोंको आश्रमसे दूर हटा ले गया। इसी बीचमें रावणने अपने वधकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको हर लिया।

सीताजीको हरी जाती हुई देख गृध्रोंके राजा महाबली जटायुने श्रीरामचन्द्रजीके प्रति स्नेह होनेके कारण उस राक्षसके साथ युद्ध किया। किन्तु शत्रुविजयी रावणने अपने बाहुबलसे जटायुको मार गिराया और राक्षसोंसे घिरी हुई लङ्कापुरीमें प्रवेश किया। वहाँ अशोकवाटिकामें सीताको रखा और श्रीरामचन्द्रजीके बाणोंसे मृत्युकी अभिलाषा रखकर वह अपने महलमें चला गया। इधर श्रीरामचन्द्रजी मृगरूपधारी मारीच नामक राक्षसको मारकर भाई लक्ष्मणके साथ जब पुनः आश्रममें आये, तब उन्हें सीता नहीं दिखायी दीं। सीताको कोई राक्षस हर ले गया, यह जानकर दशरथनन्दन श्रीरामको बहुत शोक हुआ और वे सन्तप्त

* इत्युक्त्वा राक्षसीं सीतां ग्रसितुं वीक्ष्य चोद्यताम्। श्रीरामः खड्गमुद्यम्य नासाकर्णौ प्रचिच्छिदे॥ (२६९। २४४)

होकर विलाप करने लगे। वनमें घूम-घूमकर उन्होंने सीताकी खोज आरम्भ की। उसी समय मार्गमें महाबली जटायु पृथ्वीपर पड़े दिखायी दिये। उनके पैर और पंख कट गये थे तथा सारा अङ्ग लहू-लुहान हो रहा था। उनको इस अवस्थामें देख श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने पूछा—'अहो! किसने तुम्हारा वध किया है?'

जटायुने श्रीरामचन्द्रजीको देखकर धीरे-धीरे कहा—'रघुनन्दन! आपकी पत्नीको महाबली रावणने हर लिया है, उसी राक्षसके हाथसे मैं युद्धमें मारा गया हूँ।' इतना कहकर जटायुने प्राण त्याग दिया। श्रीरामने वैदिक विधिसे उनका दाह-संस्कार किया और उन्हें अपना सनातन धाम प्रदान किया; जो योगियोंको ही प्राप्त होने योग्य है। श्रीरघुनाथजीके प्रसादसे गीधको भी परमपदकी प्राप्ति हुई। उन पक्षिराजको श्रीहरिका सारूप्य मोक्ष मिला। तदनन्तर माल्यवान् पर्वतपर जाकर मातङ्ग मुनिके आश्रमपर वे महाभागा धर्म-परायणा शबरीसे मिले। वह भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थी। उसने श्रीराम-लक्ष्मणको आते देख आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और प्रणाम करके आश्रममें कुशके आसनपर उन्हें बिठाया। फिर चरण धोकर वनके सुगन्धित फूलोंसे भक्तिपूर्वक उनका पूजन किया। उस समय शबरीका हृदय आनन्दमग्न हो रहा था। वह दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। उसने दोनों रघु-कुमारोंको सुगन्धित एवं मधुर फल-मूल निवेदन किये। उन फलोंको भोग लगाकर भगवान्ने शबरीको मोक्ष प्रदान किया। पम्पा सरोवरकी ओर जाते समय उन्होंने मार्गमें भयानक रूपधारी कबन्ध नामक राक्षसका वध किया। उसको मारकर महापराक्रमी श्रीरामने उसे जला दिया, इससे वह स्वर्गलोकमें चला गया। इसके बाद महाबली श्रीरघुनाथजीने शबरीतीर्थको अपने शार्ङ्गधनुषकी कोटिसे गङ्गा और गयाके समान पवित्र बना दिया। 'यह महान् भगवद्भक्तोंका तीर्थ है, इसका जल जिसके उदरमें पड़ेगा, उसका शरीर सम्पूर्ण जगत्के लिये वन्दनीय हो जायगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजी ऋष्यमूक पर्वतपर गये। वहाँ पम्पा सरोवरके तटपर हनुमान् नामक वानरसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्जीके कहनेसे उन्होंने सुग्रीवके साथ मित्रता की और सुग्रीवके अनुरोधसे वानरराज बालिको मारकर सुग्रीवको ही उसके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् जानकीजीका पता लगानेके लिये वानरराज सुग्रीवने हनुमान् आदि वानर-वीरोंको भेजा। पवननन्दन हनुमान्जीने समुद्रको लाँघकर लङ्का नगरीमें प्रवेश किया और दृढ़तापूर्वक पातिव्रत्यका पालन करनेवाली सीताजीको देखा। वे उपवास करनेके कारण दुर्बल, दीन और अत्यन्त शोकग्रस्त थीं। उनके शरीरपर मैल जम गयी थी तथा वे मलिन वस्त्र पहने हुए थीं। उन्हें श्रीरामचन्द्रजीकी दी हुई पहचान देकर हनुमान्जीने उनसे भगवान्का समाचार निवेदन किया। फिर विदेहराजकुमारीको भलीभाँति आश्वासन दे उन्होंने उस सुन्दर उद्यानको नष्ट कर डाला। तदनन्तर दरवाजेका खम्भा उखाड़कर उससे हनुमान्जीने वनकी रक्षा करने-वाले सेवकों, पाँच सेनापतियों, सात मन्त्रिकुमारों तथा रावणके एक पुत्रको मार डाला। इसके बाद रावणके दूसरे पुत्र मेघनादके द्वारा वे स्वेच्छासे बँध गये। फिर राक्षसराज रावणसे मिलकर हनुमान्जीने उससे वार्तालाप किया और अपनी पूँछमें लगायी हुई आगसे समूची लङ्कापुरीको दग्ध कर डाला। फिर सीताजीके दिये हुए चिह्नको लेकर वे लौट आये और कमलनयन श्रीरामचन्द्रजीसे मिलकर सारा हाल बताते हुए बोले—'मैंने सीताजीका दर्शन किया है।'

इसके बाद सुग्रीवसहित श्रीरामचन्द्रजी बहुत-से वानरोंके साथ समुद्रके तटपर गये। वहाँ जाकर उन्होंने अपनी सेनाका पड़ाव डाल दिया। रावणके एक छोटे भाई थे, जो विभीषणके नामसे प्रसिद्ध थे। वे धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ और महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। श्रीरामचन्द्रजीको आया जान विभीषण अपने बड़े भाई रावणको, राज्यको तथा पुत्र और स्त्रीको भी छोड़कर उनकी शरणमें चले गये। हनुमान्जीके कहनेसे श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणको अपनाया। और उन्हें अभयदान देकर राक्षसोंके राज्यपर अभिषिक्त किया। तत्पश्चात् समुद्रको पार करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रजी

उसकी शरणमें गये, किन्तु प्रार्थना करनेपर भी उसकी गति-विधिमें कोई अन्तर होता न देख महाबली श्रीरामने शार्ङ्गधनुष हाथमें लिया और बाणसमूहोंकी वर्षा करके समुद्रको सुखा दिया। तब सरिताओंके स्वामी समुद्रने करुणासागर भगवान्‌की शरणमें जा उनका विधिवत् पूजन किया। इससे श्रीरघुनाथजीने वारुणास्त्रका प्रयोग करके पुनः सागरको जलसे भर दिया। फिर समुद्रके ही कहनेसे उन्होंने उसपर वानरोंके लाये हुए पर्वतोंके द्वारा पुल बँधवाया। उसीसे सेनासहित लङ्कापुरीमें जाकर अपनी बहुत बड़ी सेनाको ठहराया। उसके बाद वानरों और राक्षसोंमें खूब युद्ध हुआ।

तदनन्तर रावणके पुत्र महाबली इन्द्रजित् नामक राक्षसने नागपाशसे श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको बाँध लिया। उस समय गरुड़ने आकर उन्हें उन अस्त्रोंके बन्धनसे मुक्त किया। महाबली वानरोंके द्वारा बहुत-से राक्षस मारे गये। रावणका छोटा भाई कुम्भकर्ण बड़ा बलवान् वीर था। उसको श्रीरामने युद्धमें अग्निशिखाके समान तेजस्वी बाणोंसे मौतके घाट उतार दिया। तब इन्द्रजित्‌को बड़ा क्रोध हुआ और उसने ब्रह्मास्त्रके द्वारा वानरोंको मार गिराया। उस समय हनुमान्‌जी श्रेष्ठ ओषधियोंसे युक्त पर्वतको उठा ले आये। उसको छूकर बहनेवाली वायुके स्पर्शसे सभी वानर जी उठे। तब परम उदार लक्ष्मणने अपने तीखे बाणोंसे जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको मारा था, उसी प्रकार इन्द्रजित्‌को मार गिराया। अब स्वयं रावण ही संग्राममें श्रीरामचन्द्रजीके साथ युद्ध करनेके लिये निकला। उसके साथ चतुरङ्गिणी सेना और महाबली मन्त्री भी थे। फिर तो वानरों और राक्षसोंमें तथा लक्ष्मणसहित श्रीराम और रावणमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। उस समय राक्षसराज रावणने शक्तिका प्रहार करके लक्ष्मणको रणभूमिमें गिरा दिया। इससे महातेजस्वी रघुनाथजी, जो राक्षसोंके काल थे, कुपित हो उठे और काल एवं मृत्युके समान तीखे बाणोंसे राक्षस-वीरोंका संहार करने लगे। उन्होंने कालदण्डके समान सहस्रों तेजस्वी बाण मारकर राक्षसराज रावणको ढक दिया। श्रीरघुनाथजीके बाणोंसे उस निशाचरके सारे अङ्ग बिंध गये और वह भयभीत होकर रणभूमिसे लङ्कामें भाग गया। उसे सारा संसार श्रीराममय दिखायी देता था; अतः वह खिन्न होकर घरमें घुस गया। इसके बाद हनुमान्‌जी श्रेष्ठ ओषधियोंसे युक्त महान् पर्वत उठा ले आये। इससे लक्ष्मणजीको तुरंत ही चेत हो गया। उधर रावणने विजयकी इच्छासे होम करना आरम्भ किया; किन्तु बड़े-बड़े वानरोंने जाकर शत्रुके उस अभिचारात्मक यज्ञका विध्वंस कर दिया। तब रावण पुनः श्रीरामचन्द्रजीसे युद्ध करनेके लिये निकला। उस समय वह दिव्य रथपर बैठा था और बहुत-से राक्षस उसके साथ थे। यह देख इन्द्रने भी अपने दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सारथिसहित दिव्य रथको श्रीरामचन्द्रजीके लिये भेजा। मातलिके लाये हुए उस रथपर बैठकर श्रीरघुनाथजी देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए राक्षसके साथ युद्ध करने लगे। तदनन्तर श्रीराम और रावणमें भयंकर शस्त्रास्त्रोंद्वारा सात दिन और सात रातोंतक घोर युद्ध हुआ। सब देवता विमानोंपर बैठकर उस महायुद्धको देख रहे थे।

रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों बार रावणके मस्तक काटे, किन्तु मेरे (महादेवजीके) वरदानसे उसके फिर नये-नये मस्तक निकल आते थे। तब श्रीरघुनाथजीने उस दुरात्माका वध करनेके लिये महाभयंकर और कालाग्निके समान तेजस्वी ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। श्रीरामचन्द्रजीका छोड़ा हुआ वह अस्त्र रावणकी छाती छेदकर धरतीको चीरता हुआ रसातलमें चला गया। वहाँ सर्पोंने उस बाणका पूजन किया। वह महाराक्षस प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिरा और मर गया। इससे सम्पूर्ण देवताओंका हृदय हर्षसे भर गया। वे सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु महात्मा श्रीरामपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्वराज गाने और अप्सराएँ नाचने लगीं। पवित्र वायु चलने लगी और सूर्यकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। मुनि, सिद्ध, देवता, गन्धर्व और किन्नर भगवान्‌की स्तुति करने लगे। श्रीरघुनाथजीने लङ्काके राज्यपर विभीषणको अभिषिक्त करके अपनेको कृतार्थ-सा माना और इस प्रकार कहा—'विभीषण! जबतक सूर्य, चन्द्रमा और

पृथ्वी रहेगी तथा जबतक यहाँ मेरी कथाका प्रचार रहेगा, तबतक तुम्हारा राज्य कायम रहेगा। महाबल! यहाँ राज्य करके तुम पुनः अपने पुत्र, पौत्र तथा गणोंके साथ योगियोंको प्राप्त होने योग्य मेरे सनातन दिव्य धाममें पहुँच जाओगे।'

इस प्रकार विभीषणको वरदान दे, महाबली श्रीरामचन्द्रजीने मिथिलेशकुमारी सीताको पास बुलवाया। यद्यपि वे सर्वथा पवित्र थीं, तो भी श्रीरामने भरी सभामें उनके प्रति बहुत-से निन्दित वचन कहे। पतिके द्वारा निन्दित होनेपर सती-साध्वी सीता अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश करने लगीं। माता जानकीको अग्निमें प्रवेश करते देख शिव और ब्रह्मा आदि सभी देवता भयसे व्याकुल हो उठे और श्रीरघुनाथजीके पास आ हाथ जोड़कर बोले—'महाबाहु श्रीराम! आप अत्यन्त पराक्रमी हैं। हमारी बात सुनें। सीताजी अत्यन्त निर्मल हैं, साध्वी हैं और कभी भी आपसे विलग होनेवाली नहीं हैं। जैसे सूर्य अपनी प्रभाको नहीं छोड़ सकते, उसी प्रकार आपके द्वारा भी ये त्यागने योग्य नहीं हैं। ये सम्पूर्ण जगत्की माता और सबको आश्रय देनेवाली हैं; संसारका कल्याण करनेके लिये ही ये भूतलपर प्रकट हुई हैं। रावण और कुम्भकर्ण पहले आपके ही भक्त थे, वे सनकादिकोंके शापसे इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे। उन्हींकी मुक्तिके लिये ये विदेहराजकुमारी दण्डकारण्यमें हरी गयीं। इन्हींको निमित्त बनाकर वे दोनों श्रेष्ठ राक्षस आपके हाथसे मारे गये हैं। अब इस राक्षसयोनिसे मुक्त होकर पुत्र, पौत्रों और सेवकोंसहित स्वर्गमें गये हैं। अतः सदा शुद्ध आचरणवाली सती-साध्वी सीताको शीघ्र ही ग्रहण कीजिये। ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें आपने समुद्रसे निकलनेपर लक्ष्मीरूपमें इन्हें ग्रहण किया था।'

इसी समय लोकसाक्षी अग्निदेव सीताको लेकर प्रकट हुए। उन्होंने देवताओंके समीप ही श्रीजानकीजीको श्रीरामजीकी सेवामें अर्पण कर दिया और कहा—'प्रभो! सीता सर्वथा निष्कलङ्क और शुद्ध आचरणवाली हैं। यह बात मैं सत्य-सत्य निवेदन करता हूँ। आप इन्हें बिना विलम्ब किये ग्रहण कीजिये।' अग्निदेवके इस कथनसे रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामने प्रसन्नताके साथ सीताको स्वीकार किया। फिर सब देवता भगवान्का पूजन करने लगे। उस युद्धमें जो-जो श्रेष्ठ वानर राक्षसोंके हाथसे मारे गये थे, वे ब्रह्माजीके वरसे शीघ्र ही जी उठे। तत्पश्चात् राक्षसराज विभीषणने सूर्यके समान तेजस्वी पुष्पकविमानको, जिसे रावणने कुबेरसे छीन लिया था, श्रीरघुनाथजीको भेंट किया। साथ ही बहुत-से वस्त्र और आभूषण भी दिये। विभीषणसे पूजित होकर परम प्रतापी श्रीरामचन्द्रजी अपनी धर्मपत्नी विदेहकुमारी सीताके साथ उस श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हुए। इसके बाद शूरवीर भाई लक्ष्मण, वानर और भालुओंके समुदायसहित वानरराज सुग्रीव तथा महाबली राक्षसोंसहित शूरवीर विभीषण भी उसपर सवार हुए। वानर, भालू और राक्षस—सबके साथ सवार हो श्रीरामचन्द्रजी श्रेष्ठ देवताओंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए अयोध्याकी ओर प्रस्थित हुए। भरद्वाज मुनिके आश्रमपर जाकर सत्यपराक्रमी श्रीरामने हनुमान्जीको भरतके पास भेजा। वे निषादोंके गाँव (शृङ्गवेरपुर) में जाकर श्रीविष्णु भक्त गुहसे मिले और उनसे श्रीरामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहकर नन्दिग्रामको चले गये। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई भरतसे मिलकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके शुभागमनका समाचार कह सुनाया। हनुमान्जीके द्वारा श्रीरघुनाथजीके शुभागमनकी बात सुनकर भाई तथा सुहृदोंके साथ भरतजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर वायुनन्दन हनुमान्जी पुनः श्रीरामचन्द्रजीके पास लौट आये और भरतका समाचार उनसे कह सुनाया।

तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने अपने छोटे भाई लक्ष्मण और सीताके साथ तपस्वी भरद्वाज मुनिको प्रणाम किया। फिर मुनिने भी पकवान, फल, मूल, वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा भाईसहित श्रीरामका स्वागत-सत्कार किया। उनसे सम्मानित होकर श्रीरघुनाथजीने उन्हें प्रणाम किया और उनकी आज्ञा ले पुनः लक्ष्मणसहित पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो सुहृदोंसहित नन्दिग्राममें आये। उस समय कैकेयीनन्दन भरतने भाई शत्रुघ्न,

मन्त्रियों, नगरके मुख्य-मुख्य व्यक्तियों तथा सेनासहित अनेक राजाओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक आगे आकर बड़े भाईकी अगवानी की। रघुकुलश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीके निकट पहुँचकर भरतने अनुयायियोंसहित उन्हें प्रणाम किया। फिर शत्रुओंको ताप देनेवाले श्रीरघुनाथजीने विमानसे उतरकर भरत और शत्रुघ्नको छातीसे लगाया। तत्पश्चात् पुरोहित वसिष्ठजी, माताओं, बड़े-बूढ़ों तथा बन्धु-बान्धवोंको महातेजस्वी श्रीरामने सीता और लक्ष्मणके साथ प्रणाम किया। इसके बाद भरतजीने विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, हनुमान् और सुषेणको गले लगाया। वहाँ भाइयों और अनुचरोंसहित भगवान्ने माङ्गलिक स्नान करके दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये,फिर दिव्य चन्दन लगाया। इसके बाद वे सीता और लक्ष्मणके साथ सुमन्त्र नामक सारथिसे सञ्चालित दिव्य रथपर बैठे। उस समय देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे। फिर भरत, सुग्रीव, शत्रुघ्न, विभीषण, अङ्गद, सुषेण, जाम्बवान्, हनुमान्, नील, नल, सुभग, शरभ, गन्धमादन, अन्यान्य कपि, निषादराज गुह, महापराक्रमी राक्षस और महाबली राजा भी बहुत-से घोड़े, हाथी और रथोंपर आरूढ़ हुए। उस समय नाना प्रकारके माङ्गलिक बाजे बजने लगे तथा नाना प्रकारके स्तोत्रोंका गान होने लगा। इस प्रकार वानर, भालू, राक्षस, निषाद और मानव सैनिकोंके साथ महातेजस्वी श्रीरघुनाथजीने अपने अविनाशी नगर साकेतधाम (अयोध्या) में प्रवेश किया। मार्गमें उस राजनगरीकी शोभा देखते हुए श्रीरघुनाथजीको बारंबार अपने पिता महाराज दशरथकी याद आने लगी। तत्पश्चात् सुग्रीव, हनुमान् और विभीषण आदि भगवद्भक्तोंके पावन चरणोंके पड़नेसे पवित्र हुए राजमहलमें उन्होंने प्रवेश किया।

श्रीरामके राज्याभिषेकसे परमधामगमनतकका प्रसङ्ग

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर किसी पवित्र दिनको शुभ लग्नमें मङ्गलमय भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक करनेके लिये लोगोंने माङ्गलिक उत्सव मनाना आरम्भ किया। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, पर्वत और नारद—ये महर्षि जप और होम करके राजशिरोमणि श्रीरघुनाथजीका शुभ अभिषेक करने लगे। नाना रत्नोंसे निर्मित दिव्य सुवर्णमय पीढ़ेपर सीतासहित भगवान् श्रीरामको बिठाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महर्षि सोने और रत्नोंके कलशोंमें रखे हुए सब तीर्थोंके शुद्ध एवं मन्त्रपूत जलसे, जिसमें पवित्र माङ्गलिक वस्तुएँ, दूर्वादल, तुलसीदल, फूल और चन्दन आदि पड़े थे, उनका मङ्गलमय अभिषेक करने और चारों वेदोंके वैष्णव सूक्तोंको पढ़ने लगे। उस शुभ लग्नके समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजती थीं। चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा होती थी। वेदोंके पारगामी मुनियोंने दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्य गन्ध और नाना प्रकारके दिव्य पुष्पोंसे श्रीसीतादेवीके साथ श्रीरघुनाथजीका शृङ्गार किया। उस समय लक्ष्मणने दिव्य छत्र और चँवर धारण किये। भरत और शत्रुघ्न भगवान्के दोनों बगलमें खड़े होकर ताड़के पंखोंसे हवा करने लगे। राक्षसराज विभीषणने सामनेसे दर्पण दिखाया। वानरराज सुग्रीव भरा हुआ कलश लेकर खड़े हुए। महातेजस्वी जाम्बवान्ने मनोहर फूलोंकी माला पहनायी। बालिकुमार अङ्गदने श्रीहरिको कपूर मिला हुआ पान अर्पण किया। हनुमान्जीने दिव्य दीपक दिखाया। सुषेणने सुन्दर झंडा फहराया। सब मन्त्री महात्मा श्रीरामको चारों ओरसे घेरकर उनकी सेवामें खड़े हुए। मन्त्रियोंके नाम इस प्रकार थे—सृष्टि, जयन्त, विजय, सौराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। नाना जनपदोंके स्वामी नरश्रेष्ठ नृपतिगण, पुरवासी, वैदिक विद्वान् तथा बड़े-बूढ़े सज्जन भी महाराजकी सेवामें उपस्थित थे। वानर, भालू, मन्त्री, राजा, राक्षस, श्रेष्ठ द्विज तथा सेवकोंसे घिरे हुए महाराज श्रीराम साकेतधाम (अयोध्या) में इस

प्रकार शोभा पाने लगे, जैसे भगवान् लक्ष्मीपति विष्णु देवताओंसे घिरे होनेपर परव्योम (वैकुण्ठधाम) में सुशोभित होते हैं। देवी सीताके साथ श्रीरघुनाथजीको राज्यपर अभिषिक्त होते देख विमानोंपर बैठे हुए देवताओंका हृदय आनन्दसे भर गया। गन्धर्व और अप्सराओंके समुदाय जय-जयकार करते हुए स्तुति करने लगे। वसिष्ठ आदि महर्षियोंद्वारा अभिषेक हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजी सीतादेवीके साथ उसी प्रकार सुशोभित हुए, जैसे लक्ष्मीजीके साथ भगवान् विष्णु शोभा पाते हैं। सीताजी अत्यन्त विनीत भावसे श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंकी सेवा किया करती थीं।

राज्याभिषेक हो जानेके पश्चात् सम्पूर्ण दिशाओंका पालन करते हुए श्रीरामचन्द्रजीने विदेहनन्दिनी सीताके साथ एक हजार वर्षोंतक मनोरम राजभोगोंका उपभोग किया। इस बीचमें अन्तःपुरकी स्त्रियाँ, नगर-निवासी तथा प्रान्तके लोग छिपे तौरपर सीताजीकी निन्दा करने लगे। निन्दाका विषय यही था कि वे कुछ कालतक राक्षसके घरमें निवास कर चुकी थीं। शत्रुओंका संहार करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी लोकापवादके कारण मानव-भावका प्रदर्शन करते हुए उन्होंने राजकुमारी सीताको गर्भवतीकी अवस्थामें वाल्मीकि मुनिके आश्रमके पास गङ्गातटपर महान् वनके भीतर छुड़वा दिया। महातेजस्विनी जानकी गर्भका कष्ट सहन करती हुई मुनिके आश्रममें रहने लगीं। उनका मन सदा स्वामीके चिन्तनमें ही लगा रहता था। मुनिपत्नियोंसे सत्कृत और महर्षि वाल्मीकिद्वारा सुरक्षित होकर उन्होंने आश्रममें ही दो पुत्र उत्पन्न किये, जो कुश और लवके नामसे प्रसिद्ध हुए। मुनिने ही उनके संस्कार किये और वहीं पलकर वे दोनों बड़े हुए।

उधर श्रीरामचन्द्रजी यम-नियमादि गुणोंसे सम्पन्न हो सब प्रकारके भोगोंका परित्याग करके भाइयोंके साथ पृथ्वीका पालन करने लगे। वे सदा आदि-अन्तसे रहित, सर्वव्यापी श्रीहरिका पूजन करते हुए ब्रह्मचर्यपरायण हो प्रतिदिन पृथ्वीका शासन करते थे। धर्मात्मा शत्रुघ्न लवणासुरको मारकर अपने दो पुत्रोंके साथ देवनिर्मित मथुरापुरीके राज्यका पालन करने लगे। भरतने सिंधु नदीके दोनों तटोंपर अधिकार जमाये हुए गन्धर्वोंका संहार करके उस देशमें अपने दोनों महाबली पुत्रोंको स्थापित कर दिया। इसी प्रकार लक्ष्मणने मद्रदेशमें जाकर मद्रोंका वध किया और अपने दो महापराक्रमी पुत्रोंको वहाँके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् अयोध्यामें आकर वे श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा करने लगे। श्रीरघुनाथजीने एक तपस्वी शूद्रको मारकर मृत्युको प्राप्त हुए एक ब्राह्मणबालकको जीवन प्रदान किया। तत्पश्चात् नैमिषारण्यमें गोमतीके तटपर श्रीरघुनाथजीने सुवर्णमयी जानकीकी प्रतिमाके साथ बैठकर अश्वमेध यज्ञ किया। वहाँ भारी जनसमाज एकत्रित था। उन्होंने बहुत-से यज्ञ किये।

इसी समय महातपस्वी वाल्मीकिजी सीताको साथ लेकर वहाँ आये और श्रीरघुनाथजीसे इस प्रकार बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले श्रीराम! मिथिलेशकुमारी सीता सर्वथा निष्पाप हैं। ये अत्यन्त निर्मल और सती-साध्वी स्त्री हैं। जैसे प्रभा सूर्यसे पृथक् नहीं होती, उसी प्रकार ये भी कभी आपसे अलग नहीं होतीं। आप भी पापके सम्पर्कसे रहित हैं; फिर आपने इनका त्याग कैसे किया?'

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! मैं जानता हूँ, आपके कथनानुसार जानकी सर्वथा निष्पाप हैं। बात यह है कि सती-साध्वी सीताको दण्डकारण्यमें रावणने हर लिया था। मैंने उस दुष्टको युद्धमें मार डाला। उसके बाद सीताने अग्निमें प्रवेश करके जब अपनेको शुद्ध प्रमाणित कर दिया, तब मैं धर्मतः इन्हें लेकर पुनः अयोध्यामें आया। यहाँ आनेपर इनके प्रति नगरनिवासियोंमें महान् अपवाद फैला। यद्यपि ये तब भी सदाचारिणी ही थीं, तो भी लोकापवादके कारण मैंने इन्हें आपके निकट छोड़ दिया। अतः अब केवल मेरे ही चिन्तनमें संलग्न रहनेवाली सीताको उचित है कि ये लोगोंके सन्तोषके लिये राजाओं और महर्षियोंके सामने अपनी शुद्धताका विश्वास दिलावें।

मुनियों और राजाओंकी सभामें श्रीरामचन्द्रजीके

ऐसा कहनेपर सती सीताने उनके प्रति अपना अनन्य प्रेम दिखलानेके लिये सब लोगोंको आश्चर्यमें डालनेवाला प्रमाण उपस्थित किया। वे हाथ जोड़कर सबके सामने उस भरी सभामें बोलीं—'यदि मैं श्रीरघुनाथजीके सिवा अन्य किसी पुरुषका मनसे चिन्तन भी न करती होऊँ तो हे पृथ्वीदेवी ! तुम मुझे अपने अङ्कमें स्थान दो। यदि मैं मन, वाणी और क्रियाद्वारा केवल श्रीरघुनाथजीकी ही पूजा करती होऊँ तो हे माता पृथिवी ! तुम मुझे अपने अङ्कमें स्थान दो।'

माता जानकीको परमधाममें चलनेके लिये उद्यत जान पक्षिराज गरुड़ अपनी पीठपर रत्नमय सिंहासन लिये रसातलसे प्रकट हुए। इसी समय पृथ्वीदेवी भी प्रत्यक्षरूपसे प्रकट हुईं। उन्होंने मिथिलेशकुमारी सीताको दोनों हाथोंसे उठा लिया और स्वागतपूर्वक अभिनन्दन करके उन्हें सिंहासनपर बिठाया। सीता-देवीको सिंहासनपर बैठी देख देवगण धारावाहिकरूपसे उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे तथा दिव्य अप्सराओंने उनका पूजन किया। फिर वे सनातनी देवी गरुड़पर आरूढ़ हो पृथ्वीके ही मार्गसे परम धामको चली गयीं। जगदीश्वरी सीता पूर्वभागमें दासीगणोंसे घिरकर योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य सनातन परम धाममें स्थित हुईं। सीताको रसातलमें प्रवेश करते देख सब मनुष्य साधुवाद देते हुए उच्चस्वरसे कहने लगे—'वास्तवमें ये सीतादेवी परम साध्वी हैं।'

सीताके अन्तर्धान हो जानेसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा शोक हुआ। वे अपने दोनों पुत्रोंको लेकर मुनियों और राजाओंके साथ अयोध्यामें आये। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाली श्रीरामचन्द्रजीकी माताएँ कालधर्मको प्राप्त हो पतिके समीप स्वर्गलोकमें चली गयीं। कठोर व्रतका पालन करनेवाले श्रीरघुनाथजीने ग्यारह हजार वर्षोंतक धर्मपूर्वक राज्यका पालन किया। एक दिन काल तपस्वीका वेष धारण करके श्रीराम-चन्द्रजीके भवनमें आया और इस प्रकार बोला—'महाभाग श्रीराम ! मुझे ब्रह्माजीने भेजा है। रघुश्रेष्ठ ! मैं उनका सन्देश कहता हूँ, आप सुनें। मेरी और आपकी बातचीत हम ही दोनोंतक सीमित रहनी चाहिये; इस बीचमें जो यहाँ प्रवेश करे, वह वधके योग्य होगा।'

ऐसा ही होगा, यह प्रतिज्ञा करके श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणको दरवाजेपर पहरा देनेके लिये बिठा दिया और स्वयं कालके साथ वार्तालाप करने लगे। उस समय कालने कहा—"श्रीराम ! मेरे आनेका जो कारण है, उसे आप सुनें। देवताओंने आपसे कहा था कि 'आप रावण और कुम्भकर्णको मार ग्यारह हजार वर्षोंतक मनुष्यलोकमें निवास करें।' उनके ऐसा कहनेपर आप इस भूतलपर अवतीर्ण हुए थे। वह समय अब पूरा हो गया है; अतः अब आप परमधामको पधारें, जिससे सब देवता आपसे सनाथ हों।" महाबाहु श्रीरामने 'एवमस्तु' कहकर कालका अनुरोध स्वीकार किया।

उन दोनोंमें अभी बातचीत हो ही रही थी कि महातपस्वी दुर्वासामुनि राजद्वारपर आ पहुँचे और लक्ष्मणसे बोले—'राजकुमार ! तुम शीघ्र जाकर रघुनाथजीको मेरे आनेकी सूचना दो।' यह सुनकर लक्ष्मणने कहा—'ब्रह्मन् ! इस समय महाराजके समीप जानेकी आज्ञा नहीं है। लक्ष्मणकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाको बड़ा क्रोध हुआ। वे बोले—'यदि तुम श्रीरामचन्द्रजीसे नहीं मिलाओगे तो शाप दे दूँगा।' लक्ष्मणजीने शापके भयसे श्रीरामचन्द्रजीको महर्षि दुर्वासाके आगमनकी सूचना दे दी। तब सब भूतोंको भय देनेवाले कालदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। महाराज श्रीरामने दुर्वासाके आनेपर उनका विधिवत् पूजन किया। उधर रघुश्रेष्ठ लक्ष्मणने अपने बड़े भाईकी प्रतिज्ञाको याद करके सरयूके जलमें स्थित हो अपने साक्षात् स्वरूपमें प्रवेश किया। उस समय उनके मस्तकपर सहस्रों फन शोभा पाने लगे। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति कोटि चन्द्रमाओंके समान जान पड़ती थी। वे दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये दिव्य चन्दनके अनुलेपसे सुशोभित हो रहे थे। सहस्रों नाग-कन्याओंसे घिरे हुए भगवान् अनन्त दिव्य विमानपर बैठकर परमधामको चले गये।

लक्ष्मणके परमधामगमनका हाल जानकर

श्रीरघुनाथजीने भी इस लोकसे जानेका विचार किया। उन्होंने अपने पुत्र वीरवर कुशको कुशावतीमें और लवको द्वारवतीमें धर्मपूर्वक अपने-अपने राज्यपर स्थापित किया। उस समय भगवान् श्रीरामके अभिप्रायको जानकर समस्त वानर और महाबली राक्षस अयोध्यामें आ गये। विभीषण, सुग्रीव, जाम्बवान्, पवनकुमार हनुमान्, नील, नल, सुषेण और निषादराज गुह भी आ पहुँचे। महामना शत्रुघ्न भी अपने वीर पुत्रोंको राज्यपर अभिषिक्त करके श्रीरामपालित अयोध्यानगरीमें आये। वे सभी महात्मा श्रीरामको प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे—'रघुश्रेष्ठ! आप परमधाममें पधारनेको उद्यत हैं—यह जानकर हम सब लोग आपके साथ चलनेको आये हैं। प्रभो! आपके बिना हम क्षणभर भी जीवित रहनेमें समर्थ नहीं हैं; अतः हम भी साथ ही चलेंगे।' उनके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार की। तत्पश्चात् उन्होंने राक्षसराज विभीषणसे कहा—'तुम धर्मपूर्वक राज्यका पालन करो। मेरी प्रतिज्ञा व्यर्थ न होने दो। जबतक चन्द्रमा, सूर्य और पृथ्वी कायम हैं, तबतक प्रसन्नतापूर्वक राज्य भोगो। फिर योग्य समय आनेपर मेरे परमपदको प्राप्त होओगे।'

ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने इक्ष्वाकुकुलके देवता श्रीरङ्गशायी सनातन भगवान् विष्णुके अर्चाविग्रहको विभीषणके लिये समर्पित किया। इसके बाद शत्रुसूदन श्रीरघुनाथजीने हनुमान्‌जीसे कहा—'वानरेश्वर! संसारमें जबतक मेरी कथाका प्रचार रहे, तबतक तुम इस पृथ्वीपर सुखसे रहो। फिर समयानुसार मुझे प्राप्त होओगे।' हनुमान्‌जीसे ऐसा कहकर वे जाम्बवान्‌से बोले—'पुरुषश्रेष्ठ! द्वापर युग आनेपर मैं पुनः पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतार लूँगा और तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा। [अतः तुम यहीं रहो।]'

उपर्युक्त व्यक्तियोंसे ऐसा कहकर श्रीरामचन्द्रजीने अन्य सभी वानरों और भालुओंसे कहा—'तुम सब लोग मेरे साथ चलो।' तदनन्तर ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले भगवान् श्रीराम श्वेत वस्त्र पहनकर दोनों हाथोंमें कुश लिये अनासक्तभावसे चले। श्रीरामचन्द्रजीके दक्षिण भागमें कमल हाथमें लिये श्रीदेवी उपस्थित हो गयीं और वामभागमें भूदेवी साथ-साथ चलने लगीं। वेद, वेदाङ्ग, पुराण, इतिहास, ॐकार, वषट्कार, लोकको पवित्र करनेवाली सावित्री तथा धनुष आदि अस्त्र-शस्त्र—सभी पुरुष-विग्रह धारण करके वहाँ उपस्थित हो गये। भरत, शत्रुघ्न तथा समस्त पुरवासी भी अपनी स्त्री, पुत्र तथा सेवकोंसहित भगवान्‌के साथ-साथ चले। मन्त्री, भृत्यवर्ग, किङ्कर, वैदिक, वानरगण, भालु तथा राजा सुग्रीव—इन सबने स्त्री और पुत्रोंके साथ परम बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीका अनुसरण किया। इतना ही नहीं, समीपवर्ती पशु, पक्षी तथा समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणी भी महात्मा रघुनाथजीके साथ गये। उस समय श्रीरामचन्द्रजीको जो भी देख लेते, वे ही उनके साथ लग जाते थे। उनमेंसे कोई भी पीछे नहीं लौटता था।

तदनन्तर अयोध्यासे तीन योजन दूर जाकर, जहाँ नदीका प्रवाह पच्छिमकी ओर था, भगवान्‌ने अनुयायियोंसहित पुण्यसलिला सरयूमें प्रवेश किया। उस समय पितामह ब्रह्माजी सब देवताओं और ऋषियोंके साथ आकर रघुनाथजीकी स्तुति करते हुए बोले—'श्रीविष्णो! आइये। आपका कल्याण हो। बड़े सौभाग्यकी बात है जो आप यहाँ पधारे हैं। मानद! अब आप अपने देवोपम भाइयोंके साथ अपने वैष्णव स्वरूपमें प्रवेश कीजिये। वही आपका सनातन रूप है। देव! आप ही सम्पूर्ण विश्वकी गति हैं। कोई भी आपके स्वरूपको वास्तवमें नहीं जानते। आप अचिन्त्य, महात्मा, अविनाशी और सबके आश्रय हैं। भगवन्! आप आइये।' उस समय भगवान् श्रीरामने अपने स्वरूपमें प्रवेश किया। भरत और शत्रुघ्न क्रमशः शङ्ख और चक्रके अंश थे। वे दोनों महात्मा दिव्य तेजसे सम्पन्न हो अपने तेजमें मिल गये। तब शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए चतुर्भुज भगवान् विष्णुके रूपमें स्थित हो श्रीरामचन्द्रजी श्री और भू देवियोंके साथ विमानपर आरूढ़ हुए। वहाँ दिव्य कल्पवृक्षके मूल

भागमें सुन्दर सिंहासनपर भगवान् विराजमान हुए। उस समय सब देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीके पीछे जो वानर, भालु और मनुष्य आये थे, उन्होंने सरयूके जलका स्पर्श करते ही सुखपूर्वक प्राण त्याग दिये और श्रीरघुनाथजीकी कृपासे सबने दिव्य रूप धारण कर लिया। उनके अङ्गोंमें दिव्य हार और दिव्य वस्त्र शोभा पा रहे थे। वे दिव्य मङ्गलमय कान्तिसे सम्पन्न थे। असंख्य देहधारियोंसे घिरे हुए राजीवलोचन भगवान् श्रीराम उस विमानपर आरूढ़ हुए। उस समय देवता, सिद्ध, मुनि और महात्माओंसे पूजित होकर वे अपने दिव्य, अविनाशी एवं सनातन धाममें चले गये।

पार्वती! जो मनुष्य श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रके एक या आधे श्लोकको पढ़ता अथवा सुनता या भक्तिपूर्वक स्मरण करता है, वह कोटि जन्मोंके उपार्जित ज्ञाताज्ञात पापसे मुक्त हो स्त्री, पुत्र एवं बन्धु-बान्धवोंके साथ योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य विष्णुलोकमें अनायास ही चला जाता है। देवि! यह मैंने तुमसे श्रीरामचन्द्रजीके महान् चरित्रका वर्णन किया है। तुम्हारी प्रेरणासे मुझे श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाओंके कीर्तनका शुभ अवसर प्राप्त हुआ, इससे मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

★

श्रीकृष्णावतारकी कथा—व्रजकी लीलाओंका प्रसङ्ग

पार्वतीजीने कहा—महेश्वर! आपने श्रीरघुनाथजीके उत्तम चरित्रका अच्छी तरह वर्णन किया। देवेश्वर! आपके प्रसादसे इस उत्तम कथाको श्रवण करके मैं धन्य हो गयी। अब मुझे भगवान् वासुदेवके महान् चरित्रोंको सुननेकी इच्छा हो रही है, कृपया कहिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! सबके हृदयमें निवास करनेवाले परमात्मा श्रीकृष्णकी लीलाएँ मनुष्योंको मनोवाञ्छित फल देनेवाली हैं। मैं उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। यदुवंशमें वसुदेव नामक श्रेष्ठ पुरुष उत्पन्न हुए, जो देवमीढके पुत्र और सब धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने मथुरामें उग्रसेनकी पुत्री* देवकीसे विधिपूर्वक विवाह किया, जो देवाङ्गनाओंके समान सुन्दरी थी। उग्रसेनके एक कंस नामक पुत्र था, जो महाबलवान् और शूरवीर था। जब वधू और वर रथपर बैठकर विदा होने लगे, उस समय कंस स्नेहवश सारथि बनकर उनका रथ हाँकने लगा। इसी समय गम्भीर स्वरमें आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'कंस! इस देवकीका आठवाँ बालक तुम्हारे प्राण लेगा।'

यह सुनकर कंस अपनी बहिनको मार डालनेके लिये तैयार हो गया। उसे क्रोधमें भरा देख बुद्धिमान् वसुदेवजीने कहा—'राजन्! यह तुम्हारी बहिन है, तुम्हें धर्मतः इसका वध नहीं करना चाहिये। इसके गर्भसे जो बालक उत्पन्न हों, उन्हींको मार डालना।' 'अच्छा, ऐसा ही हो' यों कहकर कंसने वसुदेव और देवकीको अपने सुन्दर महलमें ही रोक लिया और उनके लिये सब प्रकारके सुखभोगकी व्यवस्था कर दी। पार्वती! इसी बीचमें समस्त लोकोंको धारण करनेवाली पृथ्वी भारी भारसे पीड़ित होकर सहसा लोकनाथ ब्रह्माजीके पास गयी और गम्भीर वाणीमें बोली—'प्रभो! अब मुझमें इन लोकोंको धारण करनेकी शक्ति नहीं रह गयी है। मेरे ऊपर पाप कर्म करनेवाले राक्षस निवास करते हैं। वे बड़े बलवान् हैं, अतः सम्पूर्ण जगत्के धर्मोंका विध्वंस करते हैं। पापसे मोहित हुए समस्त मानव इस समय अधर्मपरायण हो रहे हैं। इस संसारमें अब थोड़ा-सा भी धर्म कहीं दिखायी नहीं देता। देव! मैं सत्य-शौचयुक्त धर्मके ही बलसे टिकी हुई थी। अतः अधर्मपरायण विश्वको धारण करनेमें मैं असमर्थ हो रही हूँ।'

यों कहकर पृथ्वी वहीं अन्तर्धान हो गयी। तदनन्तर ब्रह्मा और शिव आदि समस्त देवता तथा महातपस्वी

* अन्य पुराणोंमें देवकीको उग्रसेनके भाई देवककी पुत्री बताया गया है। कल्पभेदसे ऐसा होना सम्भव है।

मुनि क्षीरसागरके उत्तर तटपर जगदीश्वर श्रीविष्णुके पास गये और नाना प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने समस्त देवताओं और मुनिवरोंसे कहा—'देवगण ! तुम सब लोग यहाँ किसलिये आये हो ?' तब पितामह ब्रह्माजीने देवाधिदेव जनार्दनसे कहा—'देवदेव ! जगन्नाथ ! पृथ्वी भारी भारसे पीडित है। इस समय संसारमें बहुत-से दुर्द्धर्ष राक्षस उत्पन्न हो गये हैं। जरासन्ध, कंस, प्रलम्ब और धेनुक आदि दुरात्मा सब लोगोंको सता रहे हैं; अतः आप इस पृथ्वीका भार उतारनेकी कृपा करें।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण जगत्‌का पालन करनेवाले अविनाशी भगवान् हृषीकेशने कहा—'देवताओ ! मैं मनुष्यलोकके भीतर यदुकुलमें अवतार लेकर पृथ्वीका भार हटाऊँगा।' यह सुनकर सब देवता भगवान् जनार्दनको नमस्कार करके अपने-अपने लोकमें जा उन परमेश्वरका ही चिन्तन करने लगे। तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीहरिने भगवती मायासे कहा—'देवि ! रसातलसे हिरण्याक्षके छः पुत्रोंको ले आओ और क्रमशः वसुदेव-पत्नी देवकीके गर्भमें स्थापित करो। सातवाँ गर्भ अनन्त (शेषनाग) का अंश होगा, उसे भी खींचकर तुम देवकीकी सौत रोहिणीके उदरमें स्थापित कर देना। तदनन्तर देवकीके आठवें गर्भमें मेरा अंश प्रकट होगा। तुम नन्दगोपकी पत्नी यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होना। इससे इन्द्र आदि देवता तुम्हारी पूजा करेंगे।'

'बहुत अच्छा' कहकर महाभागा मायाने क्रमशः हिरण्याक्षके पुत्रोंको ला-लाकर देवकीके गर्भमें स्थापित किया। महाबली कंसने पैदा होते ही उन बालकोंको मार डाला। फिर भगवत्प्रेरणावश सातवाँ गर्भ अनन्तके अंशसे प्रकट हुआ। वह गर्भ जब बढ़कर कुछ पुष्ट हुआ तो मायादेवीने उसे रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया। गर्भका संकर्षण करने (खींचने) से उस बालकका जन्म हुआ, इसलिये वह संकर्षण नामसे प्रसिद्ध हुआ। भादोंके[1] कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको रोहिणी नक्षत्रमें शुभ लग्नका उदय होनेपर रोहिणी देवीने भगवान् संकर्षणको जन्म दिया। तत्पश्चात् साक्षात् भगवान् श्रीहरि देवकीके गर्भमें आये। आठवें गर्भसे युक्त देवकीको देखकर कंस बहुत भयभीत हुआ। उस समय समस्त देवताओंके मनमें उल्लास छा रहा था। वे विमानपर बैठे हुए आकाशसे ही देवकी देवीकी स्तुति किया करते थे। तदनन्तर दसवाँ महीना आनेपर श्रावणमासकी[2] कृष्णा अष्टमीको आधी रातके समय श्रीहरिका अवतार हुआ। वसुदेवके पुत्र होनेसे वे सनातन भगवान् वासुदेव कहलाये।

सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी हाथ जोड़ नमस्कार करके उन जगन्मय प्रभुकी स्तुति करने लगे—'जगन्नाथ ! आप भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये साक्षात् कल्पवृक्ष हैं। प्रभो ! आप स्वयं मेरे यहाँ प्रकट हुए, मैं कितना भाग्यवान् हूँ। अहो ! आज धरणीधर भगवान् इस धरतीके ऊपर मेरे पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। पुरुषोत्तम ! आपके इस अद्भुत ईश्वरीय रूपको देखकर महाबली एवं पापाचारी दानव सहन नहीं कर सकेंगे।' वसुदेवजीके इस प्रकार स्तुति और प्रार्थना करनेपर सनातन पुरुष भगवान् पद्मनाभने अपने चतुर्भुज रूपको तिरोहित कर लिया और मानवरूप धारण करके वे दो भुजाओंसे ही शोभा पाने लगे। उस भवनमें पहरा देनेवाले जो दानव रहते थे, वे सब भगवान्‌की मायासे मोहित और तमोगुणसे आच्छादित हो सो गये। इसी समय मौका पाकर भगवान्‌के आज्ञानुसार वसुदेवजी भगवान्‌को गोदमें ले तुरंत ही नगरसे बाहर निकल गये। उस समय सब देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। मेघ पानी बरसाने लगे,

---

१-२—यहाँ महीनोंका नाम शुक्लपक्षसे मासका आरम्भ मानकर दिया गया है। जहाँ कृष्णपक्षसे महीनोंका आरम्भ होता है, वहाँ भादोंका कृष्णपक्ष कुआरका कृष्णपक्ष होगा और सावनका कृष्णपक्ष भादोंका कृष्णपक्ष होगा। अतः बलदेवजीकी जन्माष्टमी आश्विन कृष्णपक्षमें मनानी चाहिये और भगवान् श्रीकृष्णकी जन्माष्टमी भादोंके कृष्णपक्षमें।

यह देख महाबली नागराज शेष भक्तिवश अपने हजारों फनोंसे भगवान्‌के ऊपर छाया करके पीछे-पीछे चलने लगे। उनके चरणोंका स्पर्श होते ही नगरद्वारके किवाड़ खुल गये। वहाँके रक्षक नींदमें बेसुध थे। तीव्र प्रवाहसे बहनेवाली भरी हुई यमुना भी महात्मा वसुदेवजीके प्रवेश करनेपर घट गयी। उसमें घुटनेतक ही जल रह गया। यमुनाके पार हो वसुदेवजीने उसके तटपर ही स्थित व्रजमें प्रवेश किया।

उधर नन्दगोपकी पत्नीके गर्भसे गायोंके व्रजमें ही एक कन्या उत्पन्न हुई। किन्तु यशोदा मायासे मोहित एवं तमोगुणसे आच्छादित हो गाढ़ी नींदमें सो गयी थीं। वसुदेवजीने उनकी शय्यापर भगवान्‌को सुला दिया और उनकी कन्याको लेकर वे मथुरामें चले आये। वहाँ पत्नीके हाथमें कन्याको देकर वे निश्चिन्त हो गये। देवकीकी शय्यापर जाते ही वह कन्या बालभावसे रोने लगी। बालककी आवाज सुनकर पहरेदार जाग उठे। उन्होंने कंसको देवकीके प्रसव होनेका समाचार दे दिया। कंस तुरंत ही आ पहुँचा और बालिकाको लेकर उसने एक पत्थरपर पटक दिया। किन्तु वह कन्या उसके हाथसे छूटनेपर तुरंत ही आकाशमें जा खड़ी हुई। वह कंसके सिरमें लात मारकर ऊपर गयी और आठ भुजावाली देवीके रूपमें दर्शन दे उससे बोली—'ओ मूर्ख! मुझे पत्थरपर पटकनेसे क्या हुआ? जो तुम्हारा वध करनेवाले हैं, उनका जन्म तो हो गया। जो सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले हैं, वे भगवान् इस संसारमें अवतार ले चुके हैं, वे ही तुम्हारे प्राण लेंगे।'

इतना कहकर देवीने सहसा अपने तेजसे सम्पूर्ण आकाशको आलोकमय कर दिया और वह देवताओं तथा गन्धर्वोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनती हुई हिमालयपर्वतपर चली गयी। देवीकी बात सुनकर कंसका हृदय उद्विग्न हो उठा। उसने भयसे पीड़ित हो प्रलम्ब आदि दानववीरोंको बुलाकर कहा—'वीरो! हमलोगोंके भयसे समस्त देवताओंने क्षीरसागरपर जाकर विष्णुसे राक्षसोंके संहारके विषयमें बहुत कुछ कहा है। उनकी बात सुनकर वे अविनाशी धरणीधर यहाँ कहीं मनुष्यरूपमें उत्पन्न हुए हैं। अतः आज इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तुम सभी राक्षस जाओ और जिन बालकोंमें कुछ बलकी अधिकता जान पड़े, उन्हें बेखटके मार डालो।' ऐसी आज्ञा देकर कंसने वसुदेव और देवकीको आश्वासन दे उन्हें बन्धनसे मुक्त कर दिया और स्वयं अपने महलमें चला गया। तत्पश्चात् वसुदेवजी नन्दके उत्तम व्रजमें गये। नन्दरायजीने उनका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँ अपने पुत्रको देखकर वसुदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने नन्दरानी यशोदासे कहा—'देवि! रोहिणीके पेटसे पैदा हुए मेरे इस पुत्र (बलराम) को भी तुम अपना ही पुत्र मानकर इसकी रक्षा करना। यह कंसके डरसे यहाँ लाया गया है।' दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाली नन्दपत्नीने 'बहुत अच्छा' कहकर वसुदेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य की और दोनों पुत्रोंको पाकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका पालन करने लगीं। इस प्रकार नन्दगोपके घर अपने दोनों पुत्रोंको रखकर वसुदेवजी निश्चिन्त हो गये और तुरंत ही मथुरापुरीको चले गये। तदनन्तर वसुदेवजीकी प्रेरणासे किसी शुभ दिनको गर्गजी नन्दगोपके व्रजमें गये। वहाँके निवासियोंने उनकी बड़ी आवभगत की। फिर उन्होंने गोकुलमें वसुदेवके दोनों पुत्रोंके विधिपूर्वक जातकर्म और नामकरण-संस्कार कराये। बड़े बालकके नाम उन्होंने सङ्कर्षण, रौहिणेय, बलभद्र, महाबल और राम आदि रखे तथा छोटेके श्रीधर, श्रीकर, श्रीकृष्ण, अनन्त, जगत्पति, वासुदेव और हृषीकेश आदि नाम रखे। 'लोगोंमें ये दोनों बालक क्रमशः राम और कृष्णके नामसे विख्यात होंगे।' ऐसा कहकर द्विजश्रेष्ठ गर्गने पितरों और देवताओंका पूजन किया और स्वयं भी ग्वालोंसे पूजित होकर मथुरामें लौट आये।

एक दिनकी बात है, बालकोंकी हत्या करनेवाली पूतना कंसके भेजनेसे रातमें नन्दके घर आयी। उसने अपने स्तनोंमें विष लगा रखा था। अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके मुखमें वही स्तन देकर वह उन्हें दूध पिलाने

लगी। भगवान् श्रीकृष्णने उस राक्षसीको पहचान लिया और उसके स्तनोंको खूब दबाकर उसे प्राणोंसहित पीना आरम्भ किया। अब तो वह मतवाली राक्षसी छटपटाने लगी। उसके स्नायुबन्धन टूट गये। वह काँपती हुई गिरी और जोर-ज़ोरसे चिग्घाड़ती हुई मर गयी। उसके चीत्कारसे सारा आकाश-मण्डल गूँज उठा। उसे पृथ्वीपर पड़ी देख समस्त गोप थर्रा उठे। श्रीकृष्णको राक्षसीके विशाल वक्षःस्थलपर खेलते देख गोपगण उद्विग्न हो उठे और तुरंत ही दौड़कर उन्होंने बालकको गोदमें उठा लिया। उस समय नन्दगोपने पास आकर पुत्रको अङ्कमें ले लिया और राक्षसके भयसे रक्षा करनेके लिये गायके गोबरसे और बालसे बालकके मस्तकको झाड़ा। फिर भगवान्‌के नाम लेकर श्रीकृष्णके सब अङ्गोंका मार्जन किया। इसके बाद उस भयानक राक्षसीको गौओंके व्रजसे बाहर करके डरे हुए ग्वालोंकी सहायतासे उसका दाह किया।

एक दिन भगवान् श्रीहरि किसी छकड़ेके नीचे सोये हुए थे और दोनों पैर फेंक-फेंककर रो रहे थे। उनके पैरका धक्का लगनेसे छकड़ा ही उलट गया। उसपर जो बर्तन-भाँड़े रखे हुए थे, वे सब टूट-फूट गये। गोप और गोपियाँ इतने बड़े छकड़ेको सहसा उलटकर गिरा देख बड़े विस्मयमें पड़ीं और 'यह क्या हो गया?' ऐसा कहती हुई शङ्कित हो उठीं। उस समय विस्मित हुई यशोदाने शीघ्र ही अपने बालकको गोदमें उठा लिया। वे दोनों यदुवंशी बालक माताके स्तनपानसे पुष्ट होकर थोड़े ही समयमें बड़े हो गये और घुटनों तथा हाथोंके बलसे चलने लगे। उन दिनों एक मायावी राक्षस मुर्गेका रूप धारण किये वहाँ पृथ्वीपर विचरता रहता था। वह श्रीकृष्णको मारनेकी ताकमें लगा था। भगवान् श्रीकृष्णने उसे पहचान लिया और एक ही तमाचेमें उसका काम तमाम कर दिया। मार पड़नेपर वह पृथ्वीपर गिरा और मर गया। मरते समय उसने अपने राक्षसस्वरूपको ही धारण किया था।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण समूचे व्रजमें विचरने लगे। वे गोपियोंके यहाँसे माखन चुरा लिया करते थे। इससे यशोदाको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी लपेटकर उन्हें ऊखलमें बाँध दिया और स्वयं गोरस बेचने चली गयीं। समस्त पृथ्वीको धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ऊखलमें बँधे-ही-बँधे उसे खींचते हुए दो अर्जुन वृक्षोंके बीचसे निकले। गोविन्दने ऊखलके धक्केसे ही उन दोनों वृक्षोंको गिरा दिया। उनके तने टूट गये और वे बड़े जोरसे तड़तड़ शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। उनके गिरनेकी भारी आवाजसे बड़े-बूढ़े गोप वहाँ आ पहुँचे। यह घटना देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। यशोदाजी भी बहुत डर गयीं और श्रीकृष्णके बन्धन खोलकर आश्चर्यमग्न हो उन महात्माको अपने स्तनोंका दूध पिलाने लगीं। माताने जगदीश्वर श्रीकृष्णके उदरको दाम अर्थात् रस्सीसे बाँध दिया था; अतः सभी महापुरुषोंने उनका नाम दामोदर रख दिया। वे दोनों यमलार्जुन वृक्ष भगवान्‌के पार्षद हो गये।

तब नन्द आदि वृद्ध गोप वहाँ बड़े-बड़े उत्पात होते जानकर दूसरे स्थानको चले गये। विशाल वृन्दावनमें यमुनाके मनोहर तटपर उन्होंने स्थान बनाया। वह प्रदेश गौओं और गोपियोंके लिये बड़ा ही रमणीय था। महाबली राम और श्रीकृष्ण वहीं रहकर बढ़ने लगे। अब वे बछड़ोंके चरवाहोंको साथ लेकर सदा बछड़े चराने लगे। बछड़ोंके बीचमें श्रीकृष्णको देखकर बक नामक महान् असुर वहाँ आया और बगलेका रूप धारण कर उन्हें मारनेका उद्योग करने लगा। उसे देखकर भगवान् वासुदेवने भी खिलवाड़में ही एक ढेला उठा लिया और उसके पंखोंमें दे मारा। ढेला लगते ही वह महान् असुर प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद एक दिन बछड़े चरानेवाले राम और श्रीकृष्ण वनमें किसी यज्ञवृक्षकी छायामें पल्लव बिछाकर सो गये। इसी बीचमें ब्रह्माजी देवताओंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये आये। किन्तु उन्हें सोते देख बछड़ों और ग्वाल-बालोंको चुराकर स्वर्गलोकमें चले गये। जागनेपर जब उन्होंने बछड़ों और ग्वाल-बालोंको नहीं देखा तो 'वे कहाँ चले गये?' इसका विचार किया; फिर यह जानकर कि यह सारी

करतूत ब्रह्माजीकी ही है, उन सनातन प्रभुने वैसे ही बालक और बछड़े बना लिये। वही रंग और वही रूप, कुछ भी अन्तर नहीं था। शामको जब वे लौटकर व्रजमें गये तो गौओं और माताओंने अपने-अपने बछड़ों और बालकोंको पाकर उनके साथ पूर्ववत् बर्ताव किया। इस प्रकार एक वर्षका समय व्यतीत हो गया। तब प्रजापतिने उन बछड़ों और बालकोंको पुनः ले जाकर भगवान्‌को समर्पित किया और हाथ जोड़ विनीतभावसे प्रणाम करके भयभीत होकर कहा—'नाथ ! मैंने इन बछड़ोंका अपहरण करके आपका महान् अपराध किया है। शरणागतवत्सल ! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मेरे इस अपराधको क्षमा कीजिये। यों कहकर पुनः श्रीहरिके चरणोंमें बारंबार प्रणाम किया और बछड़ोंको उन्हें सौंपकर पुनः अपने लोकमें चले गये। महातपस्वी ब्रह्माजी भगवान्‌के उस बालरूपको हृदयमें धारण करके देवताओंको साथ ले बड़ी प्रसन्नताके साथ पधारे।

इसके बाद श्रीकृष्ण बछड़ोंके साथ नन्दके गोकुलमें चले गये। इसके कुछ दिनोंके पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्ण ग्वालोंको साथ लेकर यमुनाके कुण्डमें गये। वहाँ बड़ा विषैला और बलवान् नागराज कालिय रहता था। उसके हजार फन थे; किन्तु भगवान्‌ने अपने एक ही पैरसे उसके हजारों फनोंको कुचल डाला और जब वह प्राणसङ्कटमें पड़ गया तो होशमें आनेपर उसने भगवान्‌की शरण ली। उसका सारा विष तो निकल ही गया था, शरणमें आनेपर भगवान्‌ने उसकी रक्षा की। वह गरुड़के भयसे इस कुण्डमें आकर रहता था; इसलिये भगवान्‌ने उसके मस्तकपर अपने चरणचिह्न स्थापित करके उसको कालिन्दीके कुण्डसे निकाल दिया। उसने अपने स्त्री-पुत्रोंके साथ तुरंत ही उस कुण्डको छोड़ दिया और भगवान् गोविन्दको नमस्कार करके अन्यत्रकी राह ली। उसके किनारेके जो वृक्ष कालियके विषसे दग्ध हो गये थे, वे श्रीकृष्णकी कृपादृष्टि पड़ते ही फलने-फूलने लगे।

तत्पश्चात् समयानुसार भगवान्‌ने कुमारावस्थामें पदार्पण किया। अब वे सर्वदेवमय प्रभु गौओंकी चरवाही करने लगे। वे अपने समान अवस्थावाले ग्वालोंको साथ ले मनोहर वृन्दावनमें बलरामजीके साथ विचरा करते थे। वहाँ एक अत्यन्त भयानक असुर था, जो अजगर साँपके रूपमें रहा करता था। वह विशालकाय दैत्य मेरुपर्वतके समान भारी था; परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उसको भी मौतके घाट उतार दिया। इसके बाद वे धेनुकासुरके वनमें गये, जो ताड़के वृक्षोंसे बहुत सघन प्रतीत होता था। उसके भीतर धेनुक नामक एक पर्वताकार दानव रहता था। जिसको परास्त करना बहुत ही कठिन था। वह सदा गदहेके रूपमें रहा करता था। भगवान्‌ने उसके दोनों पैर पकड़कर ऊपर फेंक दिया और एक ताड़के वृक्षसे उसको मार डाला। फिर तो वनमें वे ग्वाले खेलते फिरे। उस वनसे निकलनेपर वे तुरंत ही भाण्डीर वटके पास आ गये और बलराम तथा श्रीकृष्णके साथ बालोचित खेल खेलने लगे। उस समय प्रलम्ब नामक राक्षस गोपका रूप धारण करके वहाँ आया और बलरामजीको अपनी पीठपर चढ़ा आकाशकी ओर उड़ चला। तब बलरामजीने उसे राक्षस समझकर बड़े रोषके साथ मुक्केसे मस्तकपर मारा; उस प्रहारसे राक्षसका शरीर तिलमिला उठा और वह अपने वास्तविक रूपमें आकर बड़े भयंकर स्वरमें चीत्कार करने लगा। उसका मस्तक और शरीर फट गया और वह खूनसे लथपथ हो पृथ्वीपर गिरकर मर गया। इसके बाद एक दिन सन्ध्याकालमें अरिष्ट नामक दैत्य बैलका आकार धारण किये व्रजमें आया और श्रीकृष्णको मारनेके लिये बड़े जोर-जोरसे गर्जना करने लगा। उसे देख समस्त गोप भयसे पीडित हो इधर-उधर भाग गये। श्रीकृष्णने उस भयंकर दैत्यको आया देख एक ताड़का वृक्ष उखाड़ लिया और उसके दोनों सींगोंके बीच दे मारा। उसके सींग टूट गये और मस्तक फट गया। वह रक्त वमन करता हुआ बड़े वेगसे गिरा और जोर-जोरसे चीत्कार करके मर गया। इस तरह उस महाकाय दैत्यको मारकर भगवान्‌ने ग्वालबालोंको बुलाया और फिर सब लोग वहीं निवास करने लगे।

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद केशी नामक महान्

असुर घोड़ेका रूप धारण किये व्रजमें आया। वह भी श्रीकृष्णको मारनेके ही उद्देश्यसे चला था। गौओंके रमणीय व्रजमें पहुँचकर वह जोर-जोरसे हिनहिनाने लगा। उसकी आवाज तीनों लोकोंमें गूँज उठी। देवता भयभीत हो गये। उन्हें प्रलयकालका-सा सन्देह होने लगा। व्रजके रहनेवाले समस्त गोप अचेत हो गये। गोपियाँ भी व्याकुल हो उठीं। फिर होशमें आनेपर सब लोग चारों ओर भाग चले। गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गयीं और 'बचाओ, बचाओ' की रट लगाने लगीं। भक्तवत्सल भगवान्ने आश्वासन देते हुए कहा—'डरो मत, डरो मत।' फिर उन्होंने तुरंत ही उस दैत्यके मस्तकपर एक मुक्का जड़ दिया। मार पड़ते ही दैत्यके सारे दाँत गिर गये और आँखें बाहर निकल आयीं। वह बड़े जोर-जोरसे चिल्लाने लगा। केशी सहसा पृथ्वीपर गिरा और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। केशीको मारा गया देख आकाशमें खड़े हुए देवता साधु-साधु कहने और फूलोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार शैशवकालमें श्रीहरिने बड़े-बड़े बलाभिमानी दैत्योंका वध किया। वे बलरामजीके साथ व्रजमें सदा प्रसन्न रहा करते थे। उन दिनों वृन्दावनकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। फलों और फूलोंके कारण उसकी बड़ी शोभा होती थी। भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ मुरलीकी मधुर तान छेड़ते हुए निवास करते थे। एक समय शरत्काल आनेपर नन्द आदि गोपोंने इन्द्रकी पूजाका महान् उत्सव आरम्भ किया; किन्तु भगवान् गोविन्दने इन्द्रयज्ञके उत्सवको बंद करके गिरिराज गोवर्धनके पूजनका उत्सव कराया। इससे इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने नन्द गोपके व्रजमें लगातार सात रातोंतक बड़ी भारी वर्षा की। तब भगवान् जनार्दनने गिरिराज गोवर्धनको उखाड़ लिया और गोप, गोपियों तथा गौओंकी रक्षाके लिये उसे अनायास ही छत्रकी भाँति धारण कर लिया। पर्वतकी छायाके नीचे आकर गोप और गोपियाँ बड़े सुखसे रहने लगीं, मानो वे किसी महलके भीतर बैठी हों। यह देख सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रको बड़ा भय हुआ। उन्होंने बड़ी घबराहटके साथ उस वर्षाको बंद कराया और स्वयं वे नन्दके व्रजमें गये। वर्षा बंद होनेपर भगवान् श्रीकृष्णने उस महापर्वतको पहलेकी भाँति यथास्थान रख दिया। नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोप गोविन्दकी सराहना करते हुए बहुत विस्मित हुए। इतनेमें ही इन्द्रने आकर भगवान् मधुसूदनको प्रणाम किया और हाथ जोड़ हर्षगद्गद वाणीमें उनकी स्तुति की। स्तुतिके पश्चात् सब देवताओंके स्वामी इन्द्रने अमृतमय जलसे भगवान् गोविन्दका अभिषेक किया और दिव्य वस्त्र तथा दिव्य आभूषणोंसे उनकी पूजा की। इसके बाद वे स्वर्गलोकमें गये। उस समय बड़े-बूढ़े गोपों और गोपियोंने भी इन्द्रका दर्शन किया तथा इन्द्रसे सम्मानित होनेपर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्ण नन्दके रमणीय व्रजमें रहकर गौओं और बछड़ोंका पालन करने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णकी मथुरा-यात्रा, कंसवध और उग्रसेनका राज्याभिषेक

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर एक दिन मुनिश्रेष्ठ नारदजी मथुरामें कंसके पास गये। राजा कंसने उनका यथावत् सत्कार किया और उन्हें सुन्दर आसनपर बिठाया। नारदजीने कंससे भगवान् विष्णुकी सारी चेष्टाएँ कहीं। देवताओंका उद्योग करना, भगवान् केशवका अवतार लेना, वसुदेवका अपने पुत्रको व्रजमें रख आना, राक्षसोंका मारा जाना, नागराज कालियका यमुनाके कुण्डसे बाहर निकाला जाना, गोवर्धन धारण करना और इन्द्रका भगवान्से मिलना आदि सभी मुख्य-मुख्य घटनाओंको उन्होंने कंससे निवेदन किया। यह सब सुनकर राक्षस कंसने नारदजीका बड़ा आदर किया। उसके बाद वे ब्रह्मलोकमें चल गये। इधर कंसके मनमें बड़ा उद्वेग हुआ। वह मन्त्रियोंके साथ बैठकर मृत्युसे बचनेके विषयमें परामर्श करने लगा।

उसके मन्त्रियोंमें अक्रूर सबसे अधिक बुद्धिमान् और धर्मानुरागी थे। महाबली दानवराज कंसने अक्रूरको आज्ञा दी।

कंस बोला—यदुश्रेष्ठ ! इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता मेरे भयसे पीड़ित हो श्रीविष्णुकी शरणमें गये थे। भूतभावन भगवान् मधुसूदन उन देवताओंको अभयदान दे मुझे मारनेके लिये देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। वसुदेव भी ऐसा दुष्टात्मा है कि मुझे धोखा देकर रातमें वह अपने पुत्रको दुरात्मा नन्दके घरमें रख आया। वह बालक बचपनसे ही ऐसा दुर्धर्ष है कि बड़े-बड़े असुर उसके हाथसे मारे गये। यदि ऐसी ही उसकी प्रगति रही तो एक दिन वह मुझे भी मारनेके लिये तैयार हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि व्रजमें उसे इन्द्र आदि देवता तथा समस्त असुर भी नहीं मार सकते; अतः मुझे उसको यहाँ बुलवाकर किसी विशेष उपायसे ही मारना चाहिये। मतवाले हाथी, बड़े-बड़े पहलवान तथा श्रेष्ठ घोड़े आदिसे उसका वध कराना चाहिये। जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, उसे यहीं बुलाकर मारा जा सकता है, अन्यत्र नहीं। इसलिये तुम गौओंके व्रजमें जाकर बलराम, श्रीकृष्ण तथा नन्द आदि सम्पूर्ण ग्वालोंको धनुष-यज्ञका मेला देखनेके बहाने यहाँ बुला ले आओ।'

'बहुत अच्छा' कहकर परम पराक्रमी यदुश्रेष्ठ अक्रूर रथपर आरूढ़ हुए और भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक होकर गौओंके रमणीय व्रजमें गये। अक्रूरजी महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने अत्यन्त विनीत भावसे गौओंके बीचमें खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन किया। गोप-कन्याओंसे घिरे हुए श्रीहरिको देखकर अक्रूरजीका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। उन्होंने रथसे उतरकर श्रीकृष्णको प्रणाम किया। वे बड़े हर्षके साथ भगवान् गोपालके समीप गये और वज्र तथा चक्र आदि चिह्नोंसे सुशोभित लाल कमलसदृश उनके मनोहर चरणोंमें मस्तक रखकर उन्होंने बारंबार नमस्कार किया। तत्पश्चात् उनकी दृष्टि कैलासशिखरके समान गौरवर्णवाले नीलाम्बरधारी बलरामजीपर पड़ी, जो मोतियोंकी मालासे विभूषित होकर शरत्कालके पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। अक्रूरजीने उनको भी प्रणाम किया। दोनों वीर बलराम और श्रीकृष्णने भी बड़े हर्षके साथ उठकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरका पूजन किया और उनको साथ लेकर वे दोनों भाई घरपर आये। यदुश्रेष्ठ अक्रूरको आया देख महातेजस्वी नन्दगोपने निकट जाकर उन्हें श्रेष्ठ आसनपर बिठाया और बड़ी प्रसन्नताके साथ विधिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, वस्त्र तथा दिव्य आभूषण आदि निवेदन करके भक्तिभावसे उनका पूजन किया। अक्रूरजीने भी बलराम, श्रीकृष्ण, नन्दजी तथा यशोदाको वस्त्र और आभूषण भेंट किये। फिर कुशल पूछकर शान्तभावसे वे कुशके आसनपर विराजमान हुए। तत्पश्चात् राजकार्यके विषयमें प्रश्न होनेपर बुद्धिमान् अक्रूरने इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

अक्रूर बोले—नन्दरायजी ! ये महातेजस्वी श्रीकृष्ण साक्षात् अविनाशी भगवान् नारायण हैं। देवताओंका हित, साधु पुरुषोंकी रक्षा, पृथ्वीके भारका नाश, धर्मकी स्थापना तथा कंस आदि सम्पूर्ण दैत्योंका नाश करनेके लिये इनका अवतार हुआ है। उक्त कार्योंके लिये समस्त देवताओं तथा महात्मा मुनियोंने इनसे प्रार्थना की थी। उसीके अनुसार ये वर्षाकालमें आधी रातके समय देवकीके गर्भसे प्रकट हुए। उस समय वसुदेवजीने कंसके भयसे रातमें ही अपने पुत्र भगवान् श्रीहरिको तुम्हारे घरमें पहुँचा दिया। उसी समय यशस्विनी यशोदाको भी मायाके अंशसे एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई थी। उसीने सम्पूर्ण व्रजको नींदमें बेसुध कर दिया था। यशोदाजी भी मूर्छितावस्थामें पड़ी थीं। वसुदेवजीने श्रीकृष्णको तो यशोदाकी शय्यापर सुला दिया और स्वयं उस कन्याको लेकर वे मथुराकी ओर चल दिये। कन्याको देवकीकी शय्यापर रखकर ये प्रसवघरसे बाहर निकल गये। देवकीकी शय्यापर सोयी हुई कन्या शीघ्र ही रोने लगी। उसका जन्म सुनकर दानव कंस सहसा आ पहुँचा और उसने कन्याको लेकर घुमाते हुए पत्थरपर पटक दिया। परन्तु वह कन्या

आकाशमें उड़ गयी और आठ भुजाओंसे युक्त हो गम्भीर वाणीमें कंससे रोषपूर्वक बोली—'ओ नीच दानव! जिनका कहीं अन्त नहीं है, जो सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर और पुरुषोत्तम हैं, वे तुम्हारा वध करनेके लिये व्रजमें जन्म ले चुके हैं।' यों कहकर महामाया हिमालय पर्वतपर चली गयी। तभीसे वह दुष्टात्मा भयसे उद्विग्न हो गया और महात्मा श्रीकृष्णको मारनेके लिये एक-एक करके दानवोंको भेजने लगा। बालक होनेपर भी बुद्धिमान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही सब दानवोंको मौतके घाट उतार दिया है। इन परमेश्वरने अनेक अद्भुत कर्म किये हैं। गोवर्धन-धारण, नागराज कालियका निर्वासन, इन्द्रसे समागम और सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार आदि सारे कर्म श्रीकृष्णके ही किये हुए हैं; यह बात नारदजीके मुँहसे सुनकर कंस अत्यन्त भयसे व्याकुल हो उठा है। महाबाहु बलराम और श्रीकृष्ण बड़े दुर्धर्ष वीर हैं; इसलिये इन दोनोंको वहीं बुलाकर वह बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवा डालना चाहता है अथवा पहलवानोंको भिड़ाकर इन्हें मार डालनेको उद्यत है। श्रीकृष्णको बुला लानेके लिये ही उसने मुझे यहाँ भेजा है। यही सब उस दुष्ट दानवकी चेष्टा है, जिसे मैंने बता दिया। अब आप समस्त व्रजवासी दही-घी आदि लेकर कल सबेरे धनुषयज्ञका उत्सव देखनेके लिये मथुरामें चलें। बलराम-श्रीकृष्ण और समस्त गोपोंको राजाके पास चलना है। वहाँ निश्चय ही कंस श्रीकृष्णके हाथसे मारा जायगा; अतः आपलोग राजाकी आज्ञासे निर्भय होकर वहाँ चलिये।

इतना कहकर बुद्धिमान् अक्रूर चुप हो गये। उनकी बातें बड़ी ही भयङ्कर और रोंगटे खड़े कर देनेवाली थीं। उन्हें सुनकर नन्द आदि समस्त बड़े-बूढ़े गोप भयसे व्याकुल हो दुःखके महान् समुद्रमें डूब गये। उस समय कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने उन सबको आश्वासन देकर कहा—'आपलोग भय न करें। मैं दुरात्मा कंसका विनाश करनेके लिये भैया बलरामजी तथा आपलोगोंके साथ मथुरा चलूँगा। वहाँ दानवराज दुरात्मा कंसको और उसके साथ रहनेवाले समस्त राक्षसोंको मारकर इस पृथ्वीकी रक्षा करूँगा। अतः आपलोग शोक छोड़कर मथुरापुरीको चलिये।' श्रीहरिके ऐसा कहनेपर नन्द आदि गोपोंने बारंबार छातीसे लगाकर उनका मस्तक सूँघा। उन महात्माके अलौकिक कर्मोंपर विचार करके तथा अक्रूरजीकी बातोंको सुनकर उन सबकी चिन्ता दूर हो गयी। तत्पश्चात् यशोदाने अक्रूरको दही, दूध, घी आदिसे युक्त भाँति-भाँतिके पवित्र, स्वादिष्ट, मधुर और रुचिकर पक्वान्न परोसकर भोजन कराया। उनके साथ बलराम, श्रीकृष्ण, नन्द आदि श्रेष्ठ गोप, अनेकों सुहृद्, बालक और वृद्ध भी थे। यशोदाजीके दिये हुए रुचिवर्धक उत्तम अन्नको यादवश्रेष्ठ अक्रूरजीने बड़े प्रेमसे खाया। भोजन करानेके पश्चात् नन्दरानीने जल देकर आचमन कराया और अन्तमें कपूरसहित पानका बीड़ा दिया। फिर सूर्यास्त होनेपर अक्रूरजीने सन्ध्योपासना की। उसके बाद बलराम और श्रीकृष्णके साथ खीर खाकर वे उन्हींके साथ शयन करनेके लिये गये। दीपकके प्रकाशसे सुशोभित श्रेष्ठ एवं रमणीय भवनमें विचित्र पलंग बिछा था। स्वच्छ सुन्दर बिछावनपर भाँति-भाँतिके फूल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उस पलंगपर भगवान् श्रीकृष्ण सोते थे, मानो शेषनागकी शय्यापर श्रीनारायण शयन करते हों।

भगवान्‌को शयन करते देख सहसा अक्रूरके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक पड़े। उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा। उन्होंने तमोगुणी निद्राको त्याग दिया। वे भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ तो थे ही, अपने परम कल्याणका विचार करके भगवान्‌के चरण दबाने लगे। उस समय वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'इसीमें मेरे जीवनकी सफलता है। यही जीवन वास्तवमें उत्तम जीवन है। यही धर्म तथा यही सर्वश्रेष्ठ मोक्षसुख है। शिव और ब्रह्मा आदि देवता, सनकादि मुनीश्वर तथा वसिष्ठ आदि महर्षि जिनका दर्शन करना तो दूर रहा, मनसे स्मरण भी नहीं कर पाते, वे ही भगवान् लक्ष्मीपतिके दोनों चरण इस समय मुझे प्राप्त हुए हैं। अहो! मेरा कितना सौभाग्य है? ये दोनों चरण शरत्कालके खिले हुए कमलकी भाँति सुन्दर हैं। भगवती लक्ष्मी अपने कोमल एवं

चिकने हाथोंसे इनकी सेवा करती हैं। ये चरण परम उत्तम सुखस्वरूप हैं।' इस प्रकार भगवान्‌की सेवामें लगे हुए अक्रूरजीकी वह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। उस समय वे ब्रह्मानन्दका अनुभव कर रहे थे। तदनन्तर निर्मल प्रभात होनेपर देवगण आकाशमें खड़े हो भगवान्‌की स्तुति करने लगे। तब भगवान् शयनसे उठे। उठकर विधिपूर्वक आचमन किया। फिर परम बुद्धिमान् बलरामजीके साथ जाकर माताके चरणोंमें नमस्कार किया और मथुरा जानेकी इच्छा प्रकट की। यशोदाजी दुःख और हर्षमें डूबी हुई थीं। उन्होंने दोनों पुत्रोंको उठाकर बड़े प्रेमके साथ छातीसे लगा लिया। उस समय उनके आँसुओंकी धारा बह रही थी। उन्होंने दोनों महावीर पुत्रोंको आशीर्वाद दिया और बार-बार हृदयसे लगाकर विदा किया। अक्रूरने भी हाथ जोड़कर यशोदाजीके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! अब मैं जाऊँगा। मुझपर कृपा करो। ये महाबाहु श्रीकृष्ण महाबली कंसको मारकर सम्पूर्ण जगत्‌के राजा होंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः देवि! तुम शोक छोड़कर सुखी होओ।'

ऐसा कहकर अक्रूरजी नन्दरानीसे विदा ले बलराम और श्रीकृष्णके साथ उत्तम रथपर आरूढ़ हुए और तीव्र गतिसे मथुराकी ओर चले। उनके पीछे नन्द आदि बड़े-बूढ़े गोप भाँति-भाँतिके फल तथा बहुत-से दही-घी आदि लेकर गये। श्रीहरिको रथपर बैठकर व्रजसे जाते देख समस्त गोपाङ्गनाएँ भी उनके पीछे-पीछे चलीं। उनका हृदय शोकसे सन्तप्त हो रहा था। वे 'हा कृष्ण! हा कृष्ण! हा गोविन्द!' कहकर बारंबार रोती और विलाप करती थीं। श्रीहरिने उन सबको समझा-बुझाकर लौटाया। उनके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे दीन भावसे रोती हुए खड़ी रहीं। इसके बाद अक्रूरजीने अपने दिव्य रथको व्रजसे मथुराकी ओर बढ़ाया। शीघ्र ही यमुनाके पार होकर उन्होंने रथको किनारे खड़ा कर दिया और स्वयं उससे उतरकर वे स्नान तथा अन्य आवश्यक कृत्य करनेकी तैयारी करने लगे। भक्तप्रवर अक्रूरने यमुनाके उत्तम जलमें जाकर डुबकी लगायी और अघमर्षण मन्त्रका जप आरम्भ किया। उस समय उन्हें श्रीबलराम तथा श्रीकृष्ण दोनों ही जलके भीतर दिखायी दिये। उन्हें देखकर अक्रूरजीको बड़ा विस्मय हुआ। तब उन्होंने उठकर रथकी ओर देखा; किन्तु वहाँ भी वे दोनों महाबली वीर बैठे दृष्टिगोचर हुए। तब पुनः जलमें डुबकी लगाकर वे युगल-मन्त्रका जप करने लगे। उस समय उन्हें क्षीरसागरमें शेषनागकी शय्यापर बैठे हुए लक्ष्मीसहित श्रीहरिका दर्शन हुआ। सनकादि मुनि उनकी स्तुति कर रहे थे और सम्पूर्ण देवता सेवामें खड़े थे। इस प्रकार सर्वव्यापी ईश्वरको देखकर यदुश्रेष्ठ अक्रूरने उनका स्तवन किया। स्तुति करनेके पश्चात् सुगन्धित कमल-पुष्पोंसे भगवान्‌का पूजन किया और अपनेको कृतकृत्य मानते हुए वे यमुनाजलसे बलराम और श्रीकृष्णके समीप आये। वहाँ आकर अक्रूरजीने उन दोनों भाइयोंको भी प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें आश्चर्यमग्न और विनीतभावसे खड़ा देख—पूछा—'कहिये अक्रूरजी! आपने जलमें कौन-सी आश्चर्यकी बात देखी है?' यह सुनकर अक्रूरजीने महातेजस्वी श्रीकृष्णसे कहा—'प्रभो! आप सर्वत्र व्यापक हैं! आपकी महिमासे क्या आश्चर्यकी बात हो सकती है। हृषीकेश! यह सम्पूर्ण जगत् आपहीका तो स्वरूप है।' इस प्रकार स्तुति करके जगदीश्वर गोविन्दको प्रणाम कर अक्रूरजी उन दोनों भाइयोंके साथ पुनः दिव्य रथपर आरूढ़ हो तुरंत ही देवनिर्मित मथुरापुरीमें जा पहुँचे। वहाँ नगरद्वारपर बलराम और श्रीकृष्णको बिठाकर वे अन्तःपुरमें गये और राजा कंससे उनके आगमनका समाचार सुनाकर उसके द्वारा सम्मानित हो पुनः अपने घरको चले गये।

तदनन्तर सन्ध्याके समय महाबली बलराम और श्रीकृष्ण एक-दूसरेका हाथ पकड़े मथुरापुरीके भीतर गये। वे दोनों राजमार्गसे जा रहे थे। इतनेहीमें उनकी दृष्टि कपड़ा रँगनेवाले एक रँगरेजपर पड़ी, जो दिव्य वस्त्र लिये राजभवनकी ओर जा रहा था। बलरामसहित परम पराक्रमी श्रीकृष्णने उन वस्त्रोंको अपने लिये माँगा; किन्तु रँगरेजने वे वस्त्र उन्हें नहीं दिये। इतना ही नहीं, उसने

सड़कपर खड़े होकर उन्हें बहुत-से कटुवचन भी सुनाये। तब महाबली श्रीकृष्णने रँगरेजके मुँहपर एक तमाचा जड़ दिया। फिर तो वह मुँहसे रक्त वमन करता हुआ मार्गमें ही मर गया। बलराम और श्रीकृष्णने अपने बन्धु-बान्धव ग्वाल-बालोंके साथ उन सुन्दर वस्त्रोंको यथायोग्य धारण किया। फिर वे मालीके घरपर गये। उसने उन्हें देखते ही नमस्कार किया और दिव्य सुगन्धित पुष्पोंसे प्रसन्नतापूर्वक उनकी पूजा की। तब उन दोनों यादव-वीरोंने मालीको मनोवाञ्छित वरदान दिया। अब वे गलीकी राहसे घूमने लगे। सामनेसे एक सुन्दर मुखवाली युवती आती दिखायी दी, जो हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए थी। वह स्त्री कुब्जा थी। उन दोनों भाइयोंने उससे चन्दन माँगा। कुब्जाने मुसकराते हुए उन्हें उत्तम चन्दन प्रदान किया। चन्दन लेकर उन्होंने इच्छानुसार अपने शरीरमें लगाया और कुब्जाको परम मनोहर रूप देकर वे आगेके मार्गपर बढ़ गये। नगरकी स्त्रियाँ सुन्दर मुखवाले उन दोनों सुन्दर कुमारोंको प्रेमपूर्वक निहारती थीं। इस प्रकार वे अपने अनुयायियोंसहित यज्ञशालामें पहुँचे। वहाँ दिव्य धनुष रखा था। उसकी पूजा की गयी थी। भगवान् मधुसूदनने देखते ही उस धनुषको उठा लिया और खेल-खेलमें ही उसे तोड़ डाला। धनुष टूटनेकी आवाज सुनकर कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा और उसने चाणूर आदि मुख्य-मुख्य मल्लोंको बुलाकर मन्त्रियोंकी सलाह ले चाणूरसे कहा—'देखो, सब दैत्योंका विनाश करनेवाले बलराम और श्रीकृष्ण आ पहुँचे हैं। कल सबेरे मल्लयुद्ध करके इन दोनोंको बेखटके मार डालो। इन दोनोंको अपने बलपर बड़ा घमण्ड है। मतवाले हाथियोंको भिड़ाकर अथवा बड़े-बड़े पहलवानोंको लगाकर जिस किसी उपायसे भी हो सके इन दोनोंको यत्नपूर्वक मार डालना चाहिये।'

इस प्रकार आदेश देकर राजा कंस भाई और मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही सुन्दर राजभवनकी छतपर चढ़ गया। नीचे रहनेमें उसे भय लग रहा था। सम्पूर्ण दरवाजों और मार्गोंपर उसने मतवाले हाथियोंको नियुक्त कर दिया और सब ओर बड़े-बड़े बलोन्मत्त पहलवान बिठा दिये। यह सब कुछ जानते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण परम बुद्धिमान् बलरामजी तथा अपने अनुयायी ग्वाल-बालोंके साथ रातभर उस यज्ञशालामें ही ठहरे रहे। रात बीतनेपर जब निर्मल प्रभात आया तो बलराम और श्रीकृष्ण दोनों वीर शय्यासे उठकर स्नान आदिसे निवृत्त हुए। फिर भोजन करके वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो युद्धके लिये उत्सुक होकर वे उस यज्ञशालासे चले; मानो दो सिंह किसी बड़ी गुफासे बाहर निकले हों। राजमहलके दरवाजेपर कुवलयापीड़ हाथी खड़ा था, जो हिमालय पर्वतके शिखर-सा जान पड़ता था। वही कंसकी विजयाभिलाषाको बढ़ानेवाला था। उसने ऐरावतके भी दाँत खट्टे कर दिये थे। उस महाकाय और मतवाले गजराजको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण सिंहकी भाँति उछल पड़े और अपने हाथसे उसकी सूँड पकड़कर वे लीलापूर्वक उसे घुमाने लगे। घुमाते-घुमाते ही भगवान् धरणीधरने उसे धरतीपर पटक दिया। हाथीका सारा अङ्ग चूर-चूर हो गया और वह डरावनी आवाजमें चिग्घाड़ता हुआ मर गया। इस प्रकार हाथीको मारकर बलराम और श्रीकृष्णने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये और पहलवानोंसे युद्ध करनेके लिये वे रंगभूमिमें पहुँचे। वहाँ जितने दानव थे, वे सब गोविन्दका पराक्रम देख भयभीत हो भाग खड़े हुए। तब कंसके भवनमें प्रवेश करके वे महाबली वीर युद्धके लिये उत्कण्ठित हो हाथीके दाँत घुमाने लगे। वहाँ उन महात्माओंने कंसके दो मल्ल चाणूर और मुष्टिकको उपस्थित देखा। कंस भी महाबली बलराम और गोविन्दको देखकर भयभीत हो उठा तथा अपने प्रधान मल्ल चाणूरसे बोला—'वीर! इस समय तुम इन ग्वाल-बालोंको अवश्य मार डालो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य बाँटकर दे दूँगा।'

उस समय उन दोनों मल्लोंको भगवान् श्रीकृष्ण अभेद्य कवचसे युक्त और दूसरे मेरुपर्वतके समान विशालकाय दिखायी दिये। कंसकी दृष्टिमें प्रलयकालीन अग्नि-से जान पड़े। स्त्रियोंको साक्षात् कामदेव प्रतीत हुए। माता-पिताने उन्हें नन्हें शिशुके रूपमें ही देखा।

देवताओंकी दृष्टिमें वे साक्षात् श्रीहरि थे और ग्वाल-बाल उन्हें अपना प्यारा सखा ही समझते थे। इस प्रकार उन सर्वव्यापक भगवान् विष्णुको वहाँके लोगोंने अपने-अपने भावोंके अनुसार अनेक रूपोंमें देखा। वसुदेव, अक्रूर और परम बुद्धिमान् नन्द दूसरे कोठेपर चढ़कर वहाँका महान् युद्ध देख रहे थे। देवकी अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ बैठकर बेटेका मुँह निहार रही थीं। उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे।

स्त्रियोंने उन्हें बहुत समझाया और आश्वासन दिया। तब वे किसी दूसरे भवनमें चली गयीं। तदनन्तर विमान-पर बैठे हुए देवता आकाशमें जय-जयकार करते हुए कमलनयन भगवान् अच्युतकी स्तुति करने लगे। वे जोर-जोरसे कहते थे—'भगवन्! कंसका वध कीजिये।'

इसी समय रंगभूमिमें तुरही आदि बाजे बज उठे। कंसके दोनों महामल्लों और महाबली श्रीकृष्ण एवं बलराममें भिड़ंत हो गयी। चाणूरके साथ भगवान् श्रीकृष्ण और मुष्टिकके साथ बलरामजी भिड़ गये। नीलगिरि तथा श्वेतगिरिके समान कान्तिवाले दोनों महात्मा मल्लयुद्धकी रीति-नीतिके अनुसार लड़ने लगे। वे एक दूसरेको कभी मुक्कोंसे मारते और कभी ताल ठोंकते थे। उनमें बड़ा भयंकर संग्राम हुआ, जो देवताओंको भी भयभीत कर देनेवाला था। भगवान् श्रीकृष्णने चाणूरके साथ बहुत देरतक खेल करके उसके शरीरको रगड़ डाला और फिर लीलापूर्वक पृथ्वीपर दे मारा। देवताओं और दानवोंको भी दुःख देनेवाला वह महामल्ल बहुत रक्त वमन करते हुए पृथ्वीपर गिरा और मर गया। इसी प्रकार पराक्रमी बलरामजी भी मुष्टिकके साथ देरतक लड़ते रहे। अन्तमें उन्होंने उसकी छातीमें कई मुक्के जड़ दिये। इससे उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं और स्नायु-बन्धन टूट गया। फिर तो वह भी प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उन दोनों भाइयोंका यह पराक्रम देख बाकी सारे पहलवान भाग गये। यह देखकर कंसको बड़ा भय हुआ। वह वेदनासे व्याकुल हो उठा। इसी बीचमें दुर्धर्ष वीर बलराम और श्रीकृष्ण कंसके ऊँचे महलपर चढ़ गये। फिर भगवान् श्रीकृष्णने कंसके मस्तकमें थप्पड़ मारकर उसे छतसे नीचे गिरा दिया। पृथ्वीपर गिरते ही उसका सारा अङ्ग छिन्न-भिन्न हो गया और वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा। फिर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा कंसका और्ध्वदैहिक संस्कार कराया। श्रीकृष्णके द्वारा कंसके मारे जानेपर महाबली बलरामजीने भी कंसके छोटे भाई सुनामाको मुक्केसे ही मार डाला और उसे उठाकर धरतीपर फेंक दिया।

इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामजी भाईसहित दुरात्मा कंसको मारकर अपने माता-पिताके समीप आये और बड़ी भक्तिके साथ उन्होंने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। देवकी और वसुदेवने बड़े प्रेमसे उन दोनोंको बारंबार छातीसे लगाया और पुत्र-स्नेहसे द्रवित हो उनका मस्तक सूँघा। देवकीके दोनों स्तनोंसे उनके ऊपर दूधकी वृष्टि होने लगी। तत्पश्चात् बलराम और श्रीकृष्ण माता-पिताको आश्वासन दे बाहर आये। इसी समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। देवेश्वरगण फूलोंकी वर्षा करने लगे। तथा मरुद्गणोंके साथ श्रीजनार्दनको नमस्कार और उनकी स्तुति करके हर्षमग्न हो अपने-अपने लोकको चले गये। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ जाकर नन्दरायजी तथा अन्य बड़े-बूढ़े गोपोंको नमस्कार किया। धर्मात्मा नन्दने बड़े स्नेहसे उन दोनोंको गले लगा लिया। फिर भगवान् जनार्दनने उन सबको बहुत-से रत्न और धन भेंट किये। नाना प्रकारके वस्त्र, आभूषण तथा प्रचुर धन-धान्य देकर उन सबका पूजन किया। इस प्रकार श्रीकृष्णके विदा करनेपर नन्द आदि गोप हर्ष और शोकमें डूबे हुए वहाँसे व्रजमें लौट गये। इसके बाद बलराम और श्रीकृष्णने अपने नाना उग्रसेनजीके पास जाकर उन्हें बन्धनसे मुक्त किया और बारंबार सान्त्वना दे मथुराके राज्यपर उनका अभिषेक कर दिया। अक्रूर आदि जितने श्रेष्ठ यदुवंशी थे, उन सबको राज्यमें विशेष पदपर स्थापित किया और उग्रसेनको राजा बनाकर परम धर्मात्मा भगवान् वासुदेव धर्मपूर्वक इस पृथ्वीका पालन करने लगे।

★

जरासन्धकी पराजय, द्वारका-दुर्गकी रचना, कालयवनका वध और मुचुकुन्दकी मुक्ति

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! तदनन्तर वसुदेवजीने अपने दोनों पुत्रोंका वेदोक्त विधिसे उपनयन संस्कार किया। उसमें गर्गजीने आचार्यका काम किया था। विष्णुभक्त विद्वानोंने नहलाने आदिके द्वारा महाबली बलराम और श्रीकृष्णका संस्कारकार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् उन दोनों भाइयोंने गुरुवर सान्दीपनिके घर जाकर उन महात्माको नमस्कार किया और उनसे वेद-शास्त्रोंका अध्ययन करके गुरुदक्षिणाके रूपमें उनके मरे हुए पुत्रको लाकर दिया। इसके बाद उन महात्मा गुरुसे आशीर्वाद ले उन्हें प्रणाम करके दोनों भाई मथुरापुरीमें चले आये। इधर श्रीकृष्णके द्वारा दुर्धर्ष वीर कंसके मारे जानेका समाचार सुनकर उसके श्वशुर महाबली जरासन्धने श्रीकृष्णको मारनेके लिये अनेक अक्षौहिणी सेनाओंके साथ आकर मथुरापुरीको घेर लिया। महापराक्रमी बलराम और श्रीकृष्णने नगरसे बाहर निकलकर हाथी-घोड़ोंसे भरी हुई उस विशाल सेनाको देखा। तब भगवान् वासुदेवने अपने पूर्वकालीन सनातन सारथिका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही सारथि दारुक सुग्रीवपुष्पक नामक महान् रथ लिये आ पहुँचा। उसमें दिव्य एवं सनातन अश्व जुते हुए थे। उस रथमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि दिव्य अस्त्र-शस्त्र मौजूद थे। ध्वजाके ऊपर गरुड़चिह्नसे चिह्नित एवं फहराती हुई पताका उस देवदुर्जय रथकी शोभा बढ़ा रही थी। श्रीहरिके सारथिने भूतलपर आकर भगवान् गोविन्दको प्रणाम किया और आयुधों तथा अश्वोंसहित वह सुन्दर रथ सेवामें समर्पित कर दिया। भगवान् श्रीकृष्ण बड़े हर्षके साथ उस महान् रथके समीप आये और अपने बड़े भाई बलरामजीके साथ उसपर सवार हुए। उस समय मरुद्गण उनकी स्तुति कर रहे थे। भगवान्ने चतुर्भुजरूप धारण करके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और तलवार ले ली और मस्तकपर किरीट धारण किया। दोनों कानोंमें कुण्डल तथा गलेमें वनमाला धारण करके वे संग्रामकी ओर प्रस्थित हुए।* परम पराक्रमी बलदेवजीने भी मूसल और हल हाथमें ले द्वितीय रुद्रकी भाँति जरासन्धकी सेनाका संहार आरम्भ किया। दारुकने बड़ी शीघ्रताके साथ रथको रणभूमिकी ओर बढ़ाया। मानो तृण, गुल्म और लताओंसे आच्छादित वनमें वायु प्रज्वलित अग्निको बढ़ा रही हो।

उस समय जरासन्धके सैनिकोंने गदा, परिघ, शक्ति और मुद्गरोंके द्वारा उस रथको आच्छादित कर दिया, किन्तु बहुत-से तिनकों और सूखे काठोंको जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि अपनी लपटोंसे शीघ्र ही भस्म कर डालती है, उसी प्रकार श्रीहरिने अपने चक्रसे उन सभी अस्त्र-शस्त्रोंको लीलापूर्वक काट डाला। तत्पश्चात् उन्होंने शार्ङ्ग धनुष हाथमें लिया और उससे छूटे हुए अक्षय एवं तीखे बाणोंके द्वारा सारी सेनाका संहार कर डाला। इसमें उनको कुछ भी आयास नहीं जान पड़ा। इस प्रकार क्षणभरमें ही शत्रुकी सारी सेनाका विनाश करके यदुश्रेष्ठ भगवान् मधुसूदनने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया, जिसकी आवाज प्रलयकालीन वज्रकी भीषण गर्जनाको भी मात करती थी। शङ्खनाद सुनते ही शत्रुपक्षके महाबली योद्धाओंके हृदय विदीर्ण हो गये। वे घोड़े-हाथियोंके साथ ही गिरकर प्राणोंसे हाथ धो बैठे। इस प्रकार रथ, हाथी और घोड़ेसहित सम्पूर्ण सेनाका केवल भगवान् श्रीकृष्णने ही सफाया कर डाला। अब उस सेनामें कोई वीर जीवित न बचा। तब सम्पूर्ण देवता प्रसन्नचित्त होकर भगवान्के ऊपर फूल बरसाने और उन्हें साधुवाद देने लगे। इस प्रकार पृथ्वीका सारा भार उतारकर देवताओंके मुँहसे स्तुति सुनते हुए भगवान् धरणीधरकी उस युद्धके मुहानेपर बड़ी शोभा हुई। अपनी सेनाको मारी गयी देख खोटी बुद्धिवाला पराक्रमी वीर जरासन्ध तुरंत ही बलरामजीके साथ लोहा लेनेके लिये आया। वे दोनों ही वीर युद्धसे पीछे हटनेवाले नहीं थे। उनमें बड़ा भयङ्कर संग्राम हुआ। बलरामजीने हल

---

* चतुर्भुजवपुर्भूत्वा शङ्खचक्रगदासिभृत्। किरीटी कुण्डली स्रग्वी सङ्ग्रामाभिमुखं ययौ॥ (२७३। १४)

उठाकर उससे जरासन्धके सारथिसहित रथको चौपट कर डाला और महाबली जरासन्धको भी पकड़कर वे मूसल उठा उसे मार डालनेको तैयार हो गये। जैसे सिंह महान् गजराजको दबोच ले, उसी प्रकार बलरामजीने नृपश्रेष्ठ जरासन्धको प्राणसंकटकी अवस्थामें डाल दिया। यह देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—'भैया! इसका वध न कीजिये।' इस प्रकार महामति धर्मात्मा श्रीकृष्णने जरासन्धको छुड़वा दिया। श्रीकृष्णके कहनेसे अविनाशी वीर संकर्षणने शत्रुको छोड़ दिया। इसके बाद वे दोनों भाई रथपर बैठकर मथुरापुरीमें लौट आये।

उधर जरासन्ध महापराक्रमी कालयवनके यहाँ गया। कालयवनके पास बहुत बड़ी सेना थी। वहाँ पहुँचकर उसने वसुदेवके दोनों पुत्रोंके पराक्रमका वर्णन किया। दानवोंका वध, कंसका मारा जाना, अनेक अक्षौहिणी सेनाका संहार तथा अपनी पराजय आदि श्रीकृष्णके सारे चरित्रोंका हाल कह सुनाया। यह सब सुनकर कालयवनको बड़ा क्रोध हुआ और उसने महान् बली एवं पराक्रमी म्लेच्छोंकी बड़ी भारी सेनाके साथ मथुरापर आक्रमण किया। मगधराजके महाबली सैनिक भी उसकी सहायताके लिये आये थे। जरासन्धको साथ लेकर महान् अभिमानी कालयवन बड़ी तेजीके साथ चला। उसकी विशाल सेनासे अनेक जनपदोंकी भूमि आच्छादित हो गयी थी। उस बलवान् वीरने मथुराको चारों ओरसे घेरकर अपनी महासेनाका पड़ाव डाल दिया। उस समय भगवान् श्रीकृष्णने पुरवासियोंके कुशलक्षेमका विचार करके सबके रहनेके लिये समुद्रसे भूमि माँगी। समुद्रने उन्हें तीस योजन विस्तृत भूमि दे दी। तब श्रीकृष्णने वहीं द्वारका नामकी सुन्दर पुरी बनवायी, जो अपनी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीपुरीको मात करती थी। भगवान् जनार्दनने मथुरामें सोये हुए पुरवासियोंको उसी अवस्थामें उठाकर रातभरमें ही द्वारका पहुँचा दिया। सबेरे जागनेपर उन्होंने स्त्री-पुत्रोंसहित अपनेको सोनेके महलोंमें बैठा पाया। इससे उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। प्रचुर धन-धान्य और दिव्य वस्त्र-आभूषणोंसे भरे हुए सुन्दर गृह, जहाँ भयका नाम भी नहीं था, पाकर सम्पूर्ण यादव बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ रहने लगे। जैसे स्वर्गमें देवता सुखी रहते हैं, उसी प्रकार द्वारकापुरीमें वहाँके सभी निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे। मथुरावासियोंको द्वारकामें पहुँचानेके बाद महाबली बलराम और श्रीकृष्ण कालयवनसे युद्ध करनेके लिये मथुरासे बाहर निकले। एक ओर महारथी बलरामजीने हल और मूसल लेकर बड़े रोषके साथ यवनोंकी विशाल सेनाका संहार आरम्भ किया तथा दूसरी ओर देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने शार्ङ्गधनुष लेकर उससे छूटे हुए अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी बाणोंद्वारा म्लेच्छोंकी सम्पूर्ण विशाल वाहिनीको भस्म कर डाला। महाबली कालयवनने अपनी सेनाको मारी गयी देख भगवान् वासुदेवके साथ गदायुद्ध आरम्भ किया। भगवान् श्रीकृष्ण भी बहुत देरतक यवनोंका संहार करके युद्धसे विमुख होकर भागे। कालयवनने 'ठहरो-ठहरो' की पुकार लगाते हुए बड़े वेगसे उनका पीछा किया। परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र ही एक पर्वतकी कन्दरामें घुस गये। वहाँ महामुनि राजा मुचुकुन्द सोये थे। भगवान् श्रीकृष्ण, जहाँ कालयवनकी दृष्टि न पड़ सके, ऐसे स्थानमें खड़े हो गये। कालयवन भी महान् धीर-वीर था। वह हाथमें गदा लिये श्रीकृष्णको मारनेके लिये उस कन्दरामें घुसा। उसमें सोये हुए महामुनि राजा मुचुकुन्दको श्रीकृष्ण समझकर उसने लात मारी। इससे उनकी नींद खुल गयी और उन्होंने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके हुंकार किया। उनके हुंकार शब्दसे तथा उनकी रोषभरी दृष्टि पड़नेसे कालयवन प्राणहीन हो जलकर भस्म हो गया। तत्पश्चात् राजर्षि मुचुकुन्दने अपने सामने खड़े हुए भगवान् श्रीकृष्णको देखा। अमित तेजस्वी भगवान्पर दृष्टि पड़ते ही वे सहसा उठकर खड़े हो गये और बोले—'मेरा अहोभाग्य, अहोभाग्य, जो प्रभुका दर्शन मिला।' इतना कहते-कहते उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उन्होंने जय-जयकार करके भगवान्को बारंबार प्रणाम किया और स्तवन करते हुए कहा—'परमेश्वर! आपके दर्शनसे मैं धन्य और

कृतकृत्य हो गया। आज मेरा जन्म और जीवन—दोनों सफल हो गये!' इस प्रकार स्तुति करके उन्होंने गोविन्दको पुनः बारंबार प्रणाम किया। इससे सन्तुष्ट होकर भगवान्ने महामुनि मुचुकुन्दसे कहा, 'राजर्षे! तुम मनोवाञ्छित वर माँगो' तब मुचुकुन्दने भगवान्से पुनरावृत्तिरहित मोक्षके लिये प्रार्थना की। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें अपना सनातन दिव्यलोक प्रदान किया। परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्दने मानवरूपका परित्याग करके परमात्मा श्रीहरिके समान रूप धारण कर लिया और गरुड़पर आरूढ़ हो वे सनातन धाममें चले गये।

★

सुधर्मा-सभाकी प्राप्ति, रुक्मिणी-हरण तथा रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! बुद्धिमान् मुचुकुन्दके द्वारा कालयवनका वध करानेके पश्चात् उन्हें मुक्तिका वरदान दे भगवान् यदुनन्दन गुफासे बाहर निकले। कालयवनको मारा गया सुनकर दुर्बुद्धि जरासन्ध अपनी सेनाके साथ बलराम और श्रीकृष्णके साथ युद्ध करने लगा। भगवान् श्रीकृष्णने उस दुरात्माकी प्रायः सारी सेनाका संहार कर डाला। मगधराज मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बहुत देरके बाद जब उसे कुछ चेत हुआ तो उसके सारे अङ्गोंमें व्याकुलता छा रही थी। वह भयसे आतुर था। अब मगधराज जरासन्ध बलरामजीके साथ युद्ध करनेका साहस न कर सका। उसने महाबली बलराम और श्रीकृष्णको अजेय समझा और मरनेसे बची हुई सेनाको साथ ले तुरंत ही वह अपनी राजधानीको भाग गया। अब उसने बलराम और श्रीकृष्णका विरोध छोड़ दिया। तदनन्तर वसुदेवजीके दोनों पुत्र अपनी सेनाके साथ द्वारका चले गये। वहाँ इन्द्रने वायुदेवताको भेजा और विश्वकर्माकी बनायी हुई सुधर्मा नामक देवसभाको प्रेमपूर्वक श्रीकृष्णको भेंट कर दिया। वह सभा हीरे और वैदूर्यमणिकी बनी हुई थी। चन्द्राकार सिंहासनसे उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। नाना प्रकारके रत्नोंसे जटित सुवर्णमय दिव्य छत्रोंसे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उस रमणीय सभाको पाकर उग्रसेन आदि यदुवंशी वैदिक विद्वानोंके साथ उसमें बैठकर स्वर्ग-सभामें बैठे हुए देवताओंकी भाँति आनन्दका अनुभव करते थे। उन दिनों इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न रैवत नामक एक राजा थे। उनके रेवती नामवाली एक कन्या थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपनी कन्याका विवाह बलरामजीके साथ कर दिया। बलरामजीने वैदिक विधिके अनुसार रेवतीका पाणिग्रहण किया।

विदर्भ देशमें भीष्मक नामक एक धर्मात्मा राजा रहते थे। उनके रुक्मी आदि कई पुत्र हुए। उन सबसे छोटी एक कन्या भी हुई, जो बहुत ही सुन्दरी थी। उस कन्याका नाम रुक्मिणी था। वह भगवती लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसमें सभी शुभ लक्षण मौजूद थे। श्रीरामावतारके समय जो सीतारूपमें प्रकट हुई थीं, वे ही भगवती लक्ष्मी श्रीकृष्णावतारके समय रुक्मिणीके रूपमें अवतीर्ण हुईं। पूर्वकालमें जो हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दैत्य हुए थे, वे ही द्वापर आनेपर पुनः शिशुपाल और दन्तवक्त्रके नामसे उत्पन्न हुए थे। उन दोनोंका जन्म चैद्यवंशमें हुआ था। दोनों ही बड़े बलवान् और पराक्रमी थे। राजकुमार रुक्मी अपनी बहिन रुक्मिणीका विवाह शिशुपालके साथ करना चाहता था; किन्तु सुन्दर मुखवाली रुक्मिणी शिशुपालको अपना पति नहीं बनाना चाहती थी। बचपनसे ही उसका भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनुराग था। श्रीकृष्णको ही पति बनानेके उद्देश्यसे वह देवताओंका पूजन और भाँति-भाँतिके दान किया करती थी। वह अपने सनातन स्वामी पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई कठोर व्रतमें संलग्न हो पिताके घरमें निवास करती थी। विदर्भराज भीष्मक अपने पुत्र रुक्मीके साथ मिलकर शिशुपालसे कन्याका विवाह करनेकी तैयारी करने लगे।

तब रुक्मिणीने भगवान् श्रीकृष्णको पति बनानेके उद्देश्यसे अपने पुरोहितके पुत्रको तुरंत ही द्वारकापुरीमें

भेजा। ब्राह्मणदेवता द्वारकामें पहुँचकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे मिले। उन दोनोंने उनका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार किया। ब्राह्मणने एकान्तमें बैठकर उन दोनों भाइयोंसे रुक्मिणीका सारा संदेश कह सुनाया। उसे सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंसे परिपूर्ण आकाशगामी रथपर ब्राह्मणके साथ बैठे। महात्मा दारुकने उस रथको तीव्र गतिसे हाँका। अतः वे दोनों पुरुषश्रेष्ठ शीघ्र ही विदर्भनगरमें जा पहुँचे। बुद्धिमान् शिशुपालके विवाहको देखनेके लिये सब राष्ट्रोंसे जरासन्ध आदि राजा आये थे। विवाहके दिन रुक्मिणी सोनेके आभूषणोंसे विभूषित हो दुर्गाजीकी पूजा करनेके लिये सखियोंके साथ नगरसे बाहर निकली। वह सन्ध्याका समय था। देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण उसी समय वहाँ पहुँचे। बलवान् तो थे ही, उन्होंने रथपर बैठी हुई रुक्मिणीको सहसा उठाकर अपने रथपर बिठा लिया और द्वारकाकी ओर चल दिये। यह देख जरासन्ध आदि राजा क्रोधमें भरकर राजकुमार रुक्मीको साथ ले युद्धके लिये उपस्थित हुए। उन्होंने चतुरङ्गिणी सेनाके साथ श्रीहरिका पीछा किया।

तब महाबाहु बलभद्रजी उस उत्तम रथसे कूद पड़े। उन्होंने हल और मूसल लेकर युद्धमें शत्रुओंका संहार आरम्भ किया। कितने ही रथों, घोड़ों, बड़े-बड़े गजराजों तथा पैदल सैनिकोंको भी हल और मूसलकी मारसे कुचल डाला। जैसे वज्रके आघातसे पर्वत विदीर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार उनके हल और मूसल गिरनेसे रथोंकी पङ्क्तियाँ चूर-चूर हो गयीं और बड़े-बड़े हाथी भी धरतीपर ढेर हो गये। हाथियोंके मस्तक फट जाते और वे रक्त वमन करते हुए प्राणोंसे हाथ धो बैठते थे। इस प्रकार बलरामजीने क्षणभरमें हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंसहित सारी सेनाका सफाया कर दिया। राजाओंके पाँव उखड़ गये। वे सब-के-सब भयसे पीड़ित हो भाग चले। उधर रुक्मी क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णके साथ लोहा ले रहा था। उसने धनुष उठाकर बाणोंके समूहसे श्रीकृष्णको बींधना आरम्भ किया। तब गोविन्दने हँसकर लीलापूर्वक अपना शार्ङ्गधनुष हाथमें उठाया और एक ही बाणसे रुक्मीके अश्व, सारथि, रथ और ध्वजा-पताकाको भी काट गिराया। रथ नष्ट हो जानेपर वह तलवार खींचकर पृथ्वीपर खड़ा हो गया। यह देख श्रीकृष्णने एक बाणसे उसकी तलवारको भी काट डाला। तब उसने श्रीकृष्णकी छातीमें मुक्केसे प्रहार किया। श्रीकृष्णने बलपूर्वक उसे पकड़कर रथमें बाँध दिया और हँसते-हँसते तीखा छुरा ले रुक्मीके सिरको मूड़कर उसे बन्धनसे मुक्त कर दिया। इस अपमानके कारण उसको बड़ा शोक हुआ। वह चोट खाये हुए साँपकी भाँति लंबी साँस लेने लगा। लज्जाके कारण उसने विदर्भ-नगरीमें पाँव नहीं रखा। वहीं गाँव बसाकर वह रहने लगा।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण बलराम, रुक्मिणी और दारुकके साथ उस दिव्य रथपर आरूढ़ हो तुरंत अपनी पुरीको चले गये। द्वारकामें प्रवेश करके देवकीनन्दन श्रीकृष्णने शुभ दिन और शुभ लग्नमें सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित राजकुमारी रुक्मिणीका वेदोक्त विधिसे पाणिग्रहण किया। उस विवाहके समय आकाशमें देवतालोग दुन्दुभि बजाते और फूलोंकी वर्षा करते थे। वसुदेव, उग्रसेन, यदुश्रेष्ठ अक्रूर, महातेजस्वी बलभद्र तथा और भी जो-जो श्रेष्ठ यादव थे; उन सबने बड़े उत्साहके साथ श्रीकृष्ण और रुक्मिणीका सुखमय विवाहोत्सव मनाया। उसमें ग्वालों और ग्वालबालोंके साथ नन्दगोप भी पधारे थे तथा वस्त्राभूषणोंसे विभूषित बहुत-सी गोपाङ्गनाओंके साथ स्वयं यशोदाजी भी आयी थीं। वसुदेव, देवकी, रेवती, रोहिणी देवी तथा अन्यान्य नगर-युवतियोंने मिलकर बड़े हर्षके साथ विवाहके सारे कार्य सम्पन्न किये। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंसहित देवकीने बड़ी प्रसन्नताके साथ विधिपूर्वक देव-पूजनका कार्य सम्पन्न किया। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने विवाहोत्सवसे सम्बन्ध रखनेवाला सारा शास्त्रीय कार्य पूर्ण किया। सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे पूजित करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। आये हुए राजा, नन्द आदि गोप तथा यशोदा आदि स्त्रियोंका भी स्वर्ण-रत्न आदिके बहुत-से आभूषणों एवं वस्त्रोंद्वारा यथावत् सत्कार किया गया। इस प्रकार

उस वैवाहिक महोत्सवमें सम्मानित होकर वे सभी बड़े प्रसन्न हुए।

उन नूतन दम्पति श्रीकृष्ण और रुक्मिणीने ग्रन्थिबन्धनपूर्वक एक साथ अग्निदेवको प्रणाम किया। वेदोंके ज्ञाता श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने आशीर्वादके द्वारा उनका अभिनन्दन किया। उस समय विवाहकी वेदीपर बैठे हुए वर और वधूकी बड़ी शोभा हो रही थी। पत्नीसहित श्रीकृष्णने ब्राह्मणों, राजाओं और बड़े भाई बलरामजीको प्रणाम किया। इस प्रकार समस्त वैवाहिक कार्य सम्पन्न करके भगवान् श्रीकृष्णने विवाहोत्सवमें पधारे हुए समस्त राजाओंको विदा किया। उनसे सम्मानित एवं विदा होकर श्रेष्ठ राजा तथा महात्मा ब्राह्मण अपने-अपने निवासस्थानको चले गये। इसके बाद धर्मात्मा भगवान् देवकीनन्दन रुक्मिणी देवीके साथ दिव्य अट्टालिकामें बड़े सुखसे रहने लगे। मुनि और देवता उनकी स्तुति किया करते थे। उस शोभामयी द्वारकापुरीमें सनातन भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन सन्तुष्टचित्त होकर सदा आनन्दमग्न रहते थे।

★

भगवान्‌के अन्यान्य विवाह, स्यमन्तकमणिकी कथा, नरकासुरका वध तथा पारिजातहरण

महादेवजी कहते हैं—पार्वती ! सत्राजित्‌के एक यशस्विनी कन्या थी, जो भूदेवीके अंशसे उत्पन्न हुई थी। उसका नाम था (सत्या) सत्यभामा। सत्यभामा भगवान् श्रीकृष्णकी दूसरी पत्नी थीं। तीसरी पत्नी सूर्यकन्या कालिन्दी थीं, जो लीलादेवीके अंशसे प्रकट हुई थीं। विन्दानुविन्दकी पुत्री मित्रविन्दाको स्वयंवरसे ले आकर भगवान् श्रीकृष्णने उसके साथ विवाह किया। वहाँ सात महाबली बैलोंको, जिनका दमन करना बहुत ही कठिन था, भगवान्‌ने एक ही रस्सीसे नाथ दिया और इस प्रकार पराक्रमरूपी शुल्क देकर उसका पाणिग्रहण किया। राजा सत्राजित्‌के पास स्यमन्तक नामक एक बहुमूल्य मणि थी, जिसे उन्होंने अपने छोटे भाई महात्मा प्रसेनको दे रखा था। एक दिन भगवान् मधुसूदनने वह श्रेष्ठ मणि प्रसेनसे माँगी। उस समय प्रसेनने बड़ी धृष्टताके साथ उत्तर दिया—'यह मणि प्रतिदिन आठ भार सुवर्ण देती है; अतः इसे मैं किसीको नहीं दे सकता।' प्रसेनका अभिप्राय समझकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो रहे।

एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण प्रसेन आदि समस्त महाबली यादवोंके साथ शिकार खेलनेके लिये बड़े भारी वनमें गये। प्रसेन अकेले ही उस घोर वनमें बहुत दूरतक चले गये। वहाँ एक सिंहने उन्हें मारकर वह मणि ले ली। फिर उस सिंहको महाबली जाम्बवान्‌ने मार डाला और उस मणिको लेकर वे शीघ्र ही अपनी गुफामें चले गये। उस गुफामें दिव्य स्त्रियाँ निवास करती थीं। उस दिन सूर्यास्त हो जानेपर भगवान् वासुदेव अपने अनुचरोंके साथ चले। मार्गमें उन्होंने चतुर्थीके चन्द्रमाको देख लिया। उसके बाद अपने नगरमें प्रवेश किया। तदनन्तर समस्त पुरवासी श्रीकृष्णके विषयमें एक-दूसरेसे कहने लगे—'जान पड़ता है, गोविन्दने प्रसेनको वनमें ही मारकर बेखटके मणि ले ली है। उसके बाद ये द्वारकामें आये हैं।' द्वारकावासियोंकी यह बात जब भगवान्‌के कानोंमें पड़ी तो वे मूर्खलोगोंके द्वारा उठाये हुए अपवादके भयसे पुनः कुछ यदुवंशियोंको साथ ले गहन वनमें गये। वहाँ सिंहद्वारा मारे हुए प्रसेनकी लाश पड़ी थी, जिसे भगवान्‌ने सबको दिखाया। इस प्रकार प्रसेनकी हत्याके झूठे कलङ्कको मिटाकर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी सेनाको वहीं ठहरा दिया तथा हाथमें शार्ङ्गधनुष और गदा लिये वे अकेले ही गहन वनमें घुस गये। वहाँ एक बहुत बड़ी गुफा देखकर श्रीकृष्णने निर्भय होकर उसमें प्रवेश किया। उस गुफाके भीतर एक स्वच्छ भवन था, जो नाना प्रकारकी श्रेष्ठ मणियोंसे जगमगा रहा था। वहाँ एक धायने जाम्बवान्‌के पुत्रको पालनेमें सुलाकर उसके ऊपरी भागमें मणिको बाँधकर लटका दिया था और पालनेको धीरे-धीरे लीलापूर्वक डुलाती हुई वह लोरियाँ गा रही थी। गाते-गाते वह निम्नाङ्कित श्लोकका उच्चारण कर रही थी—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥
(२७६। १९)

'प्रसेनको सिंहने मारा और सिंह जाम्बवान्‌के हाथसे मारा गया है। सुन्दर कुमार! रोओ मत। यह स्यमन्तकमणि तुम्हारी ही है।'

यह सुनकर प्रतापी वासुदेवने शङ्ख बजाया। वह महान् शङ्खनाद सुनकर जाम्बवान् बाहर निकले। फिर उन दोनोंमें लगातार दस राततक भयंकर युद्ध हुआ। दोनों एक-दूसरेको वज्रके समान मुक्कोंसे मारते थे। वह युद्ध समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला था। श्रीकृष्णके बलकी वृद्धि और अपने बलका ह्रास देखकर जाम्बवान्‌को भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके कहे हुए पूर्वकालके वचनोंका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—ये ही मेरे स्वामी श्रीराम हैं, जो धर्मकी रक्षाके लिये पुनः इस भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं। मेरे नाथ मेरा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही यहाँ पधारे हैं।' ऐसा सोचकर ऋक्षराजने युद्ध बंद कर दिया और हाथ जोड़कर विस्मयसे पूछा—'आप कौन हैं? कैसे यहाँ पधारे हैं?' तब भगवान् श्रीकृष्णने गम्भीर वाणीमें कहा—'मैं वसुदेवका पुत्र हूँ। मेरा नाम वासुदेव है। तुम मेरी स्यमन्तक नामक मणि हर ले आये हो। उसे शीघ्र लौटा दो, नहीं तो अभी मारे जाओगे।' यह सुनकर जाम्बवान्‌को बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर भगवान्‌को प्रणाम किया और विनीत भावसे कहा—'प्रभो! आपके दर्शनसे मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। देवकीनन्दन! पहले अवतारसे ही मैं आपका दास हूँ। गोविन्द! पूर्वकालमें जो मैंने युद्धकी अभिलाषा की थी, उसीको आज आपने पूर्ण किया है। जगन्नाथ! करुणाकर! मैंने मोहवश अपने स्वामीके साथ जो यह युद्ध किया है, उसे आप क्षमा करें।'

ऐसा कहकर जाम्बवान् पैरोंमें पड़ गये और बारंबार नमस्कार करके उन्होंने भगवान्‌को रत्नमय सिंहासनपर विनयपूर्वक बिठाया। फिर शरत्कालके कमलसदृश सुन्दर एवं कोमल चरणोंको उत्तम जलसे पखारकर मधुपर्ककी विधिसे उन यदुश्रेष्ठका पूजन किया। दिव्य वस्त्र और आभूषण भेंट किये। इस प्रकार विधिवत् पूजा करके अमित-तेजस्वी भगवान्‌को अपनी जाम्बवती नामवाली लावण्यमयी कन्या पत्नीरूपसे दान कर दी। साथ ही अन्यान्य श्रेष्ठ मणियोंसहित स्यमन्तकमणि भी दहेजमें दे दी। विपक्षी वीरोंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने वहीं प्रसन्नतापूर्वक जाम्बवतीसे विवाह किया और जाम्बवान्‌को उत्तम मोक्ष प्रदान किया। फिर जाम्बवतीको साथ ले गुफासे बाहर निकलकर वे द्वारकापुरीको गये। वहाँ पहुँचकर यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने सत्राजित्‌को स्यमन्तकमणि दे दी और सत्राजित्‌ने उसे अपनी कन्या सत्यभामाको दे दिया। भादोंके शुक्लपक्षमें चतुर्थीको चन्द्रमाका दर्शन करनेसे झूठा कलङ्क लगता है; अतः उस दिन चन्द्रमाको नहीं देखना चाहिये। यदि कदाचित् उस तिथिको चन्द्रमाका दर्शन हो जाय तो इस स्यमन्तकमणिकी कथा सुननेपर मनुष्य मिथ्या कलङ्कसे छूट जाता है। मद्रराजकी तीन कन्याएँ थीं—सुलक्ष्मणा, नाग्नजिती और सुशीला। इन तीनोंने स्वयंवरमें भगवान् श्रीकृष्णका वरण किया और एक ही दिन भगवान्‌ने उन तीनोंके साथ विवाह किया। इस प्रकार महात्मा श्रीकृष्णके रुक्मिणी, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, जाम्बवती, नाग्नजिती, सुलक्ष्मणा और सुशीला—ये आठ पटरानियाँ थीं।

नरकासुर नामक एक महान् पराक्रमी राक्षस था, जो भूमिसे उत्पन्न हुआ था। उसने देवराज इन्द्र तथा सम्पूर्ण देवताओंको युद्धमें जीतकर देवमाता अदितिके दो तेजस्वी कुण्डल छीन लिये थे। साथ ही देवताओंके भाँति-भाँतिके रत्न, इन्द्रका ऐरावत हाथी, उच्चैःश्रवा घोड़ा, कुबेरके मणि-माणिक्य आदि तथा पद्मनिधि नामक शङ्ख भी ले लिये थे। वह आकाशमें विचरण करनेवाला था और आकाशमें ही नगर बनाकर उसके भीतर निवास करता था। एक दिन सम्पूर्ण देवता उसके भयसे पीड़ित हो शचीपति इन्द्रको आगे करके अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये। श्रीकृष्णने भी नरकासुरकी सारी चेष्टाएँ सुनकर

देवताओंको अभयदान दे विनतानन्दन गरुड़का स्मरण किया। सर्वदेववन्दित महाबली गरुड़ उसी समय भगवान्‌के सामने हाथ जोड़े उपस्थित हो गये। भगवान् सत्यभामाके साथ गरुड़पर सवार हुए और मुनियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए उस राक्षसके नगरमें गये। जैसे आकाशमें सूर्यका मण्डल देदीप्यमान होता है, उसी प्रकार उसका नगर भी उद्भासित हो रहा था। उसमें दिव्य आभूषण धारण किये बहुत-से राक्षस निवास करते थे। वह नगर देवताओंके लिये भी दुर्भेद्य था। भगवान्‌ने उसके कई आवरण देख चक्रसे उन्हें काट डाला, ठीक उसी तरह, जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं। आवरण कट जानेपर समस्त राक्षस शूल उठाये सैकड़ों और हजारोंके झुंड बनाकर युद्धके लिये चले। विजयकी अभिलाषा रखनेवाले निशाचर तोमर, भिन्दिपाल और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे भगवान् श्रीकृष्णपर प्रहार करने लगे। तब भगवान् श्रीकृष्णने भी शार्ङ्गधनुष लेकर उनके दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंको काट डाला तथा अग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे उन सबका संहार आरम्भ किया। इस प्रकार समस्त राक्षस मारे जाकर पृथ्वीपर गिर पड़े। सम्पूर्ण दानवोंका वध करके कमलनयन भगवान् पुरुषोत्तमने पाञ्चजन्य नामक महान् शङ्ख बजाया।

शङ्खनाद सुनकर पराक्रमी दैत्य नरकासुर दिव्य रथपर आरूढ़ हो भगवान्‌से युद्ध करनेके लिये आया। उन दोनोंमें अत्यन्त भयङ्कर घमासान युद्ध हुआ, जो रोंगटे खड़े कर देनेवाला था। वे दोनों बरसते हुए मेघोंकी भाँति हजारों बाणोंकी झड़ी लगा रहे थे। इसी बीचमें सनातन भगवान् वासुदेवने अर्द्धचन्द्राकार बाणसे उस राक्षसका धनुष काट दिया और उसकी छातीपर महान् दिव्यास्त्रका प्रहार किया। उससे हृदय विदीर्ण हो जानेके कारण वह महान् असुर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब भूमिकी प्रार्थनासे भगवान् श्रीकृष्ण उस राक्षसके समीप गये और बोले—'तुम कोई वर माँगो।' यह सुनकर राक्षसने गरुड़पर बैठे हुए भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'सम्पूर्ण भूतोंके स्वामी श्रीकृष्ण! मुझे वरदानकी कोई आवश्यकता नहीं। फिर भी दूसरे लोगोंके हितके लिये आपसे एक उत्तम वर माँगता हूँ। मधुसूदन! जो मनुष्य मेरी मृत्युके दिन माङ्गलिक स्नान करें, उन्हें कभी नरककी प्राप्ति न हो।'

'एवमस्तु' कहकर भगवान्‌ने उसे वह वर दे दिया। नरकासुरने ब्रह्मा और शिव आदि देवताओंद्वारा पूजित, वज्र एवं वैदूर्यमणिसे बने हुए नूपुरोंसे सुशोभित तथा शरत्कालके खिले हुए कमलसदृश कोमल भगवच्चरणोंका दर्शन करते हुए अपने प्राणोंका परित्याग किया और श्रीहरिका सारूप्य प्राप्त कर लिया। तदनन्तर सम्पूर्ण देवता और महर्षि आनन्दमग्न हो भगवान्‌के ऊपर फूलोंकी वर्षा और स्तुति करने लगे। इसके बाद कमलनयन श्रीकृष्णने नरकासुरके नगरमें प्रवेश किया और उसने बलपूर्वक जो देवताओंका धन लूट लिया था, वह सब उन्हें वापस कर दिया। देवमाता अदितिके दोनों कुण्डल, उच्चैःश्रवा घोड़ा, ऐरावत हाथी और दीप्तिमान् मणिमय पर्वत—ये सारी वस्तुएँ भगवान्‌ने इन्द्रको दे दीं। बलवान् नरकासुरने समस्त राजाओंको जीतकर सभी राष्ट्रोंसे जो सोलह हजार कन्याओंका अपहरण किया था, वे सब-की-सब उसके अन्तःपुरमें कैद थीं। सैकड़ों कामदेवकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले महापराक्रमी श्रीकृष्णको देखकर उन सबने उन्हें अपना पति बना लिया। तब अनन्त रूप धारण करनेवाले भगवान् गोविन्दने एक ही लग्नमें उन सबका पाणिग्रहण किया। नरकासुरके सभी पुत्र पृथ्वीदेवीको आगे करके भगवान् गोविन्दकी शरणमें गये। तब दयानिधान भगवान्‌ने उन सबकी रक्षा की और पृथ्वीके वचनोंका आदर करते हुए उन्हें नरकासुरके राज्यपर स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् उन सभी सुन्दरी स्त्रियोंको इन्द्रके विमानपर बिठाकर देवदूतोंके साथ द्वारकामें भेज दिया। इसके बाद सत्यभामाके साथ गरुड़पर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्ण देवमाताका दर्शन करनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। अमरावतीपुरीमें पहुँचकर महाबली श्रीकृष्ण पत्नीसहित गरुड़से उतरे और देवताओंकी वन्दनीया माता अदितिके चरणोंमें उन्होंने प्रणाम किया।

पुत्रवत्सला माताने भगवान्‌को दोनों हाथोंसे पकड़कर छातीसे लगा लिया और एक श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्‌का पूजन किया। तत्पश्चात् आदित्य, वसु, रुद्र और इन्द्र आदि देवताओंने भी परमेश्वरका यथायोग्य पूजन किया। उस समय यशस्विनी सत्यभामा शचीके महलमें गयीं। वहाँ इन्द्राणीने उन्हें सुखमय आसनपर बिठाकर उनका भलीभाँति पूजन किया। उसी समय सेवकोंने इन्द्रकी प्रेरणासे पारिजातके सुन्दर फूल ले जाकर शचीदेवीको भेंट दिये। सुन्दरी शचीने उन फूलोंको लेकर अपने काले एवं चिकने केशोंमें गूँथ लिया और सत्यभामाकी अवहेलना कर दी। उन्होंने सोचा—'ये फूल देवताओंके योग्य हैं और सत्यभामा मानुषी हैं, अतः ये इन फूलोंकी अधिकारिणी नहीं हैं।' ऐसा विचार करके उन्होंने वे फूल सत्यभामाको नहीं दिये।

सत्यभामा क्रोधमें भरकर इन्द्राणीके घरसे चली आयीं और अपने स्वामीके पास आकर बोलीं—'यदुश्रेष्ठ! उस शचीको पारिजातके फूलोंपर बड़ा घमंड है। उसने मुझे दिये बिना ही सब फूल अपने ही केशोंमें धारण कर लिये हैं।' सत्यभामाकी यह बात सुनकर महाबली वासुदेवने पारिजातका पेड़ उखाड़ लिया और उसे गरुड़की पीठपर रखकर वे सत्यभामाके साथ द्वारकापुरीकी ओर चल दिये। यह देख देवराज इन्द्रको बड़ा क्रोध हुआ। और वे देवताओंको साथ लेकर भगवान् जनार्दनपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे, मानो मेघ किसी महान् पर्वतपर जलकी बूँदें बरसा रहे हों। भगवान् श्रीकृष्णके चक्र और गरुड़जीके पंखोंकी मारसे देवता परास्त हो गये और इन्द्र भयभीत होकर गजराज ऐरावतसे नीचे उतर पड़े तथा गद्गद वाणीसे भगवान्‌की स्तुति करके बोले—'श्रीकृष्ण! यह पारिजात देवताओंके उपभोगमें आने योग्य है। पूर्वकालमें आपने ही इसे देवताओंके लिये दिया था। अब यह मनुष्यलोकमें कैसे रह सकेगा?' तब भगवान्‌ने इन्द्रसे कहा—'देवराज! तुम्हारे घरमें शचीने सत्यभामाका अपमान किया है। उन्होंने इनको पारिजातके फूल न देकर स्वयं ही उन्हें अपने मस्तकमें धारण किया है। इसलिये मैंने पारिजातका अपहरण किया है। मैंने सत्यभामासे प्रतिज्ञा की है कि मैं तुम्हारे घरमें पारिजातका वृक्ष लगा दूँगा; अतः आज यह पारिजात तुम्हें नहीं मिल सकता। मैं मनुष्योंके हितके लिये उसे भूतलपर ले जाऊँगा। जबतक मैं वहाँ रहूँगा, मेरे भवनमें पारिजात भी रहेगा। मेरे परमधाम पधारनेपर तुम अपनी इच्छाके अनुसार इसे ले लेना। इन्द्रने भगवान्‌को नमस्कार करके कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' यों कहकर वे देवताओंके साथ अपनी पुरीमें लौट गये और भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामादेवीके साथ गरुड़पर बैठकर द्वारकापुरीमें चले आये। उस समय मुनिगण उनकी स्तुति करते थे। सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि सत्यभामाके निकट देववृक्ष पारिजातकी स्थापना करके समस्त भार्याओंके साथ विहार करने लगे। विश्वरूपधारी मधुसूदन रात्रिमें इन सभी पत्नियोंके घरोंमें रहकर उन्हें सुख प्रदान करते थे।

अनिरुद्धका ऊषाके साथ विवाह

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! भगवान् श्रीकृष्णके रुक्मिणीके गर्भसे प्रद्युम्न उत्पन्न हुए, जो कामदेवके अंशसे प्रकट हुए थे। वे बड़े बलवान् थे। उन्होंने शम्बरासुरका वध किया था। उनके रुक्मीकी पुत्रीके गर्भसे अनिरुद्धका जन्म हुआ। अनिरुद्धने भी बाणासुरकी कन्या ऊषाके साथ विवाह किया। उस विवाहकी कथा इस प्रकार है—एक दिन ऊषाने स्वप्नमें एक नील कमल-दलके समान श्यामसुन्दर तरुण पुरुषको देखा। ऊषाने स्वप्नमें ही उस पुरुषके साथ प्रेमालाप किया और जागनेपर उसे सामने न देख वह पागल-सी हो उठी तथा यह कहती हुई कि 'तुम मुझे अकेली छोड़ कहाँ चले गये?' वह भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगी। ऊषाकी एक चित्रलेखा नामकी सखी थी। उसने उसकी ऐसी अवस्था देखकर पूछा—

'सखी ! क्या कारण है कि तुम्हारा मन विक्षिप्त-सा हो रहा है ?' ऊषाने स्वप्नमें मिले हुए पतिके विषयकी सारी बातें सच-सच बता दीं।

चित्रलेखाने सम्पूर्ण देवताओं और श्रेष्ठ मनुष्योंके चित्र वस्त्रपर अङ्कित करके ऊषाको दिखलाये। यदुकुलमें जो श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध आदि सुन्दर पुरुष थे, उनके चित्र भी उसने ऊषाके सामने प्रस्तुत किये। ऊषाने उनमेंसे श्रीकृष्णको उससे मिलता-जुलता पाया। अतः उन्हींकी परम्परामें उनके होनेका अनुमान करके उसने उधर ही दृष्टिपात किया। श्रीकृष्णके बाद प्रद्युम्न और प्रद्युम्नके बाद अनिरुद्धको देखकर वह सहसा बोल उठी—'यही है, यही है' ऐसा कहकर उसने अनिरुद्धके चित्रको हृदयसे लगा लिया। तब चित्रलेखा दैत्योंकी बहुत-सी मायाविनी स्त्रियोंको साथ ले द्वारकामें गयी और रातके समय अन्तःपुरमें सोये हुए अनिरुद्धको मायासे मोहित करके बाणासुरके महलमें लाकर ऊषाकी शय्यापर सुला दिया। जागनेपर अनिरुद्धने अपनेको अत्यन्त रमणीय और स्वच्छ पलंगपर सोया हुआ पाया। पास ही समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न विचित्र आभूषण, वस्त्र, गन्ध और माला आदिसे अलङ्कृत तथा सुवर्णके समान रंग और सुन्दर केशोंवाली ऊषा बैठी हुई थी। तदनन्तर ऊषाकी प्रसन्नतासे अनिरुद्ध उसके साथ रहने लगे।

इस प्रकार लगातार एक मासतक अनिरुद्ध ऊषाके साथ महलमें रहे। एक दिन अन्तःपुरमें रहनेवाली कुछ बूढ़ी स्त्रियोंने उन्हें देख लिया और राजा बाणासुरको इसकी सूचना दे दी। यह समाचार सुनते ही राजाकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने अत्यन्त विस्मित होकर अपने सेवकोंको भेजा और यह आदेश दिया कि 'उसे यहीं पकड़ लाओ।' सेवक राजाके महलपर चढ़ गये और राजकुमारीके शयनागारमें सोये हुए अनिरुद्धको पकड़नेके लिये आगे बढ़े। अपनेको पकड़नेके लिये आते देख अनिरुद्धने खिलवाड़में ही महलका एक खम्भा उखाड़ लिया और उसीसे मार-मारकर दो ही घड़ीमें उन सबका कचूमर निकाल डाला। अपने सेवकोंको मारा गया देख दैत्यराज बाणासुरको अनिरुद्धके विषयमें बड़ा कौतूहल हुआ। इतनेमें ही देवर्षि नारदने आकर बताया कि ये श्रीकृष्णके पौत्र अनिरुद्ध हैं। यह सुनकर धनुष ले वह स्वयं ही अनिरुद्धको पकड़नेके लिये उनके समीप आया। हजार भुजाओंसे युक्त दैत्यराजको युद्धके लिये आते देख अनिरुद्धने भी एक परिघ घुमाकर बाणासुरके ऊपर फेंका; किन्तु उसने बाण मारकर उस परिघको काट दिया। तत्पश्चात् सर्पास्त्रसे अनिरुद्धको अच्छी तरह बाँधकर दैत्यराजने उन्हें अन्तःपुरमें ही कैद कर लिया।

इधर देवर्षि नारदके मुखसे यह सारा समाचार ज्यों-का-त्यों जानकर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलदेवजी, प्रद्युम्न तथा अपनी सेनाके साथ पक्षिराज गरुड़पर आरूढ़ हो बाणासुरके बाहुबलका उच्छेद करनेके लिये आ पहुँचे। पूर्वकालमें बलिपुत्र बाणासुरने भगवान् शङ्करकी आराधना की थी। इससे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उसे वर माँगनेको कहा। तब उसने महेश्वरसे यही वर माँगा था कि 'आप मेरे नगर-द्वारपर सदा रक्षाके लिये मौजूद रहें और जो शत्रुओंकी सेना आवे, उसका संहार करें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् शंकरने उसकी प्रार्थना स्वीकार की तथा वे अपने पुत्र और पार्षदोंके साथ अस्त्र-शस्त्र लिये उसके नगर-द्वारपर सदा विराजमान रहने लगे। उस समय जब भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वहाँ आये तो उन्हें देखकर भगवान् शंकर भी वृषभपर आरूढ़ हो सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये अपने पुत्र और पार्षदोंसहित युद्धके लिये निकले। वे हाथीका चमड़ा पहने, कपाल धारण किये, सब अङ्गोंमें विभूति रमाये और प्रज्वलित सर्पोंका आभूषण पहने शोभा पा रहे थे। उनका श्रीअङ्ग पिङ्गल वर्णका था। उनके तीन नेत्र थे। वे अपने हाथमें त्रिशूल लिये हुए थे। उन्होंने सम्पूर्ण भूतगणोंका संगठन कर रखा था। वे समस्त प्राणियोंके लिये भयदायक प्रतीत होते थे। उनका तेज प्रलयकालीन अग्निके समान जान पड़ता था। वे अपने दोनों पुत्रों और समस्त पार्षदोंके साथ उपस्थित थे। त्रिपुरका नाश करनेवाले उन

भगवान् भूतनाथको सामना करनेके लिये आया देख भगवान् श्रीकृष्णने सेनाको तो बहुत दूर पीछे ही ठहरा दिया और स्वयं बलभद्र एवं प्रद्युम्नसहित निकट आकर वे हँसते-हँसते भगवान् शङ्करजीके साथ युद्ध करने लगे। उन दोनोंमें घोर युद्ध हुआ। पिनाक और शार्ङ्गधनुषसे छूटे हुए बाण प्रलयाग्निके समान भयंकर जान पड़ते थे। बलरामजी गणेशजीके साथ और प्रद्युम्न कार्तिकेयजीके साथ भिड़ गये। दोनों पक्षोंके योद्धा महान् पराक्रमी और सिंहके समान उत्कट बलवाले थे। गणेशजीने अपने दाँतसे बलरामजीकी छातीमें प्रहार किया, तब बलरामजीने मूसल उठाकर उनके दाँतपर दे मारा। मूसलकी मार पड़ते ही गणेशजीका दाँत टूट गया और वे चूहेपर चढ़कर रणभूमिसे भाग खड़े हुए। तभीसे टूटे हुए दाँतवाले गणेशजी इस लोकमें तथा देवता, दानव और गन्धर्वोंके यहाँ 'एकदन्त'के नामसे प्रसिद्ध हुए। कार्तिकेयजी प्रद्युम्नके साथ युद्ध कर रहे थे। हल धारण करनेवाले बलरामजीने मूसलकी मारसे शिवगणोंको युद्धभूमिसे भगा दिया।

भगवान् शिव श्रीकृष्णसे बहुत देरतक युद्ध करते रहे। इसके बाद उन्होंने क्रोधसे लाल-लाल आँखें करके अपने बाणपर अत्यन्त प्रज्वलित तापज्वरका आधान किया और उसे भगवान् श्रीकृष्णपर छोड़ दिया; किन्तु श्रीकृष्ण शीतज्वरसे उस अस्त्रका निवारण कर दिया। इस प्रकार श्रीहरि और हरके छोड़े हुए वे दोनों ज्वर उन्हींकी आज्ञासे मनुष्यलोकमें चले गये। जो मानव श्रीहरि और शङ्करके युद्धका वृत्तान्त सुनते हैं, वे ज्वरसे मुक्त होकर नीरोग हो जाते हैं।

इसके बाद दैत्यराज बाणासुर रथपर सवार हो भगवान् श्रीकृष्णके साथ युद्ध करनेके लिये आया; किन्तु भगवान्ने अपने चक्रसे उसकी भुजाएँ काट डालीं। यह देख भगवान् शङ्करने कहा—'प्रभो! यह बाणासुर राजा बलिका पुत्र है। मैंने इसे अमरत्वका वरदान दिया है। यदुश्रेष्ठ! आप मेरे उस वरदानकी रक्षा करें और इस बलिकुमारके अपराधोंको क्षमा कर दें।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने चक्रको समेट लिया और प्राणोंके सङ्कटमें पड़े हुए बाणासुरको छोड़ दिया। उसको छुड़ाकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले भगवान् शङ्कर वृषभपर सवार हो कैलासपर चले गये। फिर बाणासुरने महाबली बलराम और श्रीकृष्णको नमस्कार किया और उन दोनोंके साथ नगरमें जाकर अनिरुद्धको बन्धनसे मुक्त कर दिया। तत्पश्चात् उसने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे पूजा करके कृष्णपौत्र अनिरुद्धको अपनी कन्या ऊषाका दान कर दिया। अनिरुद्धका विधिपूर्वक विवाह हो जानेके पश्चात् बाणासुरने प्रद्युम्नसहित बलराम और श्रीकृष्णका भी पूजन किया। फिर भगवान् जनार्दन ऊषा और अनिरुद्धको एक दिव्य रथपर बिठाकर द्वारकाकी ओर प्रस्थित हुए। बलराम, प्रद्युम्न और सेनाके साथ श्रीहरिने अपनी रमणीय पुरीमें प्रवेश किया। वहाँ अनिरुद्ध अनेक रत्नोंद्वारा निर्मित मनोहर भवनमें बाणपुत्री ऊषाके साथ भाँति-भाँतिके भोगोंका उपभोग करते हुए निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक निवास करने लगे।

★

पौण्ड्रक, जरासन्ध, शिशुपाल और दन्तवक्त्रका वध, व्रजवासियोंकी मुक्ति, सुदामाको ऐश्वर्य-प्रदान तथा यदुकुलका उपसंहार

महादेवजी कहते हैं—पार्वती! काशीका राजा पौण्ड्रकवासुदेव काशीपुरीके भीतर एकान्त स्थानमें बैठकर बारह वर्षोंतक बिना कुछ खाये-पिये मेरी आराधनामें संलग्न हो पञ्चाक्षर मन्त्रका जप करता रहा। उस समय वह अपने नेत्ररूपी कमलसे मेरी पूजा करता था। तब मैंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उससे वर माँगनेके लिये कहा। वह बोला—'मुझे वासुदेवके समान रूप प्रदान कीजिये।' यह सुनकर मैंने उसे शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसहित चार भुजाएँ, कमलदलके समान विशाल नेत्र, किरीट, मणिमय कुण्डल, पीत वस्त्र तथा कौस्तुभमणि आदि चिह्न प्रदान किये। अब वह अपनेको वासुदेव बताकर सब लोगोंको मोहमें डालने लगा। एक

दिन अभिमान और बलसे उन्मत्त हुए काशिराजके पास देवर्षि नारदने आकर कहा—'मूढ़! वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णपर विजय पाये बिना तू वासुदेव नहीं हो सकता।' इतना सुनते ही वह उसी समय श्रीकृष्णको जीतनेके लिये गरुड़पताकासे युक्त रथपर आरूढ़ हो चारों अङ्गोंसे युक्त अक्षौहिणी सेनाके साथ यात्रा करके द्वारकामें जा पहुँचा। वहाँ नगरद्वारपर सुवर्णमय रथमें बैठे हुए पौण्ड्रकने श्रीकृष्णके पास दूत भेजा और यह सन्देश दिया कि 'मैं वासुदेव हूँ तथा युद्धके लिये यहाँ आया हूँ। मुझपर विजय पाये बिना तुम वासुदेव नहीं कहला सकते।' उसका सन्देश सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण गरुड़पर आरूढ़ हुए और पौण्ड्रकसे युद्ध करनेके लिये नगरद्वारपर आये। वहाँ उन्होंने अक्षौहिणी सेनाके साथ रथपर बैठे हुए शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले पौण्ड्रकको देखा। फिर तो शार्ङ्गधनुष हाथमें ले प्रलयाग्निके समान तेजस्वी बाणोंसे रथ, हाथी, घोड़े और पैदलसहित उसकी बहुत बड़ी अक्षौहिणी सेनाको भगवान्‌ने दो ही घड़ीमें भस्म कर डाला। एक बाणसे उसके हाथोंमें चिपके हुए शङ्ख, चक्र और गदा आदि शस्त्रोंको भी लीलापूर्वक काट दिया। फिर पवित्र सुदर्शनचक्रसे उसके किरीट-कुण्डलयुक्त मस्तकको काटकर उन्होंने काशीके अन्तःपुरमें गिरा दिया। उस मस्तकको देखकर समस्त काशीनिवासी बहुत विस्मित हुए।

उधर मगधराज जरासन्ध कंसवधके पश्चात् यादवोंसे द्वेषभाव रखते हुए ही उन्हें सदा पीड़ा दिया करता था। इससे दुःखित होकर यादवोंने श्रीकृष्णसे उसकी चेष्टाएँ बतलायीं। तब भगवान् श्रीकृष्णने भीमसेन और अर्जुनको बुलाकर परामर्श किया—'इस जरासन्धने महादेवजीकी आराधना की है; अतः उनकी कृपासे यह शस्त्रोंद्वारा नहीं मारा जा सकता। किन्तु किसी-न-किसी प्रकार इसका वध करना आवश्यक है।' फिर कुछ सोचकर भगवान्‌ने भीमसेनसे कहा—'तुम उसके साथ मल्लयुद्ध करो।' भीमसेनने ऐसा करनेकी प्रतिज्ञा की। तब सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के वन्दनीय भगवान् वासुदेव भीम और अर्जुनको साथ ले जरासन्धकी पुरीमें गये और वहाँ ब्राह्मणका वेष धारण करके उन सबने राजाके अन्तःपुरमें प्रवेश किया। उन्हें देखकर जरासन्धने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और योग्य आसनोंपर बिठाकर मधुपर्ककी विधिसे उनका पूजन करके कहा—'द्विजवरो! मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। आपलोग किस लिये मेरे समीप पधारे हैं? उसे बतावें। मैं आपलोगोंको सब कुछ दूँगा।' तब उनमेंसे भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर कहा—'राजन्! हम क्रमशः श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन हैं तथा युद्धके लिये तुम्हारे पास आये हैं। हममेंसे किसी एकको द्वन्द्व-युद्धके लिये स्वीकार करो।' 'बहुत अच्छा' कहकर उसने उनकी बात मान ली और द्वन्द्व-युद्धके लिये भीमसेनका वरण किया। फिर तो भीमसेन और जरासन्धमें अत्यन्त भयंकर मल्लयुद्ध हुआ, जो लगातार सत्ताईस दिनोंतक चलता रहा। उसके बाद श्रीकृष्णके संकेतसे भीमसेनने उसके शरीरको चीर डाला और दो टुकड़े करके उसे पृथ्वीपर गिरा दिया। इस प्रकार पाण्डुनन्दन भीमके द्वारा जरासन्धका वध कराकर उसके कैद किये हुए राजाओंको भी भगवान्‌ने मुक्त किया। वे राजा भगवान् मधुसूदनको प्रणाम और उनकी स्तुति करके उनके द्वारा सुरक्षित हो अपने-अपने देशोंको चले गये।

तदनन्तर भगवान् वासुदेवने भीमसेन और अर्जुनके साथ इन्द्रप्रस्थमें जाकर महाराज युधिष्ठिरसे राजसूय नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कराया। यज्ञ समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने भीष्मजीकी अनुमतिसे अग्रपूजाका अधिकार श्रीकृष्णको ही दिया—सर्वप्रथम उन्हींकी पूजा की। उस समय शिशुपालने श्रीकृष्णके प्रति बहुत-से आक्षेपयुक्त वचन कहे। तब श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रके द्वारा उसका मस्तक काट डाला। वह तीन जन्मोंकी समाप्तिके बाद उस समय श्रीहरिके सारूप्यको प्राप्त हुआ। शिशुपालको मारा गया सुनकर दन्तवक्त्र श्रीकृष्णसे युद्ध करनेके लिये मथुरामें गया। यह सुनकर श्रीकृष्ण भी मथुरामें ही उससे युद्ध करनेके लिये गये। वहाँ मथुरापुरीके दरवाजेपर यमुनाके किनारे उन दोनोंमें दिन-रात युद्ध होता रहा। अन्तमें श्रीकृष्णने दन्तवक्त्रपर

गदासे प्रहार किया। उसकी चोट खाकर वज्रसे विदीर्ण हुए पर्वतकी भाँति उसका सारा शरीर चूर-चूर हो गया और वह प्राणहीन होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। दन्तवक्त्र भी योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य नित्यानन्दमय सुखसे परिपूर्ण सनातन परमपदरूप भगवत्सायुज्यको प्राप्त हुआ। इस प्रकार जय और विजय सनकादिके शापके व्याजसे केवल भगवान्‌की लीलामें सहयोग देनेके लिये संसारमें तीन बार उत्पन्न हुए और तीनों ही जन्मोंमें भगवान्‌के ही हाथसे उनकी मृत्यु हुई। इस तरह तीन जन्मोंकी समाप्ति होनेपर वे पुनः मोक्षको प्राप्त हुए।

दन्तवक्त्रका वध करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण यमुनाके पार हो नन्दके व्रजमें गये और पहलेके पिता-माता नन्द और यशोदाको प्रणाम करके उन्होंने उन दोनोंको आश्वासन दिया। फिर नन्द और यशोदाने भी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए भगवान्‌को हृदयसे लगाया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने वहाँके समस्त बड़े-बूढ़े गोपोंको प्रणाम करके आश्वासन दिया और बहुमूल्य रत्न, वस्त्र तथा आभूषण आदि देकर व्रजके समस्त निवासियोंको सन्तुष्ट किया। वहाँ रहनेवाले नन्दगोप आदि सब लोग तथा पशु-पक्षी और मृग आदि भी भगवान्‌की कृपासे स्त्री-पुत्रोंसहित दिव्यरूप धारण करके विमानपर बैठे और परम वैकुण्ठधामको चले गये। इस प्रकार समस्त व्रजवासियोंको अपना निरामय पद प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण शोभामयी द्वारकापुरीमें आये, उस समय आकाशमें स्थित देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे।

द्वारकामें वसुदेव, उग्रसेन, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और अक्रूर आदि यादव सदा भगवान् श्रीकृष्णका पूजन किया करते थे। वे विश्वरूपधारी भगवान् भाँति-भाँतिके दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित मनोहर गृहोंमें कल्पवृक्षके फूलोंसे सजी हुई स्वच्छ एवं कोमल शय्याओंपर सोलह हजार आठ रानियोंके साथ प्रतिदिन आनन्दका अनुभव करते थे। उन दिनों श्रीकृष्ण और बलरामजीका बालसखा एवं सहपाठी एक ब्राह्मण था, जो अत्यन्त दरिद्रतासे पीड़ित रहता था। एक दिन वह भीखमें मिला हुआ मुट्ठीभर चावल पुराने चिथड़ेमें बाँधकर भगवान् वासुदेवसे मिलनेके लिये परम मनोहर द्वारका नगरीमें आया और रुक्मिणीके अन्तःपुरके दरवाजेपर जा क्षणभर चुपचाप खड़ा रहा। इतनेमें उसके ऊपर श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ी, उन्होंने ब्राह्मणको आया जान आगे बढ़कर उसकी अगवानी की और प्रणाम करके हाथ पकड़कर महलके भीतर ले जा उसे सुन्दर आसनपर बिठाया। वह बेचारा भयसे काँप रहा था। किन्तु भगवान्‌ने रुक्मिणीके हाथमें रखे हुए सुवर्णमय कलशके जलसे स्वयं ही उसके दोनों चरण धोकर मधुपर्कद्वारा उसका पूजन किया। फिर अमृतके समान मधुर अन्न-पान आदिसे ब्राह्मणको तृप्त करके उसके पुराने चिथड़ेमें बँधे हुए चावलोंको लेकर भगवान्‌ने हँसते-हँसते उनका भोग लगाया। उन्होंने ज्यों ही उन चावलोंको मुँहमें डाला, त्यों ही ब्राह्मणको प्रचुर धन, धान्य, वस्त्र एवं आभूषणोंसे युक्त महान् ऐश्वर्य प्राप्त हो गया। किन्तु उस समय भगवान्‌से खाली हाथ विदा होकर उसने अपने मनमें इस बातका विचार किया कि 'इन्होंने मुझे कुछ नहीं दिया।' निवासस्थानमें पहुँचनेपर जब उसने अपने लिये धन-धान्यसे सम्पन्न गृह देखा तो उसे निश्चय हो गया कि यह सब श्रीहरिकी कृपासे ही प्राप्त हुआ है। ब्राह्मणने प्रसन्नचित्त होकर दिव्य वस्त्र एवं आभूषण आदिके द्वारा पत्नीके साथ समस्त कामनाओंका उपभोग किया और श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये नाना प्रकारके यज्ञोंका अनुष्ठान करके उन्हींके प्रसादसे वह परमधामको प्राप्त हुआ।

धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनने छलपूर्वक जुआ खेलकर उसीके व्याजसे पाण्डवोंका सारा राज्य हड़प लिया था और उन्हें अपने राज्यसे निर्वासित कर दिया था। इससे युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपनी पत्नी द्रौपदीके साथ महान् वनमें जाकर वहाँ बारह वर्षोंतक रहे। फिर एक सालतक उन्हें अज्ञातवास करना पड़ा। अन्तमें सब मत्स्यदेशके राजा विराटके भवनमें एकत्रित हुए और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे धृतराष्ट्र-पुत्रोंके साथ युद्ध करनेको आये। अनेक देशोंसे आये हुए राजाओंके साथ परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें जुटे

हुए पाण्डवों और धृतराष्ट्र-पुत्रोंमें बहुत बड़ा संग्राम हुआ, जो देवताओंके लिये भी भयंकर था। उसमें श्रीकृष्णने अर्जुनके सारथिका काम किया और अपनी शक्ति अर्जुनमें स्थापित करके उनके द्वारा ग्यारह अक्षौहिणी सेनाओंसहित दुर्योधन, भीष्म, द्रोण तथा अन्यान्य राजाओंका वध कराकर उन्होंने पाण्डवोंको अपने राज्यपर स्थापित कर दिया। इस प्रकार पृथ्वीका सारा भार उतारकर भगवान्‌ने द्वारकापुरीमें प्रवेश किया।

तदनन्तर कुछ कालके बाद एक वैदिक ब्राह्मण अपने मरे हुए पाँच वर्षके बालकको लेकर द्वारकामें राजाके द्वारपर रखकर बहुत विलाप करने लगा। उसने श्रीकृष्णके प्रति बहुत आक्षेपयुक्त वचन कहे। श्रीकृष्ण उस आक्षेपको सुनकर भी चुप रहे। ब्राह्मण कहता गया—'मेरे पाँच पुत्र पहले मर चुके हैं। यह छठा पुत्र है। यदि श्रीकृष्ण मेरे इस पुत्रको जीवित नहीं करेंगे तो मैं इस राजद्वारपर प्राण दे दूँगा।' इसी समय अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेके लिये द्वारकामें आये। वहाँ उन्होंने पुत्रशोकसे विलाप करते हुए ब्राह्मणको देखा। उसका पाँच वर्षका बालक कालके मुखमें चला गया है, यह देखकर अर्जुनको बड़ी दया आयी। उन्होंने ब्राह्मणको अभयदान देकर प्रतिज्ञा की—'मैं तुम्हारे पुत्रको जीवित कर दूँगा।' उनसे आश्वासन पाकर ब्राह्मण प्रसन्न हो गया। उन्होंने मन्त्र पढ़कर अनेक सञ्जीवनास्त्रोंका प्रयोग किया; किन्तु वह बालक जीवित न हुआ। इससे अपनी प्रतिज्ञा झूठी होती देख अर्जुनको बड़ा शोक हुआ और उन्होंने उस ब्राह्मणके साथ ही प्राण त्याग देनेका विचार किया। यह सब जानकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरसे बाहर निकले और उस वैदिक ब्राह्मणसे बोले—'मैं तुम्हारे सभी पुत्रोंको ला दूँगा।' ऐसा कहकर उसे आश्वासन दे अर्जुनसहित गरुड़पर आरूढ़ हो वे विष्णुलोकमें गये। वहाँ दिव्य मणिमय मण्डपमें श्रीलक्ष्मीदेवीके साथ बैठे हुए भगवान् नारायणको देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुनने उन्हें नमस्कार किया। भगवान्‌ने उन दोनोंको अपनी भुजाओंमें कस लिया और पूछा—'तुम दोनों किस लिये आये हो?' श्रीकृष्णने कहा—'भगवन्! मुझे वैदिक ब्राह्मणके पुत्रोंको दे दीजिये।' तब भगवान् नारायणने वैसी ही अवस्थामें स्थित अपने लोकमें विद्यमान ब्राह्मणपुत्रोंको श्रीकृष्णके हाथमें सौंप दिया। श्रीकृष्ण भी उन्हें गरुड़के कंधेपर बिठाकर प्रसन्नतापूर्वक अर्जुनसहित स्वयं भी गरुड़पर सवार हुए और आकाशमें देवताओंके मुँहसे अपनी स्तुति सुनते हुए द्वारकापुरीमें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणके छः पुत्र उन्हें समर्पित कर दिये तब वह अत्यन्त हर्षमें भरकर श्रीकृष्णको अभ्युदयकारक आशीर्वाद देने लगा। अर्जुनकी भी प्रतिज्ञा सफल हुई; इसलिये उनको भी बड़ा हर्ष था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार करके महाराज युधिष्ठिरद्वारा पालित अपनी पुरीकी राह ली।

श्रीकृष्णके सोलह हजार रानियोंके गर्भसे कुल अयुत सहस्र (एक करोड़) पुत्र उत्पन्न हुए थे। इस विषयमें कहते हैं—'श्रीकृष्णके एक करोड़ आठ सौ पुत्र थे। उन सबमें रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्न ही बड़े थे, असंख्य यदुवंशियोंसे यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी थी।

एक दिन समस्त यादवकुमार घूमनेके लिये नर्मदातटपर गये। वहाँ महर्षि कण्व तपस्या कर रहे थे। यादवकुमारोंने जाम्बवतीके पुत्र साम्बको स्त्रीके वेषमें सजाकर उसके पेटमें एक लोहेका मूसल बाँध दिया। फिर धीरे-धीरे ऋषिके समीप आकर सबने नमस्कार किया और स्त्रीरूपधारी साम्बको आगे खड़ा करके पूछा—'मुने! बताइये, इस स्त्रीके गर्भमें कन्या है या पुत्र?' मुनिने मन-ही-मन सब बात जानकर क्रोधपूर्वक कहा—'अरे! तुम सब लोग इसी मूसलसे मारे जाओगे।' यह सुनकर सबका हृदय उद्विग्न हो उठा। उन्होंने श्रीकृष्णके पास आकर महर्षिकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं। श्रीकृष्णने उस लोहेके मूसलको चूर्ण करके कुण्डमें डलवा दिया। उस चूर्णसे वज्रके समान कठोर बड़े-बड़े सरकंडे उग आये। मूसलके चूर्ण होनेसे एक लोहा बच गया था, जो कनिष्ठिका अँगुलीके बराबर था। उसको एक मत्स्य निगल गया। उस मत्स्यको निषादने पकड़ा और उसके पेटसे उस मूसलावशेष

लोहेको निकालकर बाणके आगेका फल बनवा लिया। कुछ दिनोंके बाद समस्त यादव परस्पर आक्षेपयुक्त वचन कहते हुए उन सरकंडोंद्वारा एक दूसरेसे लड़कर नष्ट हो गये। भगवान् श्रीकृष्ण युद्धसे श्रान्त होकर कल्पवृक्षकी छायामें सो रहे थे। उसी समय वह निषाद धनुष-बाण लेकर शिकार खेलनेके लिये आया। भगवान् श्रीकृष्णके सिवा समस्त यादव युद्धमें काम आये थे, वे सभी मरनेके पश्चात् अपने-अपने देवस्वरूपमें मिल गये। इस प्रकार मूसलद्वारा सबका संहार करके अकेले भगवान् श्रीकृष्ण अनेक लताओंसे व्याप्त महान् कल्पवृक्षकी छायामें लेटे हुए अपने चतुर्व्यूहगत वासुदेवस्वरूपका चिन्तन कर रहे थे। वे घुटनेपर अपना एक पैर रखे मानव लोकका त्याग करनेको उद्यत थे। उसी समय मृगयासे जीविका चलानेवाले उस निषादने कालके प्रभावसे चक्र, वज्र, ध्वजा और अङ्कुश आदि चिह्नोंसे अङ्कित भगवान्के अत्यन्त लाल तलवेको (मृग जानकर) लक्ष्य करके बींध डाला। उसके बाद उसने भगवान् श्रीकृष्णको पहचाना। फिर तो महान् भयसे पीड़ित हो वह थर-थर काँपने लगा और दोनों हाथ जोड़कर बोला—'नाथ! मुझसे बड़ा अपराध हुआ, क्षमा करें।' यों कहकर वह भगवान्के चरणोंमें पड़ गया।

निषादको इस अवस्थामें देख भगवान् श्रीकृष्णने अपने अमृतमय हाथोंसे उठाया और यह कहकर कि 'तुमने कोई अपराध नहीं किया है।' उसे आश्वासन दिया। इसके बाद उसे योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य पुनरावृत्तिरहित सनातन विष्णुलोक प्रदान किया। फिर तो वह स्त्री और पुत्रोंसहित मानव-शरीरका त्याग करके दिव्य विमानपर बैठा तथा सहस्रों सूर्योंके समान प्रकाशमान हिरण्मय वासुदेव नामक विष्णुधामको चला गया। इसी समय दारुक रथ लेकर भगवान् श्रीकृष्णके समीप आये। भगवान्ने कहा—'मेरे स्वरूपभूत अर्जुनको यहाँ बुला ले आओ।' आज्ञा पाकर दारुक मनके समान वेगशाली रथपर आरूढ़ हो तुरंत ही अर्जुनके समीप जा पहुँचे। अर्जुन उस रथपर बैठकर आये और भगवान्को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, 'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'मैं परमधामको जाऊँगा। तुम द्वारका जाकर वहाँसे रुक्मिणी आदि आठ पटरानियोंको यहाँ ले आकर मेरे शरीरके साथ भेजो।' अर्जुन दारुकके साथ द्वारकापुरीको गये। इधर भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण जगत्के सृष्टि, पालन और संहारके हेतुभूत, सम्पूर्ण क्षेत्रोंके ज्ञाता, अन्तर्यामी, योगियोंद्वारा ध्यान करनेके योग्य, अपने वासुदेवात्मक स्वरूपको धारण करके गरुड़पर आरूढ़ हो महर्षियोंके द्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए परमधामको चले गये। अर्जुनने द्वारकामें वसुदेव और उग्रसेनसे तथा रुक्मिणी आदि पटरानियोंसे सारा हाल कह सुनाया। यह सुनकर श्रीकृष्णमें अनुराग रखनेवाले समस्त पुरवासी पुरुष और अन्तःपुरकी स्त्रियाँ द्वारकापुरी छोड़कर बाहर निकल आयीं तथा वसुदेव, उग्रसेन और अर्जुनके साथ शीघ्र ही श्रीहरिके समीप आयीं, वहाँ पहुँचकर आठों रानियाँ श्रीकृष्णके स्वरूपमें मिल गयीं। वसुदेव, उग्रसेन और अक्रूर आदि सम्पूर्ण श्रेष्ठ यादव अपना-अपना शरीर त्यागकर सनातन वासुदवको प्राप्त हुए। रेवती देवीने बलरामजीके शरीरको अङ्कमें लेकर चिताकी अग्निमें प्रवेश किया और दिव्य विमानपर बैठकर वे अपने स्वामीके निवासस्थान दिव्य सङ्कर्षण लोकमें चली गयीं। इसी प्रकार रुक्मीकी पुत्री प्रद्युम्नके साथ, ऊषा अनिरुद्धके साथ तथा यदुकुलकी अन्य स्त्रियाँ अपने-अपने पतियोंके शरीरके साथ अग्निप्रवेश कर गयीं। उन सबका और्ध्वदैहिक कर्म अर्जुनने ही सम्पन्न किया। उस समय दारुक भी दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुग्रीव नामक दिव्य रथपर आरूढ़ हो परमधामको चले गये। पारिजात वृक्ष और देवताओंकी सुधर्मा सभा—ये दोनों इन्द्रलोकमें पहुँच गये। तत्पश्चात् द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी! अर्जुन भी यह कहते हुए कि 'अब मेरा भाग्य नष्ट हो गया' सायंकालीन सूर्यकी भाँति तेजोहीन होकर अपनी पुरीमें चले आये।

इस प्रकार सम्पूर्ण देवताओंके हितके लिये तथा पृथ्वीके समस्त भारका नाश करनेके लिये भगवान्ने यदुकुलमें अवतार लिया और सम्पूर्ण राक्षसों तथा

पृथ्वीके महान् भारका नाश करके नन्दके व्रज, मथुरा और द्वारकामें रहनेवाले समस्त चराचर प्राणियोंको कालधर्मसे मुक्त किया। फिर उन्हें अपने शाश्वत, योगिगम्य, हिरण्मय, रम्य एवं परमैश्वर्यमय पदमें स्थापित करके वे परमधाममें दिव्य पटरानियों आदिसे सेवित हो सानन्द निवास करने लगे।

पार्वती ! यह भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त अद्भुत चरित्र सब प्रकारके उत्तम फल प्रदान करनेवाला है। मैंने इसे संक्षेपमें ही कहा है। जो वासुदेवके इस चरित्रका श्रीहरिके समीप पाठ, श्रवण अथवा चिन्तन करता है, वह भगवान्के परमपदको प्राप्त होता है। महापातक अथवा उपपातकसे युक्त मनुष्य भी बालकृष्णके चरित्रको सुनकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्वारकामें विराजमान रुक्मिणीसहित श्रीहरिका स्मरण करके मनुष्य निश्चय ही पापरहित हो महान् ऐश्वर्यरूप परमधामको प्राप्त होता है। जो संग्राममें, दुर्गम सङ्कटमें तथा शत्रुओंसे घिर जानेपर सब देवताओंके नेता भगवान् विष्णुका ध्यान करता है, वह विजयी होता है। इस विषयमें बहुत कहनेकी क्या आवश्यकता, जो सब कामनाओंका फल प्राप्त करना चाहता हो, वह विद्वान् मनुष्य **'श्रीकृष्णाय नमः'** इस मन्त्रका उच्चारण करता रहे। 'सबको अपनी ओर खींचनेवाले कृष्ण, सबके हृदयमें निवास करनेवाले वासुदेव, पाप-तापको हरनेवाले श्रीहरि, परमात्मा तथा प्रणतजनोंका क्लेश दूर करनेवाले भगवान् गोविन्दको बारम्बार नमस्कार है।'* जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको जाता है। भगवान् जनार्दन सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर हैं। वे समस्त लोकोंकी रक्षा करनेके लिये ही भिन्न-भिन्न अवस्थाओंको ग्रहण करते हैं। वे ही किसी विशेष उद्देश्यकी सिद्धिके लिये बुद्धरूपमें अवतीर्ण होते हैं। कलियुगके अन्तमें एक ब्राह्मणके घरमें अवतीर्ण हो भगवान् जनार्दन समस्त म्लेच्छोंका संहार करेंगे। ये सब जगदीश्वरकी वैभवावस्थाएँ हैं।

★

श्रीविष्णु-पूजनकी विधि तथा वैष्णवोचित आचारका वर्णन

पार्वतीजीने कहा—भगवन् ! आपने श्रीहरिकी वैभवावस्थाका पूरा-पूरा वर्णन किया। इसमें भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णका चरित्र बड़ा ही विस्मयजनक है। अहो ! भगवान् श्रीराम और परमात्मा श्रीकृष्णकी लीला कितनी अद्भुत है ? देवेश्वर ! मैं तो इस कथाको सौ कल्पोंतक सुनती रहूँ तो भी मेरा मन कभी इससे तृप्त नहीं होगा। अब मैं इस समय भगवान् विष्णुके उत्तम माहात्म्य और पूजनविधिका श्रवण करना चाहती हूँ।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि ! मैं परमात्मा श्रीहरिके स्थापन और पूजनका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान्का विग्रह दो प्रकारका बताया गया है—एक तो 'स्थापित' और दूसरा 'स्वयं व्यक्त।' पत्थर, मिट्टी, लकड़ी अथवा लोहा आदिसे श्रीहरिकी आकृति बनाकर श्रुति, स्मृति तथा आगममें बतायी हुई विधिके अनुसार जो भगवान्की स्थापना होती है, वह 'स्थापित विग्रह' है तथा जहाँ भगवान् अपने-आप प्रकट हुए हों, वह 'स्वयं व्यक्त विग्रह' कहलाता है। भगवान्का विग्रह स्वयं व्यक्त हो या स्थापित, उसका पूजन अवश्य करना चाहिये। देवताओं और महर्षियोंके पूजनके लिये जगत्के स्वामी सनातन भगवान् विष्णु स्वयं ही प्रत्यक्षरूपसे उनके सामने प्रकट हो जाते हैं। जिसका भगवान्के जिस विग्रहमें मन लगता है, उसके लिये वे उसी रूपमें भूतलपर प्रकट होते हैं; अतः उसी रूपमें भगवान्का सदा पूजन करना चाहिये और उसीमें सदा

---

* किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकामफलस्पृहः। कृष्णाय नम इत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद् बुधः॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने। प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥ (२७९। १०६-१०७)

अनुरक्त रहना चाहिये। पार्वती! श्रीरङ्गक्षेत्रमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुका विधिपूर्वक पूजन करना चाहिये। काशीपुरीमें पापहारी भगवान् माधव मेरे भी पूजनीय हैं। जिस-जिस रमणीय भवनमें सनातन भगवान् स्वयं व्यक्त होते हैं, वहाँ-वहाँ जाकर मैं आनन्दका अनुभव किया करता हूँ। भगवान्‌का दर्शन हो जानेपर वे मनोवाञ्छित वरदान देते हैं। इस पृथ्वीपर प्रतिमामें अज्ञानीजनोंको भी सदा भगवान्‌का सान्निध्य प्राप्त होता रहता है। परम पुण्यमय जम्बूद्वीप और उसमें भी भारतवर्षके भीतर प्रतिमामें भगवान् विष्णु सदा सन्निहित रहते हैं; अतः मुनियों तथा देवताओंने भारतवर्षमें ही तप, यज्ञ और क्रिया आदिके द्वारा सदा श्रीविष्णुका सेवन किया है। इन्द्रद्युम्नसरोवर, कूर्मस्थान, सिंहाचल, करवीरक, काशी, प्रयाग, सौम्य, शालग्रामार्चन, द्वारका, नैमिषारण्य, बदरिकाश्रम, कृतशौचतीर्थ, पुण्डरीकतीर्थ, दण्डकवन, मथुरा, वेङ्कटाचल, श्वेताद्रि, गरुड़ाचल, काञ्ची, अनन्तशयन, श्रीरङ्ग, भैरवगिरि, नारायणाचल, वाराहतीर्थ और वामनाश्रम—इन सब स्थानोंमें भगवान् श्रीहरि स्वयं व्यक्त हुए हैं; अतः उपर्युक्त स्थान सम्पूर्ण कामनाओं तथा फलोंको देनेवाले हैं। इनमें श्रीजनार्दन स्वयं ही सन्निहित होते हैं। ऐसे ही स्थानोंमें जो भगवान्‌का विग्रह है, उसे मुनिजन 'स्वयं व्यक्त' कहते हैं। महान् भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ पुरुष यदि विधिपूर्वक भगवान्‌की स्थापना करके मन्त्रके द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त करावे तो उस स्थापनाका विशेष महत्त्व है। गाँवोंमें अथवा घरोंमें जो ऐसे विग्रह हों, उनमें भगवान्‌का पूजन करना चाहिये। सत्पुरुषोंने घरपर शालग्रामशिलाकी पूजा उत्तम बतायी है।

पार्वती! भगवान्‌की मानसिक पूजाका सबके लिये समानरूपसे विधान है, अतः अपने-अपने अधिकारके अनुसार सबको जगदीश्वरकी पूजा करनी चाहिये। जो भगवान्‌के सिवा दूसरे किसी देवताके भक्त नहीं हैं; भगवत्प्राप्तिके सिवा और किसी फलके साधक नहीं हैं, जो वेदवेत्ता, ब्रह्मतत्त्वज्ञ, वीतराग, मुमुक्षु, गुरुभक्त, प्रसन्नात्मा, साधु, ब्राह्मण अथवा इतर मनुष्य हैं, उन सबको सदा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह वेद और स्मृतियोंमें बताये हुए उत्तम सदाचारका सदा पालन करे। उनमें बताये हुए कर्मोंका कभी उल्लङ्घन न करे। शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम), तप (धर्मके लिये क्लेशसहन एवं तितिक्षा), शौच (बाहर-भीतरकी पवित्रता), सत्य (मन, वाणी और क्रियाद्वारा सत्यका पालन), मांस न खाना, चोरी न करना और किसी भी जीवकी हिंसा न करना—यह सबके लिये धर्मका साधन है।*

रातके अन्तमें उठकर विधिपूर्वक आचमन करे। फिर गुरुजनोंको नमस्कार करके मन-ही-मन भगवान् विष्णुका स्मरण करे। मौन हो पवित्रभावसे भक्तिपूर्वक सहस्रनामका पाठ करे। तत्पश्चात् गाँवसे बाहर जाकर विधिपूर्वक मल-मूत्रका त्याग करे। फिर उचित रूपसे शरीरकी शुद्धि करके कुल्ला करे और शुद्ध एवं पवित्र हो दन्तधावन करके विधिपूर्वक स्नान करे। तुलसीके मूलभागकी मिट्टी और तुलसीदल लेकर मूलमन्त्रसे[1] और गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके मन्त्रसे ही उसको सम्पूर्ण शरीरमें लगावे। फिर अघमर्षण करके स्नान करे। गङ्गाजी भगवान्‌के चरणोंसे प्रकट हुई हैं। अतः उनके निर्मल जलमें गोता लगाकर अघमर्षण-सूक्तका जप करे। फिर आचमन करके पुरुषसूक्तके मन्त्रोंसे क्रमशः मार्जन करे। पुनः जलमें डुबकी लगाकर अट्ठाईस या एक सौ आठ बार मूलमन्त्रका जप करे। इसके बाद वैष्णव-पुरुष उक्त मन्त्रसे ही जलको अभिमन्त्रित करके उससे आचमन करे। तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण करे। फिर वस्त्र निचोड़ ले। उसके बाद आचमन करके धौतवस्त्र पहने।

---

* शमो दमस्तपः शौचं सत्यमामिषवर्जनम्। अस्तेयमेवाहिंसा च सर्वेषां धर्मसाधनम्॥ (२८०। ३९)

१-'ॐ नमो नारायणाय' यह अष्टाक्षर मन्त्र ही मूलमन्त्र है।

वैष्णव पुरुष निर्मल एवं रमणीय मृत्तिका ले उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके ललाट आदिमें लगावे। आलस्य छोड़कर परिगणित अङ्गोंमें ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे। उसके बाद विधिपूर्वक सन्ध्योपासना करके गायत्रीका जप करे। तदनन्तर मनको संयममें रखकर घर जाय और पैर धो मौनभावसे आचमन करके एकाग्रचित्त हो पूजा-मण्डपमें प्रवेश करे।

एक सुन्दर सिंहासनको फूलोंसे सजाकर भगवान् लक्ष्मीनारायणको विराजमान करे। फिर गन्ध, पुष्प और अक्षत आदिके द्वारा विधिपूर्वक भगवान्का पूजन आरम्भ करे। विग्रह स्थापित, स्वयं-व्यक्त अथवा शालग्रामशिला—कोई भी क्यों न हो, श्रुति, स्मृति और आगमोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार उसका पूजन करना उचित है। वैष्णव पुरुष शुद्धचित्त हो गुरुके उपदेशके अनुसार भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुका यथायोग्य पूजन करे। वेदों तथा ब्राह्मणग्रन्थोंमें बतायी हुई पूजा 'श्रौत' कहलाती है। वासिष्ठी पद्धतिके अनुसार की जानेवाली पूजाको 'स्मार्त' कहते हैं। तथा पाञ्चरात्रमें बताया हुआ विधान 'आगम' कहलाता है। भगवान् विष्णुकी आराधना बहुत ही उत्तम कर्म है। इस क्रियाका कभी लोप नहीं करना चाहिये। आवाहन, आसन, अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल एवं नमस्कार आदि उपचारोंके द्वारा अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक श्रीविष्णुकी आराधना करे।* पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचा तथा मूलमन्त्र—इन दोनोंहीसे वैष्णव पुरुष षोडशोपचार समर्पण करे। पुनः प्रत्युपचार अर्पण करके पुष्पाञ्जलि दे। वैष्णवको चाहिये कि वह मुद्राद्वारा भगवान् जगन्नाथका आवाहन करे। फिर फूल और मुद्रासे ही आसन दे। इसी प्रकार क्रमशः पाद्य, अर्घ्य, आचमन और स्नानके लिये भिन्न-भिन्न पात्रोंमें निर्मल जल समर्पित करे। उस जलमें माङ्गलिक द्रव्योंके साथ तुलसीदल मिला हो। इसके बाद उक्त दोनों ही प्रकारके मन्त्रोंसे प्रत्युपचार अर्पण करे। सुगन्धित तेलसे भगवान्को अभ्यङ्ग लगावे। कस्तूरी और चन्दनसे उनके श्रीअङ्गमें उबटन लगावे। फिर मन्त्रका पाठ करते हुए सुगन्धित जलसे भगवान्को स्नान करावे। तत्पश्चात् दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे विधिपूर्वक भगवान्का शृङ्गार करे। फिर उन्हें मधुपर्क दे तथा भक्तिके साथ सुगन्धित चन्दन और सौरभयुक्त सुन्दर पुष्प निवेदन करे। इसके बाद दशाङ्ग या अष्टाङ्ग धूप, मनोहर दीप और भाँति-भाँतिके नैवेद्य भेंट करे। नैवेद्यमें खीर और मालपूआ भी होने चाहिये। नैवेद्यके अन्तमें आचमन कराकर भक्तियुक्त हृदयसे कर्पूर-मिश्रित ताम्बूल निवेदित करे। फिर घीकी बत्तियोंसे आरती करके भगवान्को फूलोंकी माला पहनावे। तदनन्तर समीप जा विनीत-भावसे प्रणाम करके उत्तम स्तोत्रोंद्वारा भगवान्का स्तवन करे। फिर उन्हें गरुड़के अङ्कमें शयन कराकर मङ्गलार्घ्य निवेदन करे। उसके बाद पवित्र नामोंका कीर्तन करके होम करे। भगवान्को भोग लगाये हुए नैवेद्यसे जो शेष बचे, उसीसे अग्निमें हवन करे। प्रत्येक आहुतिके साथ पुरुषसूक्त अथवा मङ्गलमय श्रीसूक्तकी एक-एक ऋचाका पाठ करे। वेदोक्त विधिसे स्थापित अग्निमें घृतमिश्रित हविष्यके द्वारा उपर्युक्त मन्त्ररत्नका एक सौ आठ या अट्ठाईस बार जप करके हवन करना चाहिये और हवनकालमें यज्ञस्वरूप महाविष्णुका ध्यान भी करना चाहिये।

शुद्ध जाम्बूनद नामक सुवर्णके समान जिनका श्याम वर्ण है, जो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले हैं, जिनमें अङ्ग-उपाङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद-वेदान्तोंका ज्ञान भरा हुआ है तथा जो श्रीदेवीके साथ सुशोभित हो रहे हैं, उस भगवान्का ध्यान करके होम करना चाहिये। मन्त्रद्वारा होम करनेके पश्चात् नामोंका उच्चारण करके एक-एकके लिये एक-एक आहुति देनी चाहिये।

---

* आवाहनासनार्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः । धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलाद्यैर्नमस्कृतैः ॥
कुर्यादाराधनं विष्णोर्यथाशक्ति मुदान्वितः। (२८० । ५७-५८)

भगवद्भक्तोंमें श्रेष्ठ पुरुष भगवान्‌के 'नित्य भक्तों'के उद्देश्यसे उनके नाम ले-लेकर आहुति दे। पहले क्रमशः भूदेवी, लीलादेवी और विमला आदि शक्तियाँ होमकी अधिकारिणी हैं। फिर अनन्त, गरुड आदि, तदनन्तर वासुदेव आदि, तत्पश्चात् शक्ति आदि, इनके बाद केशव आदि विग्रह, संकर्षण आदि व्यूह, मत्स्य-कूर्म आदि अवतार, चक्र आदि आयुध, कुमुद आदि देवता, चन्द्र आदि देव, इन्द्र आदि लोकपाल तथा धर्म आदि देवता क्रमशः होमके अधिकारी हैं; इन सबका हवन और विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। इस प्रकार भगवद्भक्त पुरुष नित्य-पूजनकी विधिमें प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो हवन करे। इस हवनका नाम 'वैकुण्ठहोम' है।

गृहमें पूजा करनेपर उस घरके दरवाजेपर पञ्चयज्ञकी विधिसे बलि अर्पण करे, फिर आचमन कर ले। तत्पश्चात् कुशके आसनपर काला मृगचर्म बिछाकर उस शुद्ध आसनके ऊपर बैठे। मृगचर्म अपने-आप मरे हुए मृगका होना चाहिये। पद्मासनसे बैठकर पहले भूतशुद्धि करे, फिर जितेन्द्रिय पुरुष मन्त्रपाठपूर्वक तीन बार प्राणायाम कर ले। तदनन्तर मन-ही-मन यह भावना करे कि 'मेरे हृदय-कमलका मुख ऊपरकी ओर है और वह विज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे विकसित हो रहा है।' इसके बाद श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष उस कमलकी वेदत्रयीमयी कर्णिकामें क्रमशः अग्निबिम्ब, सूर्यबिम्ब और चन्द्रबिम्बका चिन्तन करे। उन बिम्बोंके ऊपर नाना प्रकारके रत्नोंद्वारा निर्मित पीठकी भावना करे। इसके ऊपर बालरविके सदृश कान्तिमान् अष्टविध ऐश्वर्यरूप अष्टदलकमलका चिन्तन करे। प्रत्येक दल अष्टाक्षर मन्त्रके एक-एक अक्षरके रूपमें हो। फिर ऐसी भावना करे कि उस अष्टदल-कमलमें श्रीदेवीके साथ भगवान् विष्णु विराजमान हैं, जो कोटि चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान हो रहे हैं। उनके चार भुजाएँ, सुन्दर श्रीअङ्ग तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा है। पद्म-पत्रके समान विशाल नेत्र शोभा पा रहे हैं। वे समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देते हैं। उनके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न है, वहीं कौस्तुभमणिका प्रकाश छा रहा है। भगवान् पीत वस्त्र, विचित्र आभूषण, दिव्य शृङ्गार, दिव्य चन्दन, दिव्य पुष्प, कोमल तुलसीदल और वनमालासे विभूषित हैं। कोटि-कोटि बालसूर्यके सदृश उनकी सुन्दर कान्ति है। उनके श्रीविग्रहसे सटकर बैठी हुई श्रीदेवी भी सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देती हैं।

इस प्रकार ध्यान करते हुए एकाग्रचित्त एवं शुद्ध हो अष्टाक्षरमन्त्रका एक हजार या एक सौ बार यथाशक्ति जप करे। फिर भक्तिपूर्वक मानसिक पूजा करके विराम करे। उस समय जो भगवद्भक्त पुरुष वहाँ पधारे हों, उन्हें अन्न-जल आदिसे सन्तुष्ट करे और जब वे जाने लगें तो उनके पीछे-पीछे थोड़ी दूर जाकर विदा करे। देवताओं तथा पितरोंका विधिपूर्वक पूजन एवं तर्पण करे और अतिथि एवं भृत्यवर्गोंका यथावत् सत्कार करके सबके अन्तमें वह और उसकी पत्नी भोजन करे। यक्ष, राक्षस और भूतोंका पूजन सदा त्याग दे। जो श्रेष्ठ विप्र उनका पूजन करता है, वह निश्चय ही चाण्डाल हो जाता है। ब्रह्मराक्षस, वेताल, यक्ष तथा भूतोंका पूजन मनुष्योंके लिये महाघोर कुम्भीपाक नामक नरककी प्राप्ति करानेवाला है। यक्ष और भूत आदिके पूजनसे कोटि जन्मोंके किये हुए यज्ञ, दान और शुभ कर्म आदि पुण्य तत्काल नष्ट हो जाते हैं।* जो यक्षों, पिशाचों तथा तमोगुणी देवताओंको निवेदित किया हुआ अन्न खाता है, वह पीब और रक्त भोजन करनेवाला होता है। जो स्त्री, यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षसोंकी पूजा करती है,

---

* यक्षराक्षसभूतानामर्चनं वर्जयेत् सदा। यो महान् कुरुते विप्रः स चाण्डालो भवेद् ध्रुवम्॥
ब्रह्मराक्षसवेतालयक्षभूतार्चनं नृणाम्। कुम्भीपाकमहाघोरनरकप्राप्तिसाधनम्॥
कोटिजन्मकृतं पुण्यं यज्ञदानक्रियादिकम्। सद्यः सर्वं लयं याति यक्षभूतादिपूजनात्॥ (२८०। ९४, ९६-९७)

वह नीचे मुँह किये घोर कालसूत्र नामक नरकमें गिरती है।* अतः यक्ष आदि तामस देवताओंकी पूजा त्याग देनी चाहिये।

वैष्णव पुरुष विश्ववन्द्य भगवान् नारायणका पूजन करके उनके चारों ओर विराजमान देवताओंका पूजन करे। भगवान्‌को भोग लगाये हुए अन्नमेंसे निकालकर उसीसे उनके लिये बलि निवेदन करे। भगवत्प्रसादसे ही उनके निमित्त होम भी करे। देवताओंके लिये भी भगवत्-प्रसादस्वरूप हविष्यका ही हवन करे। पितरोंको ही प्रसाद अर्पण करे; इससे वह सब फल प्राप्त करता है। प्राणियोंको पीड़ा देना विद्वानोंकी दृष्टिमें नरकका कारण है। पार्वती ! मनुष्य दूसरोंकी वस्तुको जो बिना दिये ही ले लेता है, वह भी नरकका कारण है। अगम्या (परायी) स्त्रीके साथ संभोग, दूसरोंके धनका अपहरण तथा अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करनेसे तत्काल नरककी प्राप्ति होती है। जो अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़कर दूसरी स्त्रीके साथ संभोग करता है, उसका वह कर्म 'अगम्यागमन' कहलाता है, जो तत्काल नरककी प्राप्तिका कारण है। पतित, पाखण्डी और पापी मनुष्योंके संसर्गसे मनुष्य अवश्य नरकमें पड़ता है। उनसे सम्पर्क रखनेवालेका भी संसर्ग छोड़ देना चाहिये। एकान्ती पुरुष महापातकयुक्त ग्रामको छोड़ दे और परमैकान्ती मनुष्य वैसे देशका भी परित्याग कर दे। अपने वर्ण तथा आश्रमके अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति आदिका साधन वैष्णव साधन माना गया है। जो भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कर्म, ज्ञान आदिका अनुष्ठान करता है, वह वासुदेवपरायण ब्राह्मण 'एकान्ती' कहलाता है। वैष्णव पुरुष निषिद्ध कर्मको मन-बुद्धिसे भी त्याग दे। एकान्ती पुरुष अपने धर्मकी निन्दा करनेवाले शास्त्रको मनसे भी त्याग दे और परम एकान्ती भक्त हेय-बुद्धिसे उसका परित्याग करे।

कर्म तीन प्रकारका माना गया है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। इसी प्रकार मुनियोंने ज्ञानके भेदोंका भी वर्णन किया है—कृत्याकृत्यविवेक-ज्ञान, परलोकचिन्तन-ज्ञान, विष्णुप्राप्तिसाधन-ज्ञान तथा विष्णुस्वरूप-ज्ञान—ये चार प्रकारके ज्ञान हैं। पार्वती ! नैमित्तिक कृत्यमें भगवान्‌का विशेषरूपसे विधिवत् पूजन करना चाहिये। कार्तिकमासमें प्रतिदिन चमेलीके फूलोंसे श्रीहरिकी पूजा करे, उन्हें अखण्ड दीप दे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखकर दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करे। फिर कार्तिकके अन्तमें ब्राह्मणोंको भोजन करावे, इससे वह श्रीहरिके सायुज्यको प्राप्त होता है। पौषमासमें सूर्योदयके पहले उठकर लगातार एक मासतक उत्पल तथा श्याम श्वेत कनेर पुष्पोंसे भगवान् विष्णुका पूजन करे। तत्पश्चात् यथाशक्ति धूप, दीप और नैवेद्य निवेदन करे। मासकी समाप्ति होनेपर श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे मनुष्य निश्चय ही एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका फल प्राप्त करता है। माघमासमें सूर्योदयके समय विशेषतः नदीके जलमें स्नान करके उत्पल (कमल) के पुष्पोंसे माधवकी पूजा करनी चाहिये। और उन्हें भक्तिपूर्वक घृतमिश्रित दिव्य खीरका भोग लगाना चाहिये। चैत्रमासमें वकुल (मौलसिरी) और चम्पाके फूलोंसे भगवान्‌की पूजा करके गुड़मिश्रित अन्नका भोग लगावे। तदनन्तर मासकी समाप्ति होनेपर एकाग्रचित्त हो वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे प्रतिदिन एक हजार वर्षोंकी पूजाका पुण्य प्राप्त होता है। वैशाखमासमें शतपत्र[1] और महोत्पलके[2] पुष्पोंसे विधिवत् भगवान्‌का पूजन करके उन्हें दही, अन्न और फलके साथ गुड़ और जल भक्ति-पूर्वक निवेदन करे। इससे लक्ष्मीसहित जगदीश्वर श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। ज्येष्ठमासमें श्वेत कमल, गुलाब, कुमुद और उत्पलके पुष्पोंसे भगवान् हृषीकेशका पूजन करके उन्हें आमके फलोंके साथ अन्न भोग लगावे। भक्तिपूर्वक ऐसा करनेसे मनुष्यको कोटि गोदानका फल

---

* या नारी पूजयेद् यक्षान् पिशाचोरगराक्षसान्। सा याति नरकं घोरं कालसूत्रमधोमुखी॥ (२८०। १०१)

१-२ कमलके भेद।

प्राप्त होता है। फिर मासके अन्तमें वैष्णवोंको भोजन करानेसे सबका फल अनन्त हो जाता है। आषाढ़मासमें देवदेवेश्वर लक्ष्मीपतिकी प्रतिदिन श्रीपुष्पोंसे पूजा करे और उन्हें खीरका भोग लगावे। फिर मासकी समाप्ति होनेपर उत्तम भगवद्भक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे। ऐसा करनेसे वैष्णव पुरुष साठ हजार वर्षोंकी पूजाका फल पाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। श्रावणमासमें नागकेसर और केवड़ेसे भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी पूजा करनेसे मनुष्यका फिर इस लोकमें जन्म नहीं होता। उस समय भक्तिके साथ घी और शक्कर मिले हुए पूएका नैवेद्य निवेदन करे और श्रेष्ठ भगवद्भक्त ब्राह्मणोंको भोजन करावे। भादोंमें कुन्द और कटसरैयाके फूलोंसे पूजा करके खीर भोग लगावे। आश्विनमें नीलकमलसे मधुसूदनकी पूजा करे और भक्तिके साथ उन्हें खीर-पूआ निवेदन करे। इसी प्रकार कार्तिकमें कोमल तुलसीदलोंके द्वारा भक्तिपूर्वक अच्युतका पूजन करनेसे उनका सायुज्य प्राप्त होता है। दूध, घी और शक्करकी बनी हुई मिठाई, खीर और मालपूआ—इन्हें भक्तिपूर्वक एक-एक करके भगवान्‌को निवेदन करे।

अमावास्या तिथि, शनिवार, वैष्णवनक्षत्र (श्रवण), सूर्यसंक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर अपनी शक्तिके अनुसार भगवान् विष्णुका विशेषरूपसे पूजन करे। श्रेष्ठ द्विजको उचित है कि गुरुके उत्क्रमणके दिन तथा श्रीहरिके अवतारोंके जन्म-नक्षत्रोंमें अपनी शक्तिके अनुसार वैष्णव-याग करे। उसमें वेदमन्त्रोंका उच्चारण करके प्रत्येक ऋचाके साथ भगवान्‌को पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। यथाशक्ति वैष्णव ब्राह्मणोंको भोजन करावे और दक्षिणा दे। ऐसा करनेसे वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार करके वैष्णवपद (वैकुण्ठधाम)को प्राप्त होता है। श्रेष्ठ वैष्णव यदि सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा भगवान्‌का यजन करनेमें असमर्थ हो तो केवल वैष्णव अनुवाकोंद्वारा लगातार सात राततक प्रतिदिन एक सहस्र पुष्पाञ्जलि समर्पण करे और हविष्यसे हवन करके भगवान्‌का यजन करे। विद्वान् पुरुष विशेषतः श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंका पूजन करे। यज्ञान्तमें अपने वैभवके अनुसार अवभृथस्नानका उत्सव करे। अवभृथस्नान भी उसे वैष्णव अनुवाकोंद्वारा ही करना चाहिये। विधिपूर्वक स्नान करके एक सुन्दर पात्रमें आचार्यके चरणोंको भक्तिपूर्वक पखारे। फिर गन्ध, पुष्प, वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा पूजा करे। यथाशक्ति ताम्बूल और फूलोंसे सत्कार करे और अन्न-पान आदिसे भोजन कराकर बारम्बार प्रणाम करे। जाते समय गाँवकी सीमातक पहुँचाने जाय और वहाँ प्रणाम करके उन्हें विदा करे।

इस प्रकार जीवनभर आलस्य छोड़कर भगवान् और उनके भक्तोंका विशेषरूपसे पूजन करना चाहिये। समस्त आराधनाओंमें श्रीविष्णुकी आराधना सबसे श्रेष्ठ है। उससे भी उनके भक्तोंकी पूजा करनी अधिक श्रेष्ठ है। जो भगवान् गोविन्दकी पूजा करके उनके भक्तोंका पूजन नहीं करता, उसे भगवद्भक्त नहीं जानना चाहिये। वह केवल दम्भी है। अतः सर्वथा प्रयत्न करके श्रीविष्णुभक्तोंका पूजन करना चाहिये। उनके पूजनसे मनुष्य समस्त दुःखराशिके पार हो जाता है। पार्वती! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीविष्णुकी श्रेष्ठ आराधना, नित्य-नैमित्तिक कृत्य तथा भगवद्भक्तोंकी पूजाका वर्णन किया है।

★

श्रीराम-नामकी महिमा तथा श्रीरामके १०८ नामका माहात्म्य

पार्वतीजीने कहा—नाथ! आपने उत्तम वैष्णवधर्मका भलीभाँति वर्णन किया। वास्तवमें परमात्मा श्रीविष्णुका स्वरूप गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय है। सर्वदेववन्दित महेश्वर! मैं आपके प्रसादसे धन्य और कृतकृत्य हो गयी। अब मैं भी सनातन देव श्रीहरिका पूजन करूँगी।

महादेवजी बोले—देवि! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! तुम सम्पूर्ण इन्द्रियोंके स्वामी भगवान्

लक्ष्मीपतिका पूजन अवश्य करो। भद्रे ! मैं तुम-जैसी वैष्णवी पत्नीको पाकर अपनेको कृतकृत्य मानता हूँ।

वसिष्ठजी कहते हैं—तदनन्तर वामदेवजीके उपदेशानुसार पार्वतीजी प्रतिदिन श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करने लगीं। एक दिन परम मनोहर कैलासशिखरपर भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करके भगवान् शङ्करने पार्वतीदेवीको अपने साथ भोजन करनेके लिये बुलाया। तब पार्वतीदेवीने कहा—'प्रभो ! मैं श्रीविष्णुसहस्रनामका पाठ करनेके पश्चात् भोजन करूँगी, तबतक आप भोजन कर लें।' यह सुनकर महादेवजीने हँसते हुए कहा—'पार्वती ! तुम धन्य हो, पुण्यात्मा हो; क्योंकि भगवान् विष्णुमें तुम्हारी भक्ति है। देवि ! भाग्यके बिना श्रीविष्णु-भक्तिका प्राप्त होना बहुत कठिन है। सुमुखि ! मैं तो 'राम ! राम ! राम !' इस प्रकार जप करते हुए परम मनोहर श्रीराम-नाममें ही निरन्तर रमण किया करता हूँ। राम-नाम सम्पूर्ण सहस्रनामके समान है। पार्वती ! रकारादि जितने नाम हैं, उन्हें सुनकर रामनामकी आशङ्कासे मेरा मन प्रसन्न हो जाता है।* अतः महादेवि ! तुम राम-नामका उच्चारण करके इस समय मेरे साथ भोजन करो।'

यह सुनकर पार्वतीजीने राम-नामका उच्चारण करके भगवान् शङ्करके साथ बैठकर भोजन किया। इसके बाद उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर पूछा—'देवेश्वर ! आपने राम-नामको सम्पूर्ण सहस्रनामके तुल्य बतलाया है। यह सुनकर राम-नाममें मेरी बड़ी भक्ति हो गयी है; अतः भगवान् श्रीरामके यदि और भी नाम हों तो बताइये।'

महादेवजी बोले—पार्वती ! सुनो, मैं श्रीरामचन्द्रजीके नामोंका वर्णन करता हूँ। लौकिक और वैदिक जितने भी शब्द हैं, वे सब श्रीरामचन्द्रजीके ही नाम हैं। किन्तु सहस्रनाम उन सबमें अधिक है और उन सहस्रनामोंमें भी श्रीरामके एक सौ आठ नामोंकी प्रधानता अधिक है। श्रीविष्णुका एक-एक नाम ही सब वेदोंसे अधिक माना गया है। वैसे ही एक हजार नामोंके समान अकेला श्रीराम-नाम माना गया है। पार्वती ! जो सम्पूर्ण मन्त्रों और समस्त वेदोंका जप करता है, उसकी अपेक्षा कोटिगुना पुण्य केवल राम-नामसे उपलब्ध होता है।† शुभे ! अब श्रीरामके उन मुख्य नामोंका वर्णन सुनो, जिनका महर्षियोंने गान किया है। १ **ॐ श्रीरामः**—जिनमें योगीजन रमण करते हैं, ऐसे सच्चिदानन्दघनस्वरूप श्रीराम अथवा सीता-सहित राम। २ **रामचन्द्रः**—चन्द्रमाके समान आनन्ददायी एवं मनोहर राम। ३ **रामभद्रः**—कल्याणमय राम। ४ **शाश्वतः**—सनातन भगवान्। ५ **राजीवलोचनः**—कमलके समान नेत्रोंवाले। ६ **श्रीमान् राजेन्द्रः**—श्रीसम्पन्न राजाओंके भी राजा, चक्रवर्ती सम्राट्। ७ **रघुपुङ्गवः**—रघुकुलमें सर्वश्रेष्ठ। ८ **जानकीवल्लभः**—जनककिशोरी सीताके प्रियतम। ९ **जैत्रः**—विजयशील। १० **जितामित्रः**—शत्रुओंको जीतनेवाले। ११ **जनार्दनः**—सम्पूर्ण मनुष्योंद्वारा याचना करने योग्य। १२ **विश्वामित्रप्रियः**—विश्वामित्रजीके प्रियतम। १३ **दान्तः**—जितेन्द्रिय। १४ **शरण्यत्राणतत्परः**— शरणागतोंकी रक्षामें संलग्न। १५ **बालिप्रमथनः**—बालि नामक वानरको मारनेवाले। १६ **वाग्मी**—अच्छे वक्ता। १७ **सत्यवाक्**— सत्यवादी। १८ **सत्यविक्रमः**—सत्य-पराक्रमी। १९ **सत्यव्रतः**—सत्यका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले। २० **व्रतफलः**— सम्पूर्ण व्रतोंके प्राप्त होने योग्य फलस्वरूप। २१ **सदा हनुमदाश्रयः**— निरन्तर हनुमान्‌जीके आश्रय अथवा हनुमान्‌जीके हृदयकमलमें सदा निवास करनेवाले।

---

* राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥
रकारादीनि नामानि शृण्वतो मम पार्वति। मनः प्रसन्नतां याति रामनामाभिशङ्कया॥ (२८१। २१-२२)

† विष्णोरेकैकनामैव सर्ववेदाधिकं मतम्। तादृङ्नामसहस्राणि रामनाम समं मतम्॥
जपतः सर्वमन्त्रांश्च सर्ववेदांश्च पार्वति। तस्मात् कोटिगुणं पुण्यं रामनाम्नैव लभ्यते॥ (२८१। २७-२८)

२२ कौसलेयः—कौसल्याजीके पुत्र। **२३ खरध्वंसी**—खर नामक राक्षसका नाश करनेवाले। **२४ विराधवध-पण्डितः**—विराध नामक दैत्यका वध करनेमें कुशल। **२५ विभीषणपरित्राता**—विभीषणके रक्षक। **२६ दशग्रीवशिरोहरः**—दशशीश रावणके मस्तक काटनेवाले। **२७ सप्ततालप्रभेत्ता**—सात तालवृक्षोंको एक ही बाणसे बींध डालनेवाले। **२८ हरकोदण्ड- खण्डनः**—जनकपुरमें शिवजीके धनुषको तोड़नेवाले। **२९ जामदग्न्यमहादर्पदलनः**—परशुरामजीके महान् अभिमानको चूर्ण करनेवाले। **३० ताडकान्तकृत्**— ताड़का नामवाली राक्षसीका वध करनेवाले। **३१ वेदान्तपारः**—वेदान्तके पारङ्गत विद्वान् अथवा वेदान्तसे भी अतीत। **३२ वेदात्मा**—वेदस्वरूप। **३३ भवबन्धैकभेषजः**—संसारबन्धनसे मुक्त करनेके लिये एकमात्र औषधरूप। **३४ दूषणत्रिशिरोऽरिः**—दूषण और त्रिशिरा नामक राक्षसोंके शत्रु। **३५ त्रिमूर्तिः**—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूप धारण करनेवाले। **३६ त्रिगुणः**—त्रिगुणस्वरूप अथवा तीनों गुणोंके आश्रय। **३७ त्रयी**—तीन वेदस्वरूप। **३८ त्रिविक्रमः**—वामन अवतारमें तीन पगोंसे समस्त त्रिलोकीको नाप लेनेवाले। **३९ त्रिलोकात्मा**—तीनों लोकोंके आत्मा। **४० पुण्यचारित्रकीर्तनः**—जिनकी लीलाओंका कीर्तन परम पवित्र है, ऐसे। **४१ त्रिलोकरक्षकः**—तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले। **४२ धन्वी**—धनुष धारण करनेवाले। **४३ दण्डकारण्यवासकृत्**—दण्डकारण्यमें निवास करनेवाले। **४४ अहल्यापावनः**—अहल्याको पवित्र करनेवाले। **४५ पितृभक्तः**—पिताके भक्त। **४६ वरप्रदः**—वर देनेवाले। **४७ जितेन्द्रियः**—इन्द्रियोंको काबूमें रखनेवाले। **४८ जितक्रोधः**—क्रोधको जीतनेवाले। **४९ जितलोभः**—लोभकी वृत्तिको परास्त करनेवाले। **५० जगद्गुरुः**—अपने आदर्श चरित्रोंसे सम्पूर्ण जगत्को शिक्षा देनेके कारण सबके गुरु। **५१ ऋक्षवानरसंघाती**—वानर और भालुओंकी सेनाका संगठन करनेवाले। **५२ चित्रकूट-समाश्रयः**— वनवासके समय चित्रकूटपर्वतपर निवास करनेवाले। **५३ जयन्तत्राणवरदः**—जयन्तके प्राणोंकी रक्षा करके उसे वर देनेवाले। **५४ सुमित्रापुत्र-सेवितः**— सुमित्रानन्दन लक्ष्मणके द्वारा सेवित। **५५ सर्वदेवाधिदेवः**—सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता। **५६ मृतवानरजीवनः**—मरे हुए वानरोंको जीवित करनेवाले। **५७ मायामारीचहन्ता**—मायामय मृगका रूप धारण करके आये हुए मारीच नामक राक्षसका वध करनेवाले। **५८ महाभागः**—महान् सौभाग्यशाली। **५९ महाभुजः**—बड़ी-बड़ी बाँहोंवाले। **६० सर्वदेवस्तुतः**—सम्पूर्ण देवता जिनकी स्तुति करते हैं, ऐसे। **६१ सौम्यः**—शान्तस्वभाव। **६२ ब्रह्मण्यः**—ब्राह्मणोंके हितैषी। **६३ मुनिसत्तमः**—मुनियोंमें श्रेष्ठ। **६४ महायोगी**—सम्पूर्ण योगोंके अधिष्ठान होनेके कारण महान् योगी। **६५ महोदारः**—परम उदार। **६६ सुग्रीवस्थिर-राज्यदः**—सुग्रीवको स्थिर राज्य प्रदान करनेवाले। **६७ सर्वपुण्याधिकफलः**—समस्त पुण्योंके उत्कृष्ट फलरूप। **६८ स्मृतसर्वाघनाशनः**—स्मरण करने-मात्रसे ही सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाले। **६९ आदिपुरुषः**—ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेके कारण सबके आदिभूत अन्तर्यामी परमात्मा। **७० महापुरुषः**— समस्त पुरुषोंमें महान्। **७१ परमः पुरुषः**—सर्वोत्कृष्ट पुरुष। **७२ पुण्योदयः**—पुण्यको प्रकट करनेवाले। **७३ महासारः**—सर्वश्रेष्ठ सारभूत परमात्मा। **७४ पुराणपुरुषोत्तमः**—पुराणप्रसिद्ध क्षर-अक्षर पुरुषोंसे श्रेष्ठ लीलापुरुषोत्तम। **७५ स्मितवक्त्रः**—जिनके मुखपर सदा मुसकानकी छटा छायी रहती है, ऐसे। **७६ मितभाषी**—कम बोलनेवाले। **७७ पूर्वभाषी**—पूर्ववक्ता। **७८ राघवः**—रघुकुलमें अवतीर्ण। **७९ अनन्तगुण-**

गम्भीरः—अनन्त कल्याणमय गुणोंसे युक्त एवं गम्भीर। ८० **धीरोदात्तगुणोत्तरः*** —धीरोदात्त नायकके लोकोत्तर गुणोंसे युक्त। ८१ **मायामानुषचारित्रः**—अपनी मायाका आश्रय लेकर मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करनेवाले। ८२ **महादेवाभिपूजितः**—भगवान् शङ्करके द्वारा निरन्तर पूजित। ८३ **सेतुकृत्**—समुद्रपर पुल बाँधनेवाले। ८४ **जितवारीशः**—समुद्रको जीतनेवाले। ८५ **सर्वतीर्थमयः**—सर्वतीर्थस्वरूप। ८६ **हरिः**—पाप-तापको हरनेवाले। ८७ **श्यामाङ्गः**—श्याम विग्रहवाले। ८८ **सुन्दरः**—परम मनोहर। ८९ **शूरः**—अनुपम शौर्यसे सम्पन्न वीर। ९० **पीतवासाः**— पीताम्बरधारी। ९१ **धनुर्धरः**—धनुष धारण करनेवाले। ९२ **सर्वयज्ञाधिपः**—सम्पूर्ण यज्ञोंके स्वामी। ९३ **यज्ञः**—यज्ञस्वरूप। ९४ **जरामरणवर्जितः**—बुढ़ापा और मृत्युसे रहित। ९५ **शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता**—रामेश्वर नामक ज्योतिर्लिङ्गकी स्थापना करनेवाले। ९६ **सर्वाघगणवर्जितः**—समस्त पाप-राशिसे रहित। ९७ **परमात्मा**—परमश्रेष्ठ, नित्यशुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव। ९८ **परं ब्रह्म**—सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापी एवं सर्वाधिष्ठान परमेश्वर। ९९ **सच्चिदानन्दविग्रहः**— सत्, चित् और आनन्द ही जिनके स्वरूपका निर्देश करानेवाला है, ऐसे परमात्मा अथवा सच्चिदानन्दमयदिव्यविग्रह। १०० **परं ज्योतिः**—परम प्रकाशमय, परम ज्ञानमय। १०१ **परं धाम**—सर्वोत्कृष्ट तेज अथवा साकेतधामस्वरूप। १०२ **पराकाशः**—त्रिपाद विभूतिमें स्थित परमव्योम नामक वैकुण्ठधामरूप, महाकाशस्वरूप ब्रह्म। १०३ **परात्परः**—पर— इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदिसे भी परे परमेश्वर। १०४ **परेशः**—सर्वोत्कृष्ट शासक। १०५ **पारगः**—सबको पार लगानेवाले अथवा मायामय जगत्की सीमासे बाहर रहनेवाले। १०६ **पारः**—सबसे परे विद्यमान अथवा भवसागरसे पार जानेकी इच्छा रखनेवाले प्राणियोंके प्राप्तव्य परमात्मा। १०७ **सर्वभूतात्मकः**—सर्वभूतस्वरूप। १०८ **शिवः**—परम कल्याणमय—ये श्रीरामचन्द्रजीके एक सौ आठ नाम हैं। देवि! ये नाम गोपनीयसे भी गोपनीय हैं; किन्तु स्नेहवश मैंने इन्हें तुम्हारे सामने प्रकाशित किया है।†

---

* कहीं-कहीं 'धीरो दान्तगुणोत्तरः' पाठ मिलता है, यह छपाईकी भूल जान पड़ती है। यदि ऐसा ही पाठ मानें तो ऐसा अर्थ करना चाहिये—'धीर एवं जितेन्द्रिय पुरुषके श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त।'

† ॐ श्रीरामो रामचन्द्रश्च रामभद्रश्च शाश्वतः। राजीवलोचनः श्रीमान् राजेन्द्रो रघुपुङ्गवः॥
जानकीवल्लभो जैत्रो जितामित्रो जनार्दनः। विश्वामित्रप्रियो दान्तः शरण्यत्राणतत्परः॥
बालिप्रमथनो वाग्मी सत्यवाक् सत्यविक्रमः। सत्यव्रतो व्रतफलः सदा हनुमदाश्रयः॥
कौसलेयः खरध्वंसी विराधवधपण्डितः। विभीषणपरित्राता दशग्रीवशिरोहरः॥
सप्ततालप्रभेत्ता च हरकोदण्डखण्डनः। जामदग्न्यमहादर्पदलनस्ताडकान्तकृत्॥
वेदान्तपारो वेदात्मा भवबन्धैकभेषजः। दूषणत्रिशिरोऽरिश्च त्रिमूर्तिस्त्रिगुणस्त्रयी॥
त्रिविक्रमस्त्रिलोकात्मा पुण्यचारित्रकीर्तनः। त्रिलोकरक्षको धन्वी दण्डकारण्यवासकृत्॥
अहल्यापावनश्चैव पितृभक्तो वरप्रदः। जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितलोभो जगद्गुरुः॥
ऋक्षवानरसंघाती चित्रकूटसमाश्रयः। जयन्तत्राणवरदः सुमित्रापुत्रसेवितः॥
सर्वदेवाधिदेवश्च मृतवानरजीवनः। मायामारीचहन्ता च महाभागो महाभुजः॥
सर्वदेवस्तुतः सौम्यो ब्रह्मण्यो मुनिसत्तमः। महायोगी महोदारः सुग्रीवस्थिरराज्यदः॥
सर्वपुण्याधिकफलः स्मृतसर्वाघनाशनः। आदिपुरुषो महापुरुषः परमः पुरुषस्तथा॥
पुण्योदयो महासारः पुराणपुरुषोत्तमः। स्मितवक्त्रो मितभाषी पूर्वभाषी च राघवः॥
अनन्तगुणगम्भीरो धीरोदात्तगुणोत्तरः। मायामानुषचारित्रो महादेवाभिपूजितः॥
सेतुकृज्जितवारीशः सर्वतीर्थमयो हरिः। श्यामाङ्गः सुन्दरः शूरः पीतवासा धनुर्धरः॥
सर्वयज्ञाधिपो यज्ञो जरामरणवर्जितः। शिवलिङ्गप्रतिष्ठाता सर्वाघगणवर्जितः॥

जो भक्तियुक्त चित्तसे इन नामोंका पाठ या श्रवण करता है, वह सौ कोटि कल्पोंमें किये हुए समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। पार्वती ! इन नामोंका भक्तिभावसे पाठ करनेवाले मनुष्योंके लिये जल भी स्थल हो जाते हैं, शत्रु मित्र बन जाते हैं, राजा दास हो जाते हैं, जलती हुई आग शान्त हो जाती है, समस्त प्राणी अनुकूल हो जाते हैं, चञ्चल लक्ष्मी भी स्थिर हो जाती है, ग्रह अनुग्रह करने लगते हैं तथा समस्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं। जो भक्तिपूर्वक इन नामोंका पाठ करता है, तीनों लोकके प्राणी उसके वशमें हो जाते हैं तथा वह मनमें जो-जो कामना करता है, वह सब इन नामोंके कीर्तनसे पा लेता है। जो दूर्वादलके समान श्यामसुन्दर कमलनयन, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीरामका इन दिव्य नामोंसे स्तवन करते हैं, वे मनुष्य कभी संसार-बन्धनमें नहीं पड़ते। राम, रामभद्र, रामचन्द्र, वेधा, रघुनाथ, नाथ एवं सीतापतिको नमस्कार है।* देवि ! केवल इस मन्त्रका भी जो दिन-रात जप करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रेमवश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके वेदानुमोदित माहात्म्यका वर्णन किया है। यह परम कल्याणकारक है।

वसिष्ठजी कहते हैं—भगवान् शङ्करके द्वारा कहे हुए परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीके माहात्म्यको सुनकर पार्वती देवी **'रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥'** इस मन्त्रका ही सदा—सब अवस्थाओंमें जप करती हुई कैलासमें अपने पतिके साथ सुखपूर्वक रहने लगीं। राजा दिलीप ! यह मैंने तुमसे परम गोपनीय विषयका वर्णन किया है। जो भक्तियुक्त हृदयसे इस प्रसङ्गका पाठ या श्रवण करता है, वह सबका वन्दनीय, सब तत्त्वोंका ज्ञाता और महान् भगवद्भक्त होता है। इतना ही नहीं, वह समस्त कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो परमपदको प्राप्त कर लेता है। राजन् ! तुम इस संसारमें धन्य हो; क्योंकि तुम्हारे ही कुलमें पुराणपुरुषोत्तम श्रीहरि सब लोकोंका हित करनेके लिये दशरथनन्दनके रूपमें अवतार लेंगे। अतः इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय देवताओंके लिये भी पूजनीय होते हैं; क्योंकि उनके कुलमें राजीवलोचन भगवान् श्रीरामका अवतार होता है।

★

त्रिदेवोंमें श्रीविष्णुकी श्रेष्ठता तथा ग्रन्थका उपसंहार

वसिष्ठजी कहते हैं—पूर्वकालकी बात है—स्वायम्भुव मनु परम उत्तम एवं दीर्घकालतक चालू रहनेवाले यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये मुनियोंके साथ मन्दराचल पर्वतपर गये। उस यज्ञमें कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले, अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता, बालसूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी, समस्त वेदोंके विद्वान् तथा सब धर्मोंके अनुष्ठानमें तत्पर रहनेवाले मुनि पधारे थे। वह महायज्ञ जब आरम्भ हुआ तो पापरहित मुनि, देवता-तत्त्वका अनुसन्धान करनेके लिये परस्पर बोले—'वेदवेत्ता ब्राह्मणोंके लिये कौन देवता सर्वश्रेष्ठ एवं पूज्य है ? ब्रह्मा, विष्णु और शिवमेंसे किसकी अधिक स्तुति हुई है ? किसका चरणोदक सेवन करनेयोग्य है ? किसको भोग लगाया हुआ प्रसाद परम पावन है ? कौन अविनाशी, परमधामस्वरूप एवं सनातन परमात्मा है ? किसके प्रसाद और चरणोदक पितरोंको तृप्ति प्रदान करनेवाले होते हैं ?'

परमात्मा परं ब्रह्म सच्चिदानन्दविग्रहः। परं ज्योतिः परं धाम पराकाशः परात्परः॥
परेशः पारगः पारः सर्वभूतात्मकः शिवः। इति श्रीरामचन्द्रस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
गुह्याद्गुह्यतरं देवि तव स्नेहात् प्रकीर्तितम्॥

(२८१। ३०—४८)

* रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥ (२८१। ५५)

वहाँ बैठे हुए महर्षियोंमें इस विषयपर महान् वाद-विवाद हुआ। किन्हीं महर्षियोंने केवल रुद्रको सर्वश्रेष्ठ बतलाया। कोई कहने लगे—ब्रह्माजी ही पूजनीय हैं। कुछ लोगोंने कहा—सूर्य ही सब जीवोंके पूजनीय हैं तथा कुछ दूसरे ब्राह्मणोंने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की—आदि-अन्तसे रहित भगवान् विष्णु ही परमेश्वर हैं। वे ही सब देवताओंमें श्रेष्ठ एवं पूजन करनेके योग्य हैं। इस प्रकार विवाद करते हुए महर्षियोंसे स्वायम्भुव मनुने कहा—'वे जो शुद्ध-सत्त्वमय, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, कमलके समान नेत्रोंवाले, श्रीदेवीके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तम हैं—एकमात्र वे ही वेदवेत्ता ब्राह्मणोंद्वारा पूजित हैं।'

मनुकी यह बात सुनकर सब महर्षियोंने हाथ जोड़कर तपोनिधि भृगुजीसे कहा—'सुव्रत! आप ही हमलोगोंका सन्देह दूर करनेमें समर्थ हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव—तीनों देवताओंके पास जाइये।' उनके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ भृगु तुरंत ही कैलास पर्वतपर गये। भगवान् शङ्करके गृहद्वारपर पहुँचकर उन्होंने देखा—महाभयंकर रूपवाले नन्दी हाथमें त्रिशूल लिये खड़े हैं। भृगुजीने उनसे कहा—'मेरा नाम भृगु है, मैं ब्राह्मण हूँ और देवश्रेष्ठ महादेवजीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। आप भगवान् शङ्करको शीघ्र ही मेरे आनेकी सूचना दें।' यह सुनकर समस्त शिवगणोंके स्वामी नन्दीने उन अमिततेजस्वी महर्षिसे कठोर वाणीमें कहा—'अरे! इस समय भगवान्के पास तुम नहीं पहुँच सकते। अभी भगवान् शङ्कर देवीके साथ क्रीड़ाभवनमें हैं। यदि जीवित रहना चाहते हो तो लौट जाओ, लौट जाओ।'

तब भृगुने कुपित होकर कहा—'ये रुद्र तमोगुणसे युक्त होकर अपने द्वारपर आये हुए मुझ ब्राह्मणको नहीं जानते हैं। इसलिये इन्हें दिया हुआ अन्न, जल, फूल, हविष्य तथा निर्माल्य—सब कुछ अभक्ष्य हो जायगा।' इस प्रकार भगवान् शिवको शाप देकर भृगु ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ ब्रह्माजी सब देवताओंके साथ बैठे हुए थे। उन्हें देख भृगुजीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चुपचाप वे उनके सामने खड़े रहे। किन्तु ब्रह्माजीने उन मुनिश्रेष्ठको आया हुआ देखकर भी उनका कुछ सत्कार नहीं किया। उनसे प्रिय वचनतक नहीं कहा। उस समय ब्रह्माजी कमलके आसनपर महान् ऐश्वर्यके साथ बैठे हुए थे। तब महातेजस्वी महर्षिने लोक-पितामह ब्रह्मासे कहा—'आप महान् रजोगुणसे युक्त होकर मेरी अवहेलना कर रहे हैं, इसलिये आजसे समस्त संसारके लिये आप अपूज्य हो जायँगे।'

लोकपूजित महात्मा ब्रह्माजीको ऐसा शाप देकर महर्षि भृगु सहसा क्षीरसागरके उत्तर तटपर श्रीविष्णुके लोकमें गये। वहाँ जो महात्मा पुरुष रहते थे, उन्होंने भृगुजीका यथायोग्य सत्कार किया। उस लोकमें कहीं भी उनके लिये रोक-टोक नहीं हुई। वे भगवान्के अन्तःपुरमें बेधड़क चले गये। वहाँ उन्होंने सूर्यके समान तेजस्वी विमल विमानमें शेषनागकी शय्यापर सोये हुए भगवान् लक्ष्मीपतिको देखा। लक्ष्मी अपने करकमलोंसे भगवान्के दोनों चरणोंकी सेवा कर रही थीं। उन्हें देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगु अकारण कुपित हो उठे और उन्होंने भगवान्के शोभायमान वक्षःस्थलपर अपने बायें चरणसे प्रहार किया। भगवान् तुरंत उठ बैठे और प्रसन्नतापूर्वक बोले—'आज मैं धन्य हो गया।' ऐसा कहकर वे हर्षके साथ अपने दो हाथोंसे महर्षिके चरण दबाने लगे। धीरे-धीरे चरण दबाकर उन्होंने मधुर वाणीमें कहा—'ब्रह्मर्षे! आज मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। मेरे शरीरमें आपके चरणोंका स्पर्श होनेसे मेरा बड़ा मङ्गल होगा। जो समस्त सम्पत्तिकी प्राप्तिके कारण तथा अपार संसारसागरसे पार होनेके लिये सेतुके समान हैं, वे ब्राह्मणोंकी चरण-धूलियाँ मुझे सदा पवित्र करती रहें।'

ऐसा कहकर भगवान् जनार्दनने लक्ष्मीदेवीके साथ सहसा उठकर दिव्य माला और चन्दन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक भृगुजीका पूजन किया। उनको इस रूपमें देखकर मुनिश्रेष्ठ भृगुजीके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू भर आये। उन्होंने आसनसे उठकर करुणासागर भगवान्को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—'अहो!

श्रीहरिका कितना मनोहर रूप है, कैसी शान्ति है, कैसा ज्ञान है, कितनी दया है, कैसी निर्मल क्षमा और कितना पावन सत्त्वगुण है। भगवन्! आप गुणोंके समुद्र हैं। आपमें ही स्वाभाविक रूपसे कल्याणमय सत्त्वगुणका निवास है। आप ही ब्राह्मणोंके हितैषी, शरणागतोंके रक्षक और पुरुषोत्तम हैं। आपका चरणोदक पितरों, देवताओं तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके लिये सेव्य है। यह पापोंका नाशक और मुक्तिका दाता है। भगवन्! आपहीका भोग लगा हुआ प्रसाद देवता, पितर और ब्राह्मण—सबके सेवन करनेयोग्य है। इसलिये ब्राह्मणको उचित है कि वह प्रतिदिन आप सनातन पुरुषका पूजन करके आपका चरणोदक ले और आपके भोग लगाये हुए प्रसादस्वरूप अन्नका भोजन करे। प्रभो! जो आपको निवेदित किये हुए अन्नका हवन या दान करता है, वह देवताओं और पितरोंको तृप्त करता तथा अक्षय फलका भागी होता है। अतः आप ही ब्राह्मणोंके पूजनीय हैं।

आप सम्पूर्ण देवताओंमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हों; क्योंकि आप ब्राह्मणोंके पूज्य और शुद्ध सत्त्वगुणसे सम्पन्न हैं। ब्राह्मणलोग सदा आप पुरुषोत्तमका ही भजन करते हैं। जो आपका पूजन करते हैं, वे ही विप्र वास्तवमें ब्राह्मण हैं, दूसरे नहीं। इस विषयमें सन्देहके लिये स्थान नहीं है। देवकीनन्दन श्रीकृष्ण ब्राह्मणोंके हितैषी हैं। श्रीमधुसूदन ब्राह्मणोंके हितचिन्तक हैं। श्रीपुण्डरीकाक्ष ब्राह्मणोंके प्रेमी हैं। अविनाशी भगवान् विष्णु ब्राह्मणहितैषी हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् वासुदेव एवं अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले श्रीहरि ब्राह्मणोंके हितकारक हैं। भगवान् नृसिंह तथा अविनाशी नारायण भी ब्राह्मणोंपर कृपा करनेवाले हैं। श्रीधर, श्रीश, गोविन्द एवं वामन आदि नामोंसे प्रसिद्ध भगवान् श्रीहरि ब्राह्मणोंपर स्नेह रखते हैं। यज्ञवाराह-रूपधारी पुरुषोत्तम भगवान् केशव ब्राह्मणोंका कल्याण करनेवाले हैं। रघुकुलभूषण राजीवलोचन श्रीरामचन्द्रजी भी ब्राह्मणोंके सुहृद् हैं। भगवान् पद्मनाभ तथा दामोदर (श्रीकृष्ण) भी ब्राह्मणोंका हित चाहनेवाले हैं। माधव, यज्ञपुरुष एवं भगवान् त्रिविक्रम भी ब्राह्मणहितैषी हैं। पीताम्बरधारी हृषीकेश श्रीजनार्दन ब्राह्मणोंके हितकारी हैं। शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले ब्राह्मणहितैषी देवता श्रीवासुदेवको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले लक्ष्मीपति श्रीनारायणको नमस्कार है। ब्राह्मणहितैषी देवता सर्वव्यापी वासुदेवको नमस्कार है। कल्याणमय गुणोंसे परिपूर्ण, सृष्टि, पालन और संहारके कारणरूप आप परमात्माको नमस्कार है। ब्राह्मणोंके हितैषी देवता प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा सङ्कर्षणको नमस्कार है। शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले ब्रह्मण्यदेव भगवान् विष्णुको नमस्कार है। कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीरघुनाथजीको बारम्बार नमस्कार है। प्रभो! सम्पूर्ण देवता और ऋषि आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी आप परमात्माको नहीं जानते। भगवन्! सम्पूर्ण वेदोंके विद्वान् भी आपके तत्त्वको नहीं जानते।* भगवन्! मैं महर्षियोंके भेजनेपर आपके पास आया हूँ। आपके शील और गुणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके

---

* सर्वेषामेव देवानां ब्राह्मणत्वमवाप्नुहि। त्वामेव हि सदा विप्रा भजन्ति पुरुषोत्तमम्॥
ब्राह्मणास्ते बभूवुस्तु नान्यास्तत्र न संशयः। ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदनः॥
ब्रह्मण्यः पुण्डरीकाक्षो ब्रह्मण्यो विष्णुरव्ययः। ब्रह्मण्यो भगवान्कृष्णो वासुदेवोऽच्युतो हरिः॥
ब्रह्मण्यो नारसिंहः स्यात्तथा नारायणोऽव्ययः। ब्रह्मण्यः श्रीधरः श्रीशो गोविन्दो वामनस्तथा॥
ब्रह्मण्यो यज्ञवाराहः केशवः पुरुषोत्तमः। ब्रह्मण्यो राघवः श्रीमान्रामो राजीवलोचनः॥
ब्रह्मण्यः पद्मनाभश्च तथा दामोदरः प्रभुः। ब्रह्मण्यो माधवो यज्ञस्तथा त्रिविक्रमः प्रभुः॥
ब्रह्मण्यश्च हृषीकेशः पीतवासा जनार्दनः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय शार्ङ्गिणे॥
नारायणाय श्रीशाय पुण्डरीकेक्षणाय च। नमो ब्रह्मण्यदेवाय वासुदेवाय विष्णवे॥
कल्याणगुणपूर्णाय नमस्ते परमात्मने। नमो ब्रह्मण्यदेवाय सर्गस्थित्यन्तहेतवे॥

लिये ही मैंने आपकी छातीपर पैर रखा है। गोविन्द! कृपानिधे! मेरे इस अपराधको क्षमा करें।'

ऐसा कहकर महर्षि भृगुने बारम्बार भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। भगवान्‌के धाममें रहनेवाले दिव्य महर्षियोंने भृगुजीका भलीभाँति स्वागत-सत्कार किया। वहाँसे प्रसन्नचित्त होकर वे यज्ञमें महर्षियोंके पास लौट आये। उन्हें आया देख महर्षियोंने उठकर नमस्कार किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा की। तत्पश्चात् मुनिश्रेष्ठ भृगुने उन महर्षियोंसे सब बातें बतायीं। उन्होंने कहा—'ब्रह्माजीमें रजोगुणका आधिक्य है और रुद्रमें तमोगुणका। केवल भगवान् विष्णु शुद्ध सत्त्वमय हैं। वे कल्याणमय गुणोंके सागर, नारायण, परब्रह्म तथा सम्पूर्ण ब्राह्मणोंके देवता हैं। वे ही विप्रोंके लिये पूजनीय हैं। उनके स्मरणमात्रसे पापियोंकी भी मुक्ति हो जाती है। उनका चरणोदक तथा भोग लगाया हुआ प्रसाद समस्त मनुष्यों और विशेषतः ब्राह्मणोंके सेवन करनेयोग्य, परमपावन तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। भगवान् विष्णुको निवेदन किये हुए हविष्यका ही देवताओंके लिये हवन करे और वही पितरोंको भी दे। वह सब अक्षय होता है। अतः द्विजवरो! तुम आलस्य छोड़कर जीवनभर भगवान् विष्णुका पूजन करो। वे ही परम धाम हैं और वे ही सत्य ज्योति। अष्टाक्षरमन्त्रके द्वारा विधिपूर्वक पुरुषोत्तमका पूजन और उनके प्रसादका सेवन करना चाहिये। श्रीविष्णु ही सब यज्ञोंके भोक्ता परमेश्वर हैं—ऐसा जानकर उन्हींके उद्देश्यसे [illegible] हवन, दान और जप करे।

वसिष्ठजी कहते हैं—भृगुजीके ऐसा कहनेपर समस्त निष्पाप महर्षियोंने उन्हें नमस्कार किया और उन्हींसे मन्त्रकी दीक्षा ले भगवान् विष्णुका पूजन किया। राजन्! ये सब बातें मैंने प्रसङ्गवश तुम्हें बतलायी हैं। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी सब देवताओंमें पावन एवं पुरुषोत्तम हैं। अतः यदि तुम परम पदको प्राप्त करना चाहते हो तो उन श्रीरघुनाथजीकी ही शरणमें जाओ। राजन्! यह समस्त पुराण वेदके तुल्य है। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें साक्षात् ब्रह्माजीने इसका उपदेश किया था। जो प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो इसका श्रवण अथवा पाठ करता है, उसकी भगवान् लक्ष्मीपतिमें अनन्य भक्ति होती है। वह विद्यार्थी हो तो विद्या, धर्मार्थी हो तो धर्म, मोक्षार्थी हो तो मोक्ष और कामार्थी हो तो सुख पाता है। द्वादशी तिथिको, श्रवण नक्षत्रमें, सूर्य और चन्द्रमाके ग्रहणके अवसरपर, अमावास्या तथा पूर्णिमाको इसका भक्तिपूर्वक पाठ करना चाहिये। जो एकाग्रचित्त हो प्रतिदिन इसके आधे या चौथाई श्लोकका भी पाठ करता है वह निश्चय ही एक हजार अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। इस प्रकार यह परम गुह्य पद्मपुराण कहा गया। यदि परम पदकी प्राप्ति चाहते हो तो सदा भगवान् हृषीकेशकी आराधना करो।

सूतजी कहते हैं—अपने [illegible] उनको प्रणाम किया और कहनेपर नृपश्रेष्ठ राजा [illegible] उनसे विधिपूर्वक विष्णुमन्त्रकी यथायोग्य [illegible] ली। फिर आलस्यरहित हो उन्होंने जीवनभर श्रीहृषीकेशकी आराधना करके समयानुसार योगियोंको प्राप्त होनेयोग्य सनातन विष्णुधामको प्राप्त कर लिया।

★

उत्तरखण्ड सम्पूर्ण

★

श्रीपद्मपुराण समाप्त

प्रद्युम्नायानिरुद्धाय तथा संकर्षणाय च। नमो ब्रह्मण्यदेवाय सर्वदेवस्वरूपिणे॥
वाराहवपुषे नित्यं त्रयीनाथाय ते नमः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय नागपर्यङ्कशायिने॥
राजीवदलनेत्राय राघवाय नमो नमः। मायया मोहिताः सर्वे देवाश्च ऋषयस्तव॥
न जानन्ति महात्मानं सर्वलोकेश्वरं प्रभो। त्वां न जानन्ति भगवन्सर्ववेदविदोऽपि हि॥
(२८२। ७०—८२)

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित

तुलसी-साहित्य

श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, बृहदाकार, भाषा-टीकासहित, सचित्र, सजिल्द

श्रीरामचरितमानस—मोटा टाइप, भाषाटीकासहित, सचित्र, सजिल्द

श्रीरामचरितमानस—सटीक, मझला साइज

श्रीरामचरितमानस—बड़े अक्षरोंमें, केवल मूल पाठ, सचित्र, सजिल्द

श्रीरामचरितमानस—मूल, मझला साइज, सचित्र

श्रीरामचरितमानस—मूल, गुटका, सचित्र

श्रीरामचरितमानस—बालकाण्ड सटीक

श्रीरामचरितमानस—अयोध्याकाण्ड सटीक, सचित्र

श्रीरामचरितमानस—अरण्यकाण्ड सटीक

श्रीरामचरितमानस—किष्किन्धाकाण्ड सटीक

श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड, मूल गुटका

श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड सटीक

श्रीरामचरितमानस—सुन्दरकाण्ड मोटा टाइप लाल रंगमें

श्रीरामचरितमानस—लंकाकाण्ड सटीक

श्रीरामचरितमानस—उत्तरकाण्ड सटीक

मानस-रहस्य—जयरामदास 'दीन'

मानस-शंका-समाधान—जयरामदास 'दीन'

विनयपत्रिका—सरल हिंदी भावार्थसहित, अनुवादक—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार,

गीतावली—सरल भावार्थसहित

कवितावली—सरल भावार्थसहित

दोहावली—सरल भावार्थसहित

रामाज्ञा-प्रश्न—सरल भावार्थसहित

जानकी-मङ्गल—सरल भावार्थसहित

हनुमानबाहुक—सरल भावार्थसहित

पार्वती-मङ्गल—सरल भावार्थसहित

वैराग्य-संदीपनी—सरल भावार्थसहित

बरवैरामायण—सरल भावार्थसहित

गीता साहित्य

श्रीमद्भगवद्गीता साधकसंजीवनी टीका—स्वामी श्रीरामसुखदासजी

गीता-दर्पण—स्वामी श्रीरामसुखदासजी

श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्वविवेचनी—टीकाकार—श्रीजयदयालजी गोयन्दका

गीता-चिन्तन—लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

श्रीमद्भगवद्गीता हिन्दीमें—मूल पदच्छेद, अन्वय पदच्छेद, साधारण भाषाटीका

श्रीमद्भगवद्गीता बंगला भाषामें—मूल पदच्छेद, भाषाटीका सहित

श्रीमद्भगवद्गीता पदच्छेद गुजराती—भाषाटीका सहित

श्रीमद्भगवद्गीता मूल पदच्छेद मराठी—अनुवादसहित

श्रीमद्भगवद्गीता—[मझोली]

श्रीमद्भगवद्गीता—मूल मोटा टाइप

श्रीमद्भगवद्गीता—श्लोक-साधारण भाषाटीका, मोटा टाइप

श्रीमद्भगवद्गीता—केवल भाषा

श्रीमद्भगवद्गीता—साधारण भाषाटीका, पाकेट साइज

श्रीमद्भगवद्गीता—विष्णुसहस्रनामसहित

गीता माधुर्य—स्वामी श्रीरामसुखदासजी

सूचना:—गीताप्रेस-सम्बन्धी पुस्तकोंका सूचीपत्र मुफ्त मँगायें।

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES
FIND ALL AT HTTPS://DSC.GG/DHARMA
Made with
By
Avinash/Shashi
[creator of
hinduism
server]
KAPWING

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस

(गोरखपुर)